मूल्य : ₹ ४०
मातृशक्ति विशेषाङ्क
राष्ट्रधर्म
राष्ट्र धर्म
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्
कार्तिक-२०६७ नवम्बर-२०१०
या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

अथ तन्त्रोक्तं देवीसूक्तम्

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सतत नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्।।१।।

रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः।
ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः।।२।।

कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः।
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः।।३।।

दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै।
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः।।४।।

अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः।
नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः।।५।।

या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।६।।

या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।७।।

या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।८।।

या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।६।।

या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।१०।।

या देवी सर्वभूतेषु छायारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।११।।

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।१२।।

या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।१३।।

या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।१४।।

या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।१५।।

या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।१६।।

या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।१७।।

या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।१८।।

या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।१६।।

या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।२०।।

या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।२१।।

या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।२२।।

या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।२३।।

या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।२४।।

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।२५।।

या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।२६।।

इन्द्रियाणमधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः।।२७।।

चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत्।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।२८।।

स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रया–
त्तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता।
करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी
शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः।।२६।।

या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितै–
रस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते।
या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः
सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः।।३०।।

उत्कर्षो भवतु हिंदूनां
अखंड भारतं तथा
कृण्वन्तो विश्वमार्यं च
प्रतिज्ञा सफला भवेत् ।।

वंदे मातरम्

राष्ट्र सेविका समिति केंद्र वर्धा

प्रधान कार्यालय - देवी अहल्या मंदिर, धंतोली, नागपूर - 440 012

☎ - (0712) 2442097, फॅक्स - (0712) 2423852, ई मेल - omswasti_ngp@yahoo.co.in

जावक क्र. : १०६७

तिथी : भाद्रपद कृ. ११ युगाब्द ५११२

दिनांक : ४–१०–२०१०

सन्देश

श्री. आनन्द जी

स. न.

राष्ट्रधर्म का 'मातृशक्ति विशेषांक' आप प्रकाशित कर रहे हैं, यह जानकर प्रसन्नता हुई।

मातृशक्ति एवं राष्ट्रधर्म का निकटता का नाता है। समाज को राष्ट्रधर्म के पथ पर अग्रेसर होने की प्रेरणा देनेवाली मातृशक्ति ही है। 'सत्य पथे चाल रे– धर्म पथे चाल रे। देशरं आह्वान' यही मातृशक्ति की भूमिका रहती है, तब समाज सत्य–धर्म अर्थात् राष्ट्रधर्म का पालन करता है। विश्व–मञ्च पर सम्मान, प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। मातृशक्ति अर्थात् सृजनशक्ति, सत्–सृजन की मानसिकता। यह केवल जैविक प्रक्रिया नहीं है। अरविन्दाश्रम की पूज्य माता जी कहा करती थीं– 'मातृत्व यानि किसी जीव को जन्म देना, इतना ही नहीं है। अपितु उसको दैवी संस्कारों से परिपूर्ण करना, यह मातृत्व है।' देवभूमि भारत में सम्पूर्ण समाज की ओर मातृभाव से देखकर उसको दैवी गुणों से सम्पन्न करना, यही आज मातृशक्ति का जीवित कार्य है। वह यह सफलतापूर्वक निभायेगी यह विश्वास है।

विविध विषयों एवं आयामों से सुरचित 'राष्ट्रधर्म' का यह अंक प्रेरणादायी रहेगा, इस विश्वास के साथ–

भवदीया

प्रमिला मेढे

नेता, प्रतिपक्ष
(लोक सभा)

Leader of Opposition
(Lok Sabha)

सुषमा स्वराज
Sushma Swaraj

सन्देश

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई है कि राष्ट्रधर्म का 'मातृशक्ति विशेषांक' प्रकाशित किया जा रहा है। यह सर्वविदित है कि मातृशक्ति समाज की रीढ़ रही है। शिशु अपने जीवन का पहला अध्याय अपनी माता से ही सीखता है। हमारे समाज में माँ को सबसे उच्च स्थान प्राप्त है। आजकल पाश्चात्य संस्कृति में बहकर हमारे युवाओं द्वारा मातृशक्ति की अनदेखी की जा रही है। मुझे पूर्ण विश्वास है, आप जैसी संस्थाओं एवं पत्रिकाओं के प्रयासों से रास्ता भटक गये युवा अपनी संस्कृति की ओर वापस लौटेंगे एवं स्त्री विशेषकर मातृशक्ति को वही उच्च स्थान प्राप्त होगा, जो पूर्व में प्राप्त था। 'मातृशक्ति विशेषांक' के प्रकाशन के शुभ अवसर पर मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ।

(सुषमा स्वराज)

संस्थापक :

• पं. दीनदयाल उपाध्याय

राष्ट्रधर्म

मातृशक्ति विशेषाङ्क

संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर
लखनऊ–२२६००४
editor_rdm_1947@rediffmail.com
mgr.rdm.1947@gmail.com

वर्ष - ४७, अङ्क - ६
कार्तिक– २०६७
(युगाब्द–५११२)
नवम्बर – २०१०

मूल्य : रु. ४०.००
वार्षिक : रु. १६०.००
आजीवन (२० वर्ष) : रु. २०००.००
विदेश के लिए वार्षिक:४० डॉलर

परामर्शदाता :
• वीरेश्वर द्विवेदी
सम्पादक :
• आनन्द मिश्र 'अभय'
सहायक सम्पादक :
• रामनारायण त्रिपाठी
प्रभारी निदेशक :
• आनन्दमोहन चौधरी
प्रबन्धक :
• पवनपुत्र बादल

दूरभाष : (०५२२) ४०४१४६४ (सम्पादकीय)
दूरभाष : (०५२२) २६६१३८४ (व्यवस्था)
फैक्स : (०५२२) २६६०१०५

प्रस्तुति

लेख

कविता

सम्पादक की कलम से

विक्टोरिया का नाम सम्भवतः अब बहुतों को ज्ञात न होगा। विक्टोरिया, वही विक्टोरिया, जो ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथ से भारत का शासन सीधे ग्रेट ब्रिटेन की शासन-सत्ता के हाथ में लेकर पराधीन भारत की प्रथम सम्राज्ञी बनी थी। १८५७ की क्रान्ति अनुशासनहीनता, अधैर्य, विश्रृंखल नेतृत्व, सेनापतित्व को लेकर स्व-स्व अहंकारों के टकराव और कतिपय विश्वासघातियों की करतूतों के कारण जब १८५८ तक पहुँचते-पहुँचते लगभग असफल हो गयी, तो ग्रेट ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया ने सारे शासन-सूत्र अपने हाथों में ले लिये थे। विक्टोरिया तब की महिलाओं में एक रूपवती महारानी के रूप में अग्रगण्य मानी जाती थी। उनके पति का नाम था प्रिंस अल्बर्ट। विक्टोरिया और अल्बर्ट में, कहा जाता है, अधिक नहीं पटती थी; पर जब प्रिंस अल्बर्ट का निधन हो गया और शोक-संवेदना का निर्धारित समय व्यतीत हो गया, तो एक दिन तत्कालीन प्रधानमन्त्री ने महारानी विक्टोरिया के सामने प्रस्ताव रखा कि अभी आपकी अवस्था ही क्या है ? आप चाहें, तो दूसरा विवाह कर सकती हैं। पुनर्विवाह के, अपने प्रधानमन्त्री के इस प्रस्ताव का जानते हैं, विक्टोरिया ने क्या उत्तर दिया था ? विक्टोरिया का उत्तर था– प्रधानमन्त्री जी ! यदि मैं मात्र ग्रेट ब्रिटेन की महारानी होती, तो शायद आपके प्रस्ताव पर विचार करती; पर आप कैसे भूल गये कि मैं ग्रेट ब्रिटेन की महारानी के साथ ही उस भारत की 'सम्राज्ञी' भी हूँ, जहाँ की नारियाँ अपने दिवंगत पति का पुण्य-स्मरण करते हुए सारा वैधव्य-जीवन अत्यन्त सादगी से काटकर स्वयं को धन्य मानती हैं ! भारत की सम्राज्ञी होने के नाते मैं आपका प्रस्ताव कदापि स्वीकार नहीं कर सकती। विक्टोरिया ने शेष जीवन अपने पति प्रिंस अल्बर्ट की याद में काट दिया। ध्यान देने की बात है कि पराधीन भारत की मातृशक्ति के संस्कारी जीवन का कितना गहरा प्रभाव था उस सम्राज्ञी विक्टोरिया पर ! ग्रेट ब्रिटेन की महारानी और भारत की नारी के पातिव्रत्य, पतिनिष्ठा के प्रति नतशिर ! है न अपने ढंग का एक विलक्षण चमत्कार !!

दृश्य-पटल बदलता है। एलिजाबेथ टेलर, अपने समय की अमेरिका की सर्वश्रेष्ठ सिने-अभिनेत्री और रूपराशि की धनी। उसने पहला विवाह किया अपने प्रेमी सुप्रसिद्ध अभिनेता पाल बर्टन से। कुछ समय बाद विच्छेद और फिर कुछ वर्षों बाद उसी पाल बर्टन से दुबारा विवाह और थोड़े समय बाद पुनः विच्छेद। एलिजाबेथ टेलर ने इस प्रकार छह विवाह किये;

माँ ! सर्वत्र माँ ही माँ

परन्तु जब ब्रिटेन की वर्तमान महारानी एलिथाबेथ (द्वितीय) ने कुछ वर्ष पूर्व अपने बकिंघम प्रासाद में एलिजाबेथ टेलर को उसकी अभिनय कला के लिए सम्मानित किया, तो एलिजाबेथ टेलर की आँखें छलछला आयीं और बोली कि कितना अच्छा होता, आज पाल बर्टन मेरे साथ होते ! पाल बर्टन ही क्यों ? अन्य पाँच में से कोई क्यों नहीं ? उत्तर यहाँ भी एक ही है। भारतीय नारी का अपने पति के प्रति अनन्य प्रेम ! एलिजाबेथ टेलर के मनोजगत् पर भारतीय नारी की इस संस्कारशीलता का अप्रत्यक्ष प्रभाव स्पष्ट है।

यह तो दो उदाहरण रहे पश्चिम के। अब अपने देश पर दृष्टि डालें, तो अनादि काल से लेकर आज तक के अगणित आदर्शों की अटूट, अन्तहीन श्रृंखला मिलती है। अत्रि और अनसूया, वसिष्ठ और अरुन्धती, अगस्त्य और लोपामुद्रा की बात छोड़ें; गौरी-शंकर, सीता-राम और राधा-कृष्ण के युगल भी सर्वज्ञात हैं। वेदों, पुराणों और स्मृतियों की सुदीर्घ परम्परा में एक क्षण को ही सही, जरा झाँककर तो देखें, मातृशक्ति के एक से एक दिव्य उदाहरण देखकर आँखें चौंधिया जायेंगी। यहाँ की नारी की निःसीम क्षमता साक्षात् यमराज तक को पराभूत कर अपने पति के प्राण ही वापस नहीं लौटा लाती, सास-ससुर, माता-पिता की प्रतिष्ठा पुनर्स्थापित कराने के साथ ही 'शतपुत्रवती भव' का आशीर्वाद तक यमराज से प्राप्त कर लेती है। यमराज भी यदि किसी से हारे हैं, तो भारत की सती सावित्री से। तभी तो आज तक हिन्दू विवाहिता नारियाँ सावित्री के साथ ही उस वट वृक्ष का भी पूजन कर उसके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करना नहीं भूलतीं, जिसने अपनी छत्रच्छाया में सत्यवान् का मृत शरीर सुरक्षित रखा था। अहल्या, द्रौपदी, तारा, कुन्ती तथा मन्दोदरी ये पाँचों ही सदा कन्या-रूप ही मानी गयी हैं। कुन्ती का चरित्र तो अत्यद्भुत है। महाभारत-युद्ध की समाप्ति के बाद जब हस्तिनापुर की राजमाता के रूप में सुख के कुछ दिन आते हैं, तो वह अपने उन जन्मान्ध ज्येष्ठ धृतराष्ट्र, जिनके कुटिल आचरण के कारण तब तक के जीवन में पुत्रों व पुत्रवधू द्रौपदी के साथ क्या-क्या कष्ट नहीं झेलने पड़े और जेठानी गान्धारी, जिसने पातिव्रत्य-व्रत के निष्ठापूर्वक निर्वाह हेतु जीवन-पर्यन्त आँखों पर पट्टी बाँधे रखी, की सेवा के लिए उनके साथ ही वन-गमन करना अपना धर्म समझा और वहीं दावानल-जंगल की आग में उन्हीं के साथ जलकर अपना कुल-धर्म, परिवार-धर्म निबाहा। आज के परिवारों में स्वार्थ-परक, सुविधाभोगी, ईर्ष्या-द्वेष पूर्ण सम्बन्धों के परिप्रेक्ष्य में कुन्ती के इस दिव्य धर्माचरण का अनुकरण, अनुसरण करने की प्रेरणा क्या हम ग्रहण नहीं कर सकते ?

अब जरा आधुनिक काल में दृष्टि-निक्षेप करें। महामना पं. मदनमोहन मालवीय जी की पत्नी को मालवीय जी के घर के बड़े लोग बहुआ और छोटे लोग बहुआ जी कहते थे। बहुआ जी एक बार गम्भीर रूप से बीमार पड़ीं, औषधोपचार वाञ्छित लाभ नहीं कर पा रहा था। मरणासन्न बहुआ जी ने मालवीय जी से कहा– यदि आज्ञा हो, तो मैं जाऊँ। मालवीय जी कुछ देर विचार-मग्न रहने के बाद बोले– 'बहुआ ! अभी तुम्हें नहीं जाना है।' और चमत्कार कि बहुआ जी पर उसी दिन से औषधोपचार का प्रभाव पड़ने लगा और वे शीघ्र ही स्वस्थ हो गयीं। कुछ वर्षों बाद बहुआ जी फिर रुग्ण होकर शय्या-ग्रस्त हो गयीं। बचने की कोई आशा नहीं रही। मालवीय जी से फिर बोलीं– 'आज्ञा हो, तो अब मैं जाऊँ।' मालवीय जी कुछ देर मौन रहे, फिर बोले– 'अच्छा बहुआ ! अब मैं तुम्हें नहीं रोकूँगा, तुम जा सकती हो।' पति की अनुमति मिलते ही बहुआ जी ने शरीर छोड़ दिया। विचारें, विना पति की अनुमति के एक पतिव्रता ने शरीर नहीं छोड़ा था। अनुमति मिली और वह चल दी अनन्त-यात्रा पर।

एक और दृश्य देखें। रा.स्व. संघ के नयी दिल्ली स्थित कार्यालय केशव-कुञ्ज में अधीश कुमार जी, अ.भा. प्रचार प्रमुख, कर्क-रोग से अन्तिम लड़ाई लड़ रहे थे। बोलते-बोलते मूर्च्छा में चले गये; पर प्राण नहीं छूट रहे थे। उनके माता-पिता तथा अन्य परिवारी जन वहीं थे। अधीश जी की यह दुर्वह स्थिति देख उनकी माताजी समझ गयीं। बोलीं– बेटा अधीश ! अब तुम जाओ और पुनः नया जन्म लेकर अपना शेष कार्य करो। माता की अनुमति पाते ही पुत्र ने शरीर छोड़ दिया। इस घोर कलियुग में भी एक मातृभक्त पुत्र विना माँ की आज्ञा के शरीर नहीं छोड़ता; क्योंकि माता ही पुत्र के अन्तर्मन की गूढ़ वेदना को समझ पाती है। आखिर उसका आत्मांश ही तो है उसका पुत्र।

हम अपने आस-पास निगाह डालें, तो आज भी ऐसे उदाहरण कभी-कभी देखने को मिलते हैं; पर हम गम्भीरता से उन पर विचार नहीं करते।

दो उदाहरण और– १. कानपुर महानगर का पाण्डु नगर मोहल्ला। पितृ-छाया से विहीन एक लड़की का विवाह उसके इकलौते भाई ने फतेहपुर जनपद में गंगा-पार के एक गाँव में तय किया। पण्डित और नाई को साथ लेकर वह तिलक चढ़ाने जाता है और गंगा जी को नाव से पार करते हुए भँवर में फँस जाने से नाव डूब जाती है। मल्लाह किसी तरह तैरकर बाहर निकलता है और भाग कर गाँव में खबर करता है। लड़के का पिता और गाँव वाले भरसक प्रयत्न करके भी लड़की के भाई को नहीं बचा पाते। लड़के का पिता इस दुःखद घटना की सूचना लेकर स्वयं लड़की के घर पाण्डु नगर पहुँचता है और उसकी माँ को यथाशक्ति सान्त्वना देकर कहता है कि विवाह इसी लग्न में होगा। वह सिर्फ अपने पुत्र, पण्डित और नाई के साथ आकर सारे कार्य सम्पन्न कराकर वधू को आदर-सम्मान सहित विदा कराकर ले जायेगा। मोहल्लेवालों को जैसे ही पता चलता है, वे इकट्ठे होकर लड़के के पिता से आग्रह करते हैं कि वह पूरी बारात लेकर आयें, उनका पूरा स्वागत-सत्कार करेंगे; क्योंकि अब यह लड़की मोहल्ले भर की बेटी-बहन है। तय लग्न में विवाह होने से पहले एक दिन एक नवयुवक अपने एक मित्र की दूकान पर ट्रान्जिस्टर रेडियो खरीदने जाता है और कोई अच्छा-सा सेट दिखाने को कहता है। मित्र पूछता है, अपने लिए चाहिए या किसी को देने के लिए ? युवक कहता है, पैसे की चिन्ता न करो, सबसे अच्छा सेट दो; क्योंकि मुझे उस लड़की को उपहार में देना है। मित्र दूकान से सबसे उत्तम सेट निकालकर देता है। युवक द्वारा मूल्य पूछने पर मित्र कहता है, अरे ! वह तेरी ही नहीं, मेरी भी तो बहन है। मेरी ओर से यह सेट उसे भेंट दे देना। और वह सेट का मूल्य नहीं लेता। 'दिनमान' साप्ताहिक (बहुत पहले बन्द हो चुका) ने इस घटना का संक्षेप में समाचार-विवरण दिया था। कहने का तात्पर्य यह कि आज भी माताओं, बहनों के प्रति यह आत्मिक सात्विक भाव समाज में जीवित है। कमी है, तो इस ओर किसी प्रचार-प्रसार माध्यम की दृष्टि न जाना।

अन्त में फिर दो प्राचीन प्रसंग। पहला, महाभारत में महाराज अश्वपति से एक ऋषि प्रश्न कर बैठता है– 'राजन् ! आपके राज्य में कितनी स्त्रियाँ स्वैरिणी (परपुरुषगामिनी) हैं ? अश्वपति का उत्तर था–

"न मे स्तेनो जनपदे, न कदर्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान्, न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।।"

(मेरे जनपद में न तो कोई चोर है, न कायर, न मद्यप। न कोई अग्निहोत्र विहीन है और न अविद्वान्। जब मेरे राज्य में कोई स्वैरी (दुराचारी पुरुष) है ही नहीं, तो दुराचारिणी स्त्री आयी कहाँ से अर्थात् किसी स्त्री के दुराचारिणी होने का प्रश्न ही नहीं है।) स्पष्ट है कि कोई स्त्री स्वयं दुराचारिणी या भ्रष्ट नहीं होती। पुरुष ही उसे दुश्चरित्र या व्यभिचारिणी बनाता है। ऐसा था हमारे देश के राजा, स्त्री, पुरुषों का श्रेष्ठ, पवित्र आचार-विचार। हम अपने विश्व ज्ञान कोष, महाभारत को पढ़ें तो। उसे 'पञ्चम वेद' यों ही नहीं कहा गया है। दूसरा प्रसंग महाकवि कालिदास के 'रघुवंशम्' का। श्लोक के अनुसार उज्जयिनी के चतुष्पथ (चौराहे) पर रात्रि के अन्तिम प्रहर में श्लथ पड़ी सो रही गणिका के वक्ष-स्थल का आँचल हटाने का साहस पवन तक नहीं कर सकता। सम्वत्-प्रवर्त्तक सम्राट् विक्रमादित्य के सुशासन के परिणामस्वरूप लोक मानस की उच्चतम नैतिकता का यह अद्भुत प्रमाण है। □

— आनन्द मिश्र 'अभय'

E-mail : editor_rdm_1947@rediffmail.com

माता आनन्दमयी

मातृशक्ति जागरण की प्रतिमूर्त्ति

प्रेम की धरती पर करुणा और ज्ञान का चिन्मय बीज अनादि काल से बोया हुआ ही है। समय-समय पर यह विशाल वृक्ष के रूप में प्रकट आता है, जिसकी सघन सुशीतल छाया में आकर विषयतापदग्ध संसार-चक्र में फँसे अजस्र प्राणियों को सुखद निर्मल शान्ति प्राप्त होती है। युगों-युगों से यही परम्परा चली आ रही है। इसी परम्परा में महिला तपस्विनी माता आनन्दमयी के मुखारविन्द से मानव को सच्ची मानवता, विश्व-बन्धुत्व और विश्व-शान्ति का सन्देश मिला है।
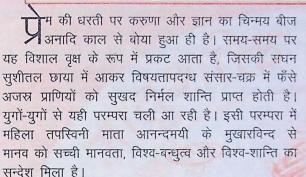
पूर्वी बंगाल (अब बांग्लादेश) के त्रिपुरा जिले के अन्तर्गत खेउड़ा नामक गाँव में ३० अप्रैल, १८६६ को विपिन बिहारी भट्टाचार्य के पवित्र आँगन में माता मोक्षदा सुन्दरी देवी की निर्मल कोख से निर्मला का आविर्भाव हुआ था। अतः माता–पिता ने पारिवारिक नाम निर्मला सुन्दरी देवी रखा। जन्म के तेरहवें दिन नवजात शिशु को देखने नन्दन चक्रवर्त्ती आये थे। जब निर्मला तीन साल की हुई, तो एक दिन नन्दन चक्रवर्त्ती फिर निर्मला को देखने आये। उन्हें देखकर निर्मला अपनी तोतली बोली में उनसे कहती है– "जब मैं १३ दिन की थी, तो आप मुझे देखने आये थे।" बात सच थी। जन्म के समय निर्मला बिल्कुल रोयी नहीं ? पूछने पर ५ साल की निर्मला का सरल उत्तर था– "रोती क्यों, मैं तो उस समय कुटिया के छेद से नीम और आम का पेड़ देख रही थी।"

निर्मला की औपचारिक शिक्षा गाँव के स्कूल में ही हुई थी। वह भी २–३ महीने ही। १२ वर्ष की अल्पवय में ब्राह्मण परिवार के श्री रमणीमोहन चक्रवर्त्ती के साथ निर्मला देवी सुन्दरी का विवाह हो गया। रमणीमोहन बाद में भोलानाथजी के नाम से प्रसिद्ध हुए।

वाराणसी में गंगाजी के तट पर माँ का आश्रम

गृहस्थाश्रम के अनुसार निर्मला देवी सुन्दरी (माता आनन्दमयी) हर समय घूँघट डालकर ही सब काम–काज किया करती थीं। यही समय था, जब निर्मला जी को काम करते-करते समाधि लग जाती थी और उनका काम रुक जाता था। इन सबके होने पर भी माँ सबकी अत्यन्त प्रिय थीं। आस-पड़ोस की स्त्रियाँ "खुशी की माँ" के नाम से उन्हें पुकारती थीं।

भोलानाथ जी के कार्य क्षेत्र बाजितपुर तथा शाहबाग में रहते हुए निर्मला देवी सुन्दरी के शरीर में नानाविध साधना-क्रियाओं का प्रकाश हुआ। सिद्धेश्वरी में निर्मला देवी सुन्दरी के इस दिव्य आनन्दमय स्वरूप को देखकर ही सरकारी कृषि विभाग के उच्चपदस्थ अधिकारी ज्योतिषचन्द्र राय ने कहा था– "आज से आपको हम सब 'श्री माँ आनन्दमयी' के नाम से पुकारेंगे।" यहीं से प्रचलित हुआ माँ का "आनन्दमयी" नाम। यह सन् १९२५ की बात है। १९२६ से उनके यहाँ भक्तों का ताँता लगना शुरू हो गया। कनाडा के प्रधानमन्त्री त्रूदो उनके शिष्य बने और बहुतेरे लोग उनके शिष्य बने।

डिवाइन लाइफ सोसायटी के संस्थापक स्वामी शिवानन्द सरस्वती उन्हें– "भारत की धरती पर सबसे अधिक विकसित फूल" मानते थे। बंगाल के सिद्ध साधक राम ठाकुर महोदय ने माँ के प्रति "साक्षात् देवी" भाव रखने का निर्देश दिया था। देवघर के महान् तपस्वी श्री बालानन्द ब्रह्मचारी जी ने माँ को देखकर कहा था– "माँ साक्षात् शक्तिस्वरूपा" हैं। राष्ट्र सन्त मुरारी बापू ने कहा था– "पूज्य माँ मेरी दृष्टि में एक व्यक्ति नहीं; अपितु एक शक्ति हैं। धरती पर आयी हुई कोई विशिष्ट व्यवस्था हैं। केवल उन्हीं में यह तीन बातें अवधूत, अद्भुत और अनुभूत एक साथ हो सकती हैं, जो माँ में मुझे दिखायी देती हैं।" १९३० में पहली बार घर से बाहर देहरादून गयीं, वहाँ एक रायपुर नामक गाँव में जीर्ण-शीर्ण शिवालय था। उसी से लगी एक टूटी-फूटी झोपड़ी। १९३६ में माता आनन्दमयी की गुप्त यात्रा हुई। अमृतसर, लाहौर आदि क्षेत्रों में भ्रमण किया। १९३७ में कैलास-मानसरोवर यात्रा की। साथ में भोलानाथ जी, गुरुप्रिया (माँ आनन्दमयी की प्रथम शिष्या), ज्योतिषचन्द्र राय, स्वामी अखण्डानन्द जी भी थे।

१९३६ में उनकी माता मोक्षदा देवी ने कनखल में स्वामी मंगलानन्द गिरि से संन्यास की दीक्षा ली। १९३८ सुभाषचन्द्र बोस माता आनन्दमयी के दर्शन हेतु दक्षिणेश्वर आये। १९४२

में माता आनन्दमयी की पूना स्थित सेवाग्राम में गान्धी जी के साथ भेंट हुई। इसी समय विनोबा जी, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद भी वहाँ उपस्थित थे। उनके भक्तों में विश्व के प्रख्यात दार्शनिक महामहोपाध्याय पण्डित गोपीनाथ कविराज तथा सर्वपल्ली डा. राधाकृष्णन् की ज्ञानगर्भित बातें जहाँ सुनते हैं, वहीं जगतप्रसिद्ध गायिका एम.एस. शुभलक्ष्मी का गायन सुनायी पड़ता है। नाट्य-सम्राट् उदयशंकर, गायक उस्ताद अलाउद्दीन खाँ, सरोदवादक अली अकबर खाँ, सितारवादक श्री रविशंकर तथा शहनाई की मधुर तान छेड़ते हुए शहनाई सम्राट् बिसमिल्ला खाँ, प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, स्वरूपरानी नेहरू, पं. जवाहर लाल नेहरू, कमला नेहरू एवं इन्दिरा गान्धी को भी माता आनन्दमयी के दरबार में उपस्थित पाते हैं।

१६४७ से १६५० तक काशी में ३ वर्षीय "अखण्ड सावित्री यज्ञ" का आयोजन हुआ। अभूतपूर्व यज्ञ को देखने के लिए देश के कोने-कोने से लोग आये थे। समूची काशी नगरी तो यज्ञ का एक अंग थी। उत्तराखण्ड के देवदुर्लभ श्री त्रिवेणीपुरी जी, श्री देवगिरिजी आदि योगिजन का पदार्पण तथा अन्यान्य सन्तजनों का एकत्र सम्मेलन, जो कि साधारण जनों के लिए दुर्लभ है, वह भी माँ की अहैतुकी कृपा से सम्भव हुआ। दस हजार ब्राह्मणों का भोजन, यज्ञ की विशालता का अनुमान कराता है। सन् १६२६ में ढाका में काली पूजा के समय प्रज्वलित अग्नि को इस महायज्ञ में लगाना शास्त्रीय आध्यात्मिक दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता है। इस यज्ञ का उद्देश्य "विश्व शान्ति" स्थापना का था।

माता आनन्दमयी की इच्छानुसार भक्तों ने अंग्रेजों से जमीन खरीदकर गंगा जी के किनारे भदैनी पर आनन्दमयी आश्रम का निर्माण कराया। नारी-शक्ति के जागरण के लिए माता आनन्दमयी ने अपनी प्रथम शिष्या एवं प्रधान सेविका गुरुप्रिया देवी को जनेऊ का अधिकार दिया। औरतों को कीर्त्तन के लिए प्रेरित किया। लड़कियों की शिक्षा के लिए निःशुल्क सुसञ्चालित गुरुकुल कन्यापीठ की स्थापना की। सन् १६३८ में हरिद्वार में आरम्भ कर १६४५ में इस कन्यापीठ का स्थानान्तरण काशी कर दिया गया। वर्त्तमान में आश्रम में अन्नूर्णा देवी, भगवान् शिव और गोपालजी (भगवान् कृष्ण) का मन्दिर है। गोपाल जी के मन्दिर के ठीक नीचे माता आनन्दमयी की तीन प्रतिमायें एक साथ लगी हैं, जो अलग–अलग रूपों को दर्शाती है। इसके अलावा एक विशाल यज्ञशाला है। जहाँ अखण्ड ज्योति जलती रहती है। बड़ी संख्या में देशी-विदेशी श्रद्धालु दर्शन-लाभ हेतु आते हैं।

कन्यापीठ में प्रवेश के समय लड़कियाँ ६ से १२ वर्ष के बीच होती हैं। बारह वर्ष से ऊपर की लड़की को नहीं लिया जाता; क्योंकि ६२ वर्षों से मन्दिर की सेवा करनेवाले ब्रह्मचारी पानु दा के अनुसार तब यहाँ के संस्कार पडने उनमें कठिन हो जाते हैं। बालिकाएँ प्रातकाल ४.३० से ५.०० बजे उठकर प्रार्थना तथा वेदमन्त्र आदि का उच्चारण करती हैं। सब काम सँभालते हुए अध्ययन करती हैं। साथ ही अपना भोजन आदि बनाना, सिलाई सीखना, संगीत की शिक्षा पाना, यह सब भी उनके पाठ का ही हिस्सा है।

आवासीय छात्रावास की व्यवस्था केवल ४५ के लिए ही है। इस कारण हर वर्ष केवल ४-५ को ही प्रवेश मिलता है। बारहवीं की परीक्षा उ.प्र. संस्कृत बोर्ड से मान्यता प्राप्त है। बहुत-सी लड़कियाँ यहीं पर रहकर शास्त्री और आचार्य की शिक्षा पाती हैं और यह सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से मान्यताप्राप्त है। उसके बाद भी कुछ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से शोध-कार्य भी करती हैं। कई आगे चलकर कन्यापीठ में ही जीवन-पर्यन्त अध्यापन आदि का कार्य करती हैं। जो छात्राएँ गुरुकुल से निकलने के बाद घर गयीं, उनमें से कई वरिष्ठ प्रशासनिक सेवाओं में कार्यरत हैं।

माता आनन्दमयी की पवित्र-स्मृति में एक अस्पताल का निर्माण हुआ। अस्पताल में ४८ शय्या हैं। कई उच्चकोटि के चिकित्सक, जो काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से सेवानिवृत्त हैं, यहाँ पर अपनी सेवाएँ देते हैं। इसके अलावा ६ स्थायी उच्च-कोटि के चिकित्सक हैं।

८६ वर्षीय माता आनन्दमयी २७ अगस्त, १६८२ को हरिद्वार में अनन्त निद्रा में चली गयीं। श्रीमती इन्दिरा गान्धी अपनी विदेश-यात्रा छोड़कर अन्तिम दर्शन हेतु आयीं। लोक में माँ आनन्दमयी 'जीवनमुक्त' के रूप में विख्यात हैं। उनका मौन ही उनका भाषण था। बिना बोले ही आशीर्वाद देती थीं। आज देश भर में माँ आनन्दमयी की प्रेरणा से दर्जनों आश्रम है। विन्ध्याचल, श्रीवृन्दावनधाम, काशी, उत्तरकाशी, जगन्नाथपुरी, तारापीठ, केदारनाथ, नैमिषारण्य आदि तीर्थस्थलों के अलावा देहरादून, अलमोड़ा, नयी दिल्ली, पूना राजगीर, भीमपुरा, आगरपाड़ा, जमशेदपुर, भोपाल, बंगलुरु आदि विभिन्न स्थानों में माँ आनन्दमयी-आश्रम विद्यमान हैं। बांग्लादेश ढाका में सिद्धेश्वरी तथा माँ के जन्मस्थान खेउड़ा में भी माँ के आश्रम हैं। इन आश्रमों के माध्यम से अनेक प्रकार के सेवा के प्रकल्प चलाये जा रहे हैं। □

– प्रस्तुति : लोकनाथ
६३, माधव-कुञ्ज, माधव मार्केट कालोनी
लंका, वाराणसी – २२१००५

मातृप्रेम, मातृभूमिप्रेम और भगवत्प्रेम
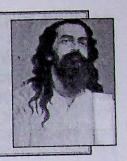
— माधवराव सदाशिवराव गोळवलकर

(राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर (श्री गुरुजी) एक महान् भगवद्भक्त, राष्ट्रभक्त महापुरुष थे। उनका स्पष्ट मत था कि अपना दिव्य भारत-राष्ट्र भगवान् का साक्षात् विग्रह है। वे मातृभूमि, मातृशक्ति तथा भगवत्प्रेम को एक-दूसरे का पर्याय मानते थे। सन् १९६९ ई. में उन्होंने पुणे में आयोजित 'मातृपूजन' ग्रन्थ का लोकार्पण करते हुए मातृप्रेम, मातृभूमि (राष्ट्र)-प्रेम के विषय में जो महत्त्वपूर्ण उद्‌गार व्यक्त किये थे, उनका सार अंश यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।— सम्पादक)

मेरी माँ की अनेक सन्तानें हुईं; परन्तु उनमें से मैं अकेला ही जीवित रहा। इस कारण मेरी माँ की ममता मुझ पर विशेष रीति से स्वाभाविक ही रही। उनकी समस्त ममता मुझ पर ही केन्द्रित थी, किन्तु मैं रहा केवल एक यायावर: सतत घूमते रहनेवाला ही।

एक बार मैं अपने घर से चल दिया। अदृश्य हो गया। किसी को भी पता नहीं था कि मैं कहाँ गया हूँ। केवल मेरे एक मित्र को, जो नागपुर में ही रहता था, मैं बताकर चला गया था। लगभग चार मास के बाद मैं लौट आया। जब मैं नागपुर वापस आया, तो पता चला कि माँ बीमार हैं। माता-पिता उन दिनों नागपुर के समीप रामटेक में रहते थे। मैं वहाँ गया। माँ से मैंने उनकी तबीयत के बारे में पूछा। पता चला कि उन्हें हृदय-विकार है। डाक्टर ने 'अनझायना पेक्टोरीस' नाम का हृदय रोग बताया था। माँ को बहुत कष्ट हो रहा था। हमारे मित्र डाक्टर उन्हें औषधि दे रहे थे; किन्तु उनकी औषधि से लाभ नहीं हो रहा था। मुझे स्मरण होता है कि उस अवस्था में भी अपना गायब हुआ पुत्र लौटकर आया देखकर वे मेरी सुख-सुविधाओं की ओर स्वयं ध्यान देनी लगीं। फिर एक दिन वे बोलीं, 'मुझे डाक्टर की औषधि नहीं चाहिए, तू ही मुझे औषधि दे।'

मैं न डॉक्टर था न वैद्य। कठवैद्य भी नहीं हूँ; किन्तु माँ का आग्रह था कि मैं ही उन्हें औषधि दूँ। उनके आग्रह के कारण मैंने उनका कहना मान लिया। मैं नागपुर आया। नागपुर में रामकृष्ण मिशन का आश्रम है। उस आश्रम में रोगियों को होमियोपैथिक औषधि मुफ्त देने की व्यवस्था है। वहाँ सर्वसामान्य लोगों की रोगमुक्ति के लिए एक वृद्ध साधु औषधि देते थे। मैं उनके पास गया। उनसे कहा— 'मेरी माँ को ऐसा–ऐसा कष्ट है, कौन-सी औषधि उन्हें देना ठीक होगा ?' उन वृद्ध साधु ने मुझसे ही पूछा, 'तुम्हारा क्या विचार है ?' मैंने उत्तर दिया— 'कुछ नहीं सोचा। आप ही कुछ दें। आपने यदि साधारण शक्कर की पुड़िया दी, तो भी चलेगी।' तब उन्होंने एक औषधि का नाम मुझे बताया। मैंने वह औषधि माँ को दी और सचमुच माँ को आराम हुआ। वे स्वस्थ हो गयीं। उसके बाद कई वर्षों तक वे जीवित रहीं।' जब तक उनके हाथ-पैर काम करते रहे, तब तक वे घर के सब काम अपार कष्ट झेलते हुए भी करती रहीं। उन्हें दिल का दौरा फिर कभी नहीं पड़ा। वास्तव में उन्हें दिल का दौरा नहीं, पुत्र-वियोग का दौरा पड़ा था। डॉक्टर ने भी यही कहा कि 'चूँकि तुम घर से भाग गये थे, इसी से ऐसा हुआ।' इस घटना से स्पष्ट है कि मैं माँ को सुख पहुँचानेवाला नहीं, दुःख देनेवाला ही ठहरा।

फिर एक बार माँ को पक्षाघात हुआ। उनका दाहिना अंग निष्क्रिय हो गया। मुझे उसी समय अपने निर्धारित प्रवास पर जाना था। मैं घर गया। मेरे साथ सदैव ही एक डॉक्टर रहते हैं। उन्होंने कहा कि 'यह पेरालीसिस का स्ट्रोक है। एकदम आराम नहीं होगा।' अन्य डॉक्टर भी आये और औषधोपचार प्रारम्भ हुआ। मैं ठहरा हमेशा का प्रवासी। स्वीकृत कार्य के लिए मुझे ट्रेन से जाना था। मैं माँ से बोला, 'जाऊँ क्या ?' उन्होंने कहा— 'नहीं।' तो बोला— 'ठीक है।' अपने मुकाम पर आ गया। विचार किया कि पूर्वनिर्धारित कार्यक्रम रद्द करने के लिए सब स्थानों पर तार द्वारा सूचित करना होगा; किन्तु फिर सोचा कि कुछ देर बाद निर्णय करूँगा। इसके बाद ११–११॥ बजे पुनः मैंने माँ से पूछा, तो उन्होंने 'जा' कहा। सोचने की बात है कि उन्हें उस समय कैसा लगा होगा ? क्या वे यह सोचती होंगी कि अपनी कठिन बीमारी में इकलौता पुत्र भी समीप न रहे ? नहीं, ऐसा नहीं। बात यह कि मेरे द्वारा एक

कार्य स्वीकृत है, इस कार्य में किसी प्रकार का विघ्न पड़ने देना उन्हें मञ्जूर नहीं था। इसीलिए उन्होंने मुझे जाने की अनुमति दी। उन्होंने यह भी कहा कि 'मनुष्य का जीवन-मरण किसी के पास रहने या न रहने पर निर्भर नहीं।' यह सब बताने का अर्थ कोई ऐसा न समझे कि मेरी माँ श्रेष्ठ योगिनी वगैरह थीं। हाँ, वे भक्त जरूर थीं और इसी कारण उनके मन में धैर्य उत्पन्न हुआ था। मेरी माँ सचमुच माँ थीं। मेरे कर्त्तव्य-मार्ग में उन्होंने अपनी बीमारी की बाधा भी नहीं आने दी। मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि माँ के अनन्त उपकार हैं।

एक बार एक स्वयंसेवक की माँ मेरी माँ के पास शिकायत लेकर पहुँची कि उसका दूसरा लड़का विवाह करने से इनकार कर रहा है। मेरी माँ ने उसकी सब बात शान्तिपूर्वक सुनी और समझाते हुए कहा, 'तुम्हारा दूसरा लड़का विवाह नहीं कर रहा; परन्तु पहले का विवाह तो हो चुका है, मेरा तो इकलौता पुत्र है और वह विवाह नहीं कर रहा, फिर भी मुझे दुःख नहीं हो रहा। भला तुम क्यों मन खट्टा कर रही हो ?' मुझे लगा कि चलो अच्छा ही हुआ, राष्ट्र कार्य के लिए एक प्रचारक मिला। इस प्रकार उसने संघ-कार्य में मेरी सहायता ही की। इस प्रकार की कुछ छोटी-छोटी घटनाओं का स्मरण मुझे अपनी माँ की याद दिला रहा है। मेरी माँ सचमुच माता थीं। माता के कर्त्तव्य अथवा जिसे हम मातृत्व के गुण कह सकते हैं, वे उनमें थे; परन्तु मुझे मातृभक्त नहीं कहा जा सकता। वैसी मेरी योग्यता भी नहीं है। हाँ, ऐसी श्रेष्ठ माता के पुत्र के नाते यदि मुझे यहाँ निमन्त्रित किया गया हो, तो वह उचित ही हुआ है।

फिर एक अन्य घटना याद आती है। मनुष्य के जन्मग्रहण करने के पूर्व जन्मदात्री माता उसके पार्थिव शरीर का स्वतः अपने रक्त से ही तथा जन्म के पश्चात् अपने दूध से तथा आगे यावज्जीवन प्रेम से उसका पोषण करती है; किन्तु निसर्ग-नियम के अनुसार कभी-न-कभी तो मातृवियोग का प्रसंग आता ही है। वैसा ही प्रसंग मुझ पर भी आया। इसकी सूचना मैंने अपने स्वभावानुसार कुछ लोगों को, जिनके प्रति मेरा नितान्त आदर है और उस मनःस्थिति में भी जिनका मुझे स्मरण हुआ, दी। उनमें से कामकोटिपीठ के आदरणीय श्रीमच्छङ्कराचार्य जी को भी मैंने पत्र लिखा। उन्होंने हाथोंहाथ दो श्लोकों के रूप में मुझे सान्त्वना देनेवाला पत्र लिखा था। श्लोकों का अर्थ इस प्रकार था–

'अस्थिचर्ममय मानवदेहधारिणी तुम्हारी माँ यद्यपि नहीं रहीं; किन्तु जो तुम्हारे समान असंख्य पुत्रों की माता है, जो केवल आज ही नहीं, सहस्रों वर्षों से असंख्य पुत्रों की जन्मदात्री है और भविष्य में भी सहस्रों वर्षों तक ऐसे ही पुत्रों की माँ रहेगी, सबका धारण-पोषण करनेवाली पवित्र और नित्य चैतन्यमयी भारतमाता विराजमान है। उस भारतमाता

के कार्यार्थ कटिबद्ध हुए तुम्हें मातृवियोग हो ही नहीं सकता। तुम शोक न करो। तुम्हारे लिए शोक का कारण नहीं है।'

मुझे लगता है कि जिस दिन पूज्य माँ का देहावसान हुआ, उस दिन मेरी आँख से आँसू की एक भी बूँद नहीं टपकी। जो लोग वहाँ आ-जा रहे थे, उनके साथ मैं मुक्त रूप से बातें कर रहा था। हो सकता है, अनेक वर्षों से जो सतत अभ्यास चला है, उसी का यह परिणाम रहा हो। यह एक ऐसा प्रसंग था, जब मन का सन्तुलन रखना कसौटी की ही बात है। भगवान् की कृपा से मैं उस अवस्था से बाहर निकल सका। श्रीमच्छङ्कराचार्य जी ने जो सान्त्वना प्रदान की, उससे हृदय में व्याप्त वेदना का शमन तथा मन का सन्तुलन बनाये रखने का कार्य हो सका।

मातृभक्ति का ह्रास

इसलिए मातृपूजन का विचार करते समय हमें अपनी जन्मदात्री माँ के समान ही अपनी मातृभूमि का भी विचार करना चाहिए; किन्तु दुर्दैव की बात है कि यह सब हमें बताना पड़ता है। जन्मदात्री के सम्बन्ध में कितनी उत्कट प्रेम की भावना होनी चाहिए; परन्तु इस भावना का लोप होता जा रहा है। आज ऐसे लोग कम ही मिलेंगे, जो विशुद्ध मातृभूमि-भक्त हैं। कुछ लोग हैं, जो सत्ता, यश अथवा स्वार्थ के लिए मातृभूमि की भक्ति करते हैं; किन्तु मातृभक्ति से ओतप्रोत हृदय का क्या कहीं दर्शन होता है ? इसका उत्तर देना कठिन है। छोटे-छोटे स्वार्थों के लिए मातृभूमि के पुत्र आपस में लड़ते-झगड़ते दिखायी दे रहे हैं। लोग स्वार्थ के पीछे लगे हुए हैं। आपस में संघर्ष कर रहे हैं। इस दृश्य को देखकर क्या कोई कह सकता है कि इनमें मातृभूमि की भक्ति है ?

मातृभूमि—हिन्दुराष्ट्र

वैसे यह हमारी मातृभूमि और हम इसके पुत्र हैं। यह नयी बात नहीं है। अति प्राचीन काल से इस मातृभूमि के पुत्र के नाते हमारा यहाँ राष्ट्र-जीवन रहा है। इस बात की घोषणा केवल हम ही करते हों, सो बात नहीं। जिन लोगों ने भी निष्पक्ष होकर सत्य को देखने का प्रयत्न किया, उन सभी का यही कहना है। मेरे पास एक पुस्तक है। उसमें पुरानी अंग्रेजी मासिक पत्रिका 'एडिन्बरा रिव्यू' के सन् १८७२ वर्ष के एक अंक का उद्धरण दिया हुआ है, जिसमें कहा गया है—

'Hindu is the most ancient Nation on the earth and has been unsurpassed in refinement and culture.'

(पृथ्वी पर 'हिन्दु' एक अति प्राचीन राष्ट्र है, जो सभ्यता और सुसंस्कृति में अद्वितीय है।)

पृथ्वी पर हिन्दु-जीवन अति प्राचीन राष्ट्र के नाते विद्यमान है। हम यह आज ही नहीं कह रहे हैं कि यह हिन्दु-राष्ट्र है। अंग्रेज राज्यकर्त्ताओं ने अपने साम्राज्यवादी स्वार्थों की पूर्त्ति के लिए हिन्दुराष्ट्र-जीवन को विशृंखल कर 'खिचड़ी-राष्ट्र' निर्माण करने का प्रयत्न किया। आज अंग्रेज-राज्य प्रत्यक्ष रीति से हट गया है; किन्तु फिर भी उनके द्वारा प्रचारित राष्ट्र-विस्मरण के कार्य को लोग अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिए आगे बढ़ाते जा रहे हैं। तब क्या इन्हें लोग कह सकेंगे कि ये मातृभूमि के पुत्र हैं ? आज यह कहना कि हम मातृभूमि के पुत्र हैं या यह कहना कि हिन्दुस्थान हिन्दुओं का है, विषाक्त माना जाता है; परन्तु यह धर्मशाला है, आओ-जाओ घर तुम्हारा है, ऐसा कहना अमृतमय समझा जाता है। यह तो बहुत ही दुःखद स्थिति है। अंग्रेजी में जिसे 'फैशन' कहते हैं, वैसे ही 'यह सब का

वन्दे मातरम्

— राष्ट्रऋषि बंकिमचन्द्र चटर्जी

वन्दे मातरम्
सुजलां सुफलां मलयज शीतलाम्
शस्य श्यामलां मातरम्। वन्दे मातरम्।१।

शुभ्र ज्योस्ना पुलकित यामिनीम्
फुल्ल कुसुमित द्रुमदल शोभिनीम्
सुहासिनीं सुमधुर भाषिणीम्
सुखदां वरदां मातरम्। वन्दे मातरम्।२।

कोटि—कोटि कण्ठ कलकल निनाद कराले
कोटि—कोटि भुजैर्धृत खरकरवाले
अबला केनो माँ एतो बले !
बहुबलधारिणीम् नमामि तारिणीम्
रिपुदलवारिणीम् मातरम्। वन्दे मातरम्।३।

तुमि विद्या, तुमि धर्म
तुमि हृदि, तुमि मर्म
त्वं हि प्राणाः शरीरे
बाहु ते तुमि माँ शक्ति
हृदये, तुमि माँ भक्ति
तोमारई प्रतिमा गड़ि मन्दिरे—मन्दिरे।
वन्दे मातरम्।४।

त्वं हि दुर्गा दशप्रहरणधारिणीम्
कमला कमल—दल विहारिणीम्
वाणी विद्यादायिनीम् नमामि त्वां
नमामि कमलां, अमलां, अतुलाम्
सुजलां सुफलां मातरम्। वन्दे मातरम्।५।

श्यामलां, सरलां, सुस्मितां, भूषिताम्
धरणीं, भरणीं मातरम्। वन्दे मातरम्।६।

राष्ट्र' है, कहने की एक पद्धति आजकल चल पड़ी है। इस फैशन से स्वार्थ पूरा होता है; किन्तु इससे मातृभूमि का विस्मरण होता है।

आधुनिक जीवन-प्रवाह में बहने के कारण जन्मदात्री माँ के प्रति अनादर बढ़ता जा रहा है। अपने जन्म को माता-पिता के वैषयिक सुख का 'बाइ प्रॉडक्ट' कहने की प्रवृत्ति का निर्माण हो रहा है। पूर्वकाल में विशिष्ट संकल्प कर, उस पवित्र संकल्प से ही पुत्र-प्राप्ति की जाती रही और शेष जीवन संयम से व्यतीत किया जाता था; किन्तु आजकल सब कुछ बदल गया है, सम्पूर्ण जीवन काममय हो चुका है।

जगन्माता का भी विस्मरण

जिस प्रकार हम जन्मदात्री को भूल गये, वैसे ही सम्पूर्ण राष्ट्र को जन्म देनेवाली मातृभूमि को भी भूल गये। इन दो महान् माताओं के विस्मरण के बाद यह कैसे सम्भव है कि सर्वसृष्टि को जन्म देनेवाली अखण्ड मण्डलाकार जगन्माता का स्मरण रहे ? किसी को धर्म भाता नहीं। धर्म का नाम लिया कि जगन्माता का स्मरण होता ही है और उसके साथ उनकी पूजा भी आती है। शिव के साथ शक्ति की पूजा स्वाभाविक ही जुड़ी है। सन्त ज्ञानेश्वर ने जगन्माता के स्वरूप का विशद वर्णन करते हुए उसे 'शिवशक्तिरूप' ही बताया। हम सब को जगन्माता के इसी स्वरूप का विचार करना चाहिए।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के जीवन का एक प्रसंग है। स्वामी जी साधना करने के बाद सिद्ध पुरुष हो चुके थे, फिर भी वे कालीमाता के भक्त थे। ईश्वर-कृपा से तोतापुरी नाम के साधु से उनकी भेंट हुई। तोतापुरी अद्वैत स्थिति की प्रत्यक्ष अनुभूति प्राप्त किये हुए श्रेष्ठ साधु थे। रामकृष्ण को अद्वैत ज्ञान पाने का अधिकारी पुरुष पाकर उन्होंने कहा कि 'मैं तुम्हें अद्वैत का ज्ञान प्रदान करता हूँ।' ऐसा कहकर तोतापुरी ने रामकृष्ण जी के सिर पर हाथ रखा। उस समय रामकृष्ण जी को समाधि लग गयी। वे तीन दिन तक समाधि में रहे। श्वास का स्पन्दन भी बन्द हो गया। इस पर तोतापुरी को आश्चर्य हुआ; किन्तु इतना होते हुए भी रामकृष्ण जी की कालीमाता की भक्ति में कोई कमी नहीं आयी। कालीमाता के मन्दिर में जाकर वे तालियाँ बजाकर भक्ति में मस्त हो जाते थे। तोतापुरी ठहरे कठोर अद्वैती। वे कहते थे कि 'यह सब पाट-पसारा व्यर्थ है। जग मिथ्या है और ब्रह्म ही केवल सत्य है। ऐसा होते हुए भी तुम कालीमाता की भक्ति क्यों करते हो ?' रामकृष्ण जी ने उनसे कहा, 'मैं इनकी भक्ति करता हूँ, इसका कारण है कि ये 'जगन्माता' हैं।' तोतापुरी को यह बात नहीं पटती थी। तोतापुरी वहाँ से अन्यत्र जाने के लिए तैयार हुए, तो रामकृष्ण जी ने उन्हें रोक लिया।

इसके बाद तोतापुरी जी अस्वस्थ हो गये। उन्हें दस्त

जगत् की जननी

— रामनारायण त्रिपाठी 'पर्यटक'

नारी अबला नहीं,
जगत् की जननी है
वह है आदिशक्ति शिव की
हरि की कमला
विरञ्चि की ब्रह्माणी है।
वह सृष्टि नियामक
पौरुष की गाथा है
वह रत्नाकर की गहराई है
शुचि उन्नत 'सागरमाथा' है
वह सीता है, सावित्री है
वह करुणा, ममता, दया
क्षमा, औदार्य, अस्मिता है
वह जग की है आधारशिला
वह क्रीता नहीं, स्वामिनी है।
नारी अबला नहीं,
जगत् की जननी है।

वह शौर्य, धैर्य की प्रतिमा है
मानव-अन्तस की गरिमा है
वह गंगा है, सरस्वती सुपुनीता
उससे जग पाता पथ-प्रदीप
वह रश्मिराशि दिनकर की है।
भारतीय गौरव की ऊषा
वह दुष्ट विनाशक काली है
तम दूर भगाने धरती का
वह बनी प्रभाती लाली है
वह शाश्वत शक्ति प्रणेत्री
उससे नर ने पाया जीवन
वह ही उसकी शिक्षा है
वह नहीं किसी की भिक्षा
वह तो अमोघ वरदानी है
नारी अबला नहीं,
जगत् की जननी है।

उससे विरक्त हो भला कहो
क्या सृष्टि चलेगी ?
वाणी के विना कहीं नर की
स्वर-साधना फलेगी ?
वह क्रान्ति, शान्ति की उद्घोषक
वह प्रगति भावना की पोषक
वह माता है, पत्नी, पुत्री है
वह भाई की रक्षाबन्धन है
उसको मत हीन समझना
वह नहीं दया पर पलती
उससे पाता नर स्वाभिमान
वह उसका सम्बल है
वह पूज्या, पावन, महीयसी
वह दुर्गा है, कल्याणी है
नारी अबला नहीं,
जगत् की जननी है।

— साहित्य मन्दिर, ई–५३२१, राजाजीपुरम्, लखनऊ– २२६०१७

लगने लगे। औषधि आदि से भी कुछ लाभ नहीं हुआ। वे तत्त्वज्ञ थे। पद्मासन लगाकर ध्यान करते थे; किन्तु शारीरिक अस्वास्थ्य की इस स्थिति में अब आसन लगाकर बैठना भी कठिन हो गया, तब यह सोचकर कि अब देह समाप्त करने का समय आ चुका है, किसी को कुछ भी न बताते हुए वे गंगाजी में उतर पड़े। काफी देर तक गंगा जी में घूमने के बाद भी उन्हें डूबने लायक पानी का स्थान नहीं मिला। इसलिए वे वापस आये। उनके मन में विचार आया कि 'ऐसा क्यों हुआ ?' जब वे इस विचार में मग्न थे, उन्हें जगन्माता का साक्षात्कार हुआ। जगन्माता ने उनसे कहा– 'मुझे पार कर ब्रह्म को पाया जा सकता है। इसलिए मुझे समझे विना ब्रह्म कहाँ से प्राप्त होगा ? मैं यदि पार न जाने दूँ, तो वह दिखायी कैसे देगा ?'

श्रीरामकृष्ण सदैव एक कथा सुनाते थे। राम, लक्ष्मण, सीता वन में चलते थे, तब राम और लक्ष्मण के बीच में सीता जी चलती थीं। एक पंक्ति में तीनों चलते हैं और इसलिए बीच में सीता के आने के कारण लक्ष्मण को राम नहीं दिखायी पड़ते। तब सीता जी बीच में चलते हुए अपना एक पग थोड़ा बाजू में रख लेतीं, ताकि लक्ष्मण को श्रीराम दिखायी पड़ें। ठीक ही है, माया बाजू होने पर ही परब्रह्म के दर्शन सम्भव हैं। यही साक्षात्कार तोतापुरी को भी हुआ। इसके बाद उनकी बीमारी ठीक हुई और वे कालीमाता के दर्शन करने के बाद वहाँ से वापस हुए।

जगन्माता के कारण शक्ति

इसलिए यह स्पष्ट है कि जगन्माता के सिवाय ज्ञान नहीं। उपनिषद् या अन्य कहीं एक कथा आती है। युद्ध में दैत्यों का पराभव करने पर देवताओं को अपने पराक्रम का भारी गर्व हो गया। ऐसा गर्व होना अच्छी बात नहीं। इसलिए जिस समय सब देवता सभा में विराजमान थे, उनके समक्ष अकस्मात् एक भव्य रूप प्रकट हुआ। ग्रन्थ में उसे यक्ष कहा गया है। दैत्यों से भी अधिक भयंकर उस रूप को देखकर सब देवता घबरा गये। अब किसी-न-किसी को उसका सामना करना पड़ेगा। इसलिए तय हुआ कि जो सबसे बलवान् हो, पहले जाये। सर्वप्रथम वायुदेवता ही सामने आये। यक्ष ने वायु से पूछा, 'तुम्हारी शक्ति किस बात में है।' वायु ने कहा, 'मैं अपनी शक्ति से सारी सृष्टि को हिला सकता हूँ।' यक्ष ने कहा, 'ठीक है, यह घास का एक तिनका यहाँ रखा है, इसे हिला दो।' वायु ने अपनी सब शक्ति लगा दी; किन्तु उस घास के तिनके को वे हिला तक न सके। आखिर लज्जित होकर वापस हो गये। तब अग्निदेवता उठे; किन्तु अग्नि भी अपनी समस्त दाहक शक्ति का प्रयोग कर थक गये, उस तिनके को जला न पाये। अन्त में इन्द्र भी गये; किन्तु यक्ष ने यह दर्शाकर कि मानो इन्द्र की कोई बिसात ही नहीं है, वह इन्द्र के समक्ष स्वयं अन्तर्द्धान हो गया। तब इन्द्र विचार करने लगे कि देवताओं को क्या बताया जाये ? सब देवताओं के इस पराभव का क्या कारण

हो सकता है ? इस प्रश्न पर इन्द्र सोच रहे थे कि उन्हें एक देदीप्यमान स्त्री दिखायी दी। अत्यन्त तेजस्वी, हेमवती स्वरूपा उस स्त्री ने कहा, 'तू जिसकी खोज कर रहा है, जिससे वायु गतिमान है, जिसके कारण अग्नि में दाहकता है, वह तो समस्त सृष्टि की शक्ति परब्रह्म की जननी है।' यही जगन्माता मातृत्व का मूलस्वरूप है।

विश्व में मातृत्व का इतना उदात्त विचार किसी ने प्रस्तुत नहीं किया है। मातृत्व के सम्बन्ध में कोमलता और पवित्रता के विचार तो सर्वत्र प्रस्तुत किये जाते हैं। रोमन कैथोलिकों में मेडोना और उनके पुत्र येशु के ऐसे चित्र, जो हृदय को स्पर्श करनेवाले अत्यन्त प्रेमवान् हैं, पूजे जाते हैं। अपने यहाँ ज्ञानदायी, करुणामयी, जगत् को धारण करनेवाली, पालन करनेवाली होने के साथ-साथ संहार-स्वरूपिणी शक्ति इन तीन रूपों में उनका वर्णन हुआ है। जगन्माता का यह स्वरूप अन्य लोगों के ध्यान में नहीं आया। हमारे यहाँ माता, मातृभूमि और जगन्माता– ये त्रिविध रूप मातृत्व के बताये गये हैं।

अब हमें विचार करना चाहिए कि क्या हम इस संसार में केवल खाने-पीने के लिए ही जीवित हैं ? इस प्रकार का जीवन तो पशु-पक्षी भी जी लेते हैं। मनुष्य तो विचार करनेवाला बुद्धिमान् प्राणी है। इसलिए अपने हृदय में मातृत्व के सम्बन्ध में श्रेष्ठ भावना जगाकर अत्यन्त कृतज्ञता के साथ इस जन्मदात्री धरित्री और जगद्धात्री से अपना माता-पुत्र का नाता है, ऐसे मातृत्व के स्वरूप का ध्यान धारण कर उसकी उपासना करने के लिए कटिबद्ध होना चाहिए। पूर्ण श्रद्धा के साथ इसका पालन करना चाहिए। मानव-जीवन में कृतज्ञता का स्थान असामान्य है।

आजकल हम कहते हैं कि हमारी बड़ी प्रगति हो रही है; किन्तु मनुष्य कृतज्ञता भी भूलता हुआ दिखायी पड़ रहा है। अपने निजी सुख में डूबा वह माँ को भूलता है। कृतज्ञता की भावना क्षीण हुई प्रतीत होती है। यह प्रगति नहीं, मानवता से विमुख होनेवाली बात है। स्वार्थ की दृष्टि लेकर नहीं, अपितु सब ज्ञान देनेवाली शक्तिदात्री, ऐसी उसके सम्बन्ध में वास्तविक भावना होनी चाहिए। सर्वज्ञान-प्रदायिनी शक्तिदात्री जगन्माता की वास्तविक भावना के अभाव और केवल स्वार्थ-सीमित दृष्टि से ही उसकी ओर देखने के कारण जीवन पशुतुल्य बनता जा रहा है। कामप्रधान-जीवन सुसंस्कृत मनुष्य के जीवन का लक्षण नहीं है। अन्तःकरण में यदि कृतज्ञता का भाव नही रहा, तो जीवन जंगली हो जाता है। इसलिए सुसंस्कृत होकर माता के प्रति अपनी भक्ति उसके इन विविध स्वरूपों में नित्य करना अत्यावश्यक है। इसी में मातृप्रेम की सफलता निहित है और यही परिपुष्ट होकर भगवत्प्रेम में परिणत हो जाती है। □

('कल्याण' के जनवरी, २००३ के 'भगवत्प्रेम' विशेषांक से)

– प्रस्तुति : शिवकुमार गोयल

माँ ! तुझे शत-शत नमन

– विनायक दामोदर सावरकर

वे कौन हैं, जिन्हें परमेश्वर ने भरतखण्ड को स्वदेश कहकर पुकारने का सौभाग्य प्रदान किया है ? यह कृतार्थता, धन्यता और गौरव हमें प्राप्त है– केवल हमें। भगवान् ने भरत-भूमि को माता मानने, भरत-खण्ड को स्वदेश कहने के अधिकार का अभिषेक एकमात्र हम भारतीयों के मस्तक पर ही किया है। अपने कोटिक पुत्रों पर उसकी समान ममता है। जब करोड़ों स्वर समवेत स्वर से 'वन्दे मातरम्' का सुमधुर उच्चार करते हैं, तो उसका हृदय वात्सल्य से गद्‌गद् हो जाता है। इस प्रेममयी महाशक्ति और साथ ही इस परमेश्वरी आर्य भू-माता को हमारा सदैव प्रणाम।

अद्वितीय माँ

हे माँ ! इस जगतीतल पर तेरे ही समान किसी दूसरे रमणीय भू-प्रदेश का दर्शन करने की अदम्य लालसा से हिमालय ने अपनी गगनचुम्बी चोटियों की आँखों से सम्पूर्ण भू-लोक देख डाला; परन्तु यह रमणीयता और सौन्दर्य उसे कहीं भी देखने को नहीं मिला। फिर उसने सोचा कि यह रमणीयता शायद स्वर्ग लोक में देखने को मिल जाये, हिमालय अदम्य उत्साह से ऊँचे उठा और स्वर्ग का कपाट खोलकर उसमें प्रविष्ट हो गया; परन्तु हे माँ ! वहाँ भी तेरी मंगलमय छटा के दर्शन न हुए। हुआ यह कि हिमालय का दर्शन कर स्वर्गवासी देव-देवियाँ एवं अप्सराएँ चमत्कृत हो उठीं। हे आर्य भू माता ! जिस हिमालय को अपने वात्सल्य से पवित्र करने की लालसा गिरिजा पार्वती और भगवान् शंकर के हृदय में स्फुरित हुई, वह हिमालय तेरी गरिमा बढ़ा रहा है।

हे जननी ! सूर्य के समान तेजस्वी महान् विन्ध्याद्रि से तुम सम्पन्न हो। रायगढ़ और सिंहगढ़ जैसे रत्नों से सुशोभित, स्वतन्त्रता का देव-मन्दिर 'सह्याद्रि' तेरी निधि है। हिमालय, विन्ध्य, सह्याद्रि आदि कुल पर्वतों से अभिषिक्त हे भूमाता ! तुम्हें हमारा प्रणाम।

रत्नगर्भा माँ

हे माँ ! तू रत्नगर्भा है। अपार रत्नराशि तेरी गोद में भरी पड़ी हैं– इतनी कि तेरे स्वर्ण एवं रत्न से सम्पूर्ण जगतीतल भर जाये। गोलकुण्डा की कोहनूरों से भरी पेटी का हिसाब तो अलग ही है। असीम स्वर्ण से सुशोभित हे स्वर्ण भूमि ! तथा अनन्त कोहनूरों से तेजस्विनी हे आर्य वसुन्धरा ! तुझे हम प्रणाम करते हैं।

हे भूमाता ! धन-धान्य से परिपूर्ण तेरे कृषि-क्षेत्र सम्पूर्ण संसार का योग-क्षेम चलाने का सामर्थ्य रखते हैं– तू शस्य श्यामला है– तेरे सरोवरों में विकसित पुष्पों पर भौरें गुनगुनाया करते हैं– तेरे रथ को खींचनेवाले अश्वों की पीठ पर स्वयं परमात्मा ने खरारा करके उसे सँवारा एवं पवित्र किया है। सदा पयस्विनी 'गउवों' की भूमि, हे सुभगा भू-माता ! तुझे हमारा प्रणाम।

निसर्ग निर्मित संग्रहालय

संसार के समस्त देशों की अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं और वे ईश्वर-प्रदत्त होती हैं। कहीं ऊँचे पर्वत हैं, तो कहीं एक भी पर्वत-श्रेणी नहीं है। कहीं स्वर्णागार हैं, तो कहीं कोयले की खान भी उपलब्ध नहीं है। किसी देश को समुद्र वलय का पूर्ण संरक्षण प्राप्त है, तो कई ऐसे देश भी हैं, जो समुद्र की कल्पना तक नहीं कर पाते; किन्तु हमारी 'भू-माता' को जो-जो उत्तम, उदात्त, श्लाध्य और अभीप्सित है, परमेश्वर ने इस भारती में वह सब कुछ समाविष्ट कर दिया है। हिमालय के समान सुन्दर, गर्वीला एवं दुर्भेद्य पर्वत, कोहिनूर हीरे को जन्म देनेवाली खान, गंगा के समान पवित्र नदी और दोआब के समान उर्वरा भूमि कितने देशों में है ? हमारी माँ भारती अनेक अद्वितीय वस्तुओं से सम्पन्न है, उनका निःसर्ग निर्मित संग्रहालय है। सारांश, अत्युच्च पर्वत, गहरी नदियाँ, उर्वरा भूमि, सरस फल, सुगन्धित पुष्प, सभी धातुओं के भाण्डार, विविध खगवृन्द, विस्तीर्ण महासागर, सुन्दर सरोवर आदि जो भी निःसर्ग देव के वश की बात थी, उसे उसने सम्पूर्ण रूप से प्रदान किया है। इस अद्वितीय एवं वैभव से परिपूर्ण आर्य भू-जननी भगवती भारतमाता को हमारा सदैव वन्दन।

कर्त्तव्य की पराकाष्ठा

लेकिन केवल नैसर्गिक सौन्दर्य से ही इस भरतखण्ड का गुणवर्णन पूर्ण नहीं होता। यह तो उसके गुण-वर्णन का एक अंशमात्र है। स्वाभाविक सौन्दर्य निसर्गाधीन होता है तथापि उसके सद्गुणों और महानता की खरी कसौटी उसके कर्त्तव्य में निहित है। उत्तम देश वह है, जिसकी सन्तानों के अंग-अंग में असामान्य बल-विक्रम हो। हमारी मातृभूमि ऐसे वीर्यवान् पुत्रों की जननी है, जिनके तेज और ओज के समक्ष सूर्य-चन्द्र की आभा भी फीकी पड़ जाती है। जिस समय रोम, यूनान, मिस्र, असीरिया, इंग्लैण्ड, जापान, चीन, अमेरिका आदि का उदय भी नहीं हुआ था, उससे शताब्दियों पूर्व हमारे यहाँ मानव जाति का विकास दर्शन एवं तत्त्व के सूत्रीकरण तक पहुँच चुका था। जब संसार की अनेक भाषाओं के पास केवल ५००–६०० शब्दों का ही कोश था, उस समय भारत-भू के ऋषियों ने भाषा को सुसंस्कृत कर उसे सूक्ष्म विचार-प्रदर्शन के योग्य बनाया। उसे छन्दबद्ध कर उसके साथ ताल और उसकी धुनों पर लीला-नर्त्तन कराया।

यह भूमि वसिष्ठ, नामदेवादि ऋषियों द्वारा अभिसिञ्चित जल से पवित्र की गयी है। इन्द्र और वरुण सुदूर स्वर्ग से इस धरा पर अवतरित होते थे। वीर्यवान् एवं ब्रह्मज्ञ ऋषि इस भूमि पर तत्त्वज्ञान की चर्चा एवं शास्त्रार्थ में रत होते थे। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद इस भूमि से उपजे हैं। रामायण की सरसता क्या संसार के किसी काव्य में उपलब्ध हो सकती है ? महाभारत कें रूप में महर्षि व्यास की वाणी विमल-नीरज है– गीता का अर्थ उसकी उत्कट गन्ध है, अनेक आख्यान-उपाख्यान उसकी केसर हैं– हरिकथा पराग है। संसार के सज्जन रूप मधुकर उस पर अनुदिन मँडराया करते हैं। ऐसे महान् ग्रन्थ के रचयिता व्यास क्या संसार में कहीं अन्यत्र मिलेंगे ?

न्याय एवं सांख्य शास्त्र के प्रवर्त्तक और अन्धश्रद्धा से प्रभावित बुद्धि की अन्ध-परम्परा को तार-तार करके विचार-शक्ति का सर्वप्रथम जय-जयकार करनेवाले महामुनि कपिल भी अपनी इस भारती का 'हे माँ !' कहकर वन्दन किया करते थे। भास्कराचार्य, आर्यभट और वाराहमिहिर ने ज्योतिष और गणितशास्त्र के शोध किये थे। दशमलव की खोज, गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त, भूमिति, त्रिकोणिमिति, नाट्य और वैद्य-शास्त्र यहीं जन्मे हैं। सप्त स्वरों का गुञ्जन, मत्स्य रूप यन्त्र (कुतुबनुमा) का आविष्कार यही हुआ था। व्याकरण शास्त्र का निर्माण यहीं हुआ। शास्त्रशुद्ध लिपि और वर्णमाला सर्वप्रथम इसी भूमि में विकसित हुई। शिल्प-शास्त्र पर इसी भूमि का स्वामित्व रहा।

सम्पूर्ण धर्म-परम्परा का उद्भव

यह स्फूर्ति केवल काव्य में ही नहीं प्रकट हुई, तो मानवमात्र को धर्मतत्त्वों से लाभान्वित करने का श्रेय भी इसी भूमि को है। विश्व की सम्पूर्ण धर्म-परम्परा यहीं उद्भूत हुई। हम सब वेद-प्रणीत धर्म की महान् सन्तान हैं।

हिन्दू धर्म से महात्मा बुद्ध ने बौद्ध धर्म का प्रतिपादन किया। उसी की नकल करके ईसा मसीह ने ईसाइयत का प्रतिपादन किया। उसी की धार का पानी चढ़ाकर इस्लामियत अस्तित्व में आया। उस मुहम्मदी मत के प्रवाह को सन्त नानक ने पुनः आर्य धर्म से लाकर जोड़ दिया। हे अखिल विश्व के मानवो ! प्राण–प्रदाता इस आर्य–भू का अभिनन्दन करो।

जिस प्रकार जो खेत उत्तम उपज देता है, वह उत्तम माना जाता है। ठीक उसी प्रकार उत्तम स्त्री-पुरुषों को जन्म देनेवाला देश भी श्रेष्ठ होता है। भरत-भूमि में अंगिरस, गर्ग, वसिष्ठ, याज्ञवल्क्य, जनक, कणाद, कपिल, भास्कर, आर्यभट, वराहमिहिर, भरत, पाणिनि, बाणभट्ट, चरक, गौतम बुद्ध, शंकराचार्य, गुरु नानक, श्री रामचन्द्र, नल, युधिष्ठिर, अर्जुन, कृष्ण, कर्ण, चन्द्रगुप्त, शालिवाहन, अशोक, विक्रमादित्य, शुक्राचार्य, हरिश्चन्द्र, गार्गी, लोपामुद्रा, अहल्या, तारा, मन्दोदरी, सावित्री और सीता, प्रताप, छत्रसाल, प्रतापादित्य, शिवाजी, ज्ञानेश्वर, समर्थ रामदास आदि अगणित नर-पुंगवों एवं माताओं को जन्म देनेवाली हे ऋतुमयी, वसुमती, सुतले और सुफलिते ! हम तुम्हारी वन्दना करते हैं।

हे विविध विहिगा, विविध कुसुमा, हे पुराण देवी युवती पुरन्ध्री, हे तत्त्वज्ञ, शास्त्रज्ञ, हे प्रेममयी, धर्ममयी, हे सत्यमती, वीर्यमती, स्वातन्त्र्य तिलक विभूषिते ! तुझे हमारा वन्दन है। श्री शंकरादि त्रिदश देवताओं से संरक्षित, नारद, तुम्बर, व्यास, वाल्मीकि जिसके स्तोत्र गा रहे हैं, शिवा, प्रताप आदि वीर जिसके शत्रुओं के कण्ठ-रक्त का पान कर रहे हैं, उस वीर-प्रसवा महिमामयी माँ को हम बारम्बार प्रणाम करते हैं।

वन्दे मातरम् ! वन्दे मातरम् !! वन्दे मातरम् !!! ◻

माँ से पृथक् कहीं कुछ है भी !

– हृदयनारायण दीक्षित

माँ सृष्टि की आदि, अनादि, अनन्य अनुभूति है। प्रत्येक जीव माँ का विकास है। माँ प्रथमा है। दिव्यतम और श्रेष्ठतम अनुभूति है माँ। इसलिए सभ्यता-विकास के प्रारम्भिक चरण में ही मनुष्य को जहाँ-जहाँ अनन्य प्रीति मिली, वहाँ-वहाँ उसने माँ की अनुभूति पायी। जल जीवन का प्राण है। जल नहीं, तो जीवन नहीं। माँ नहीं, तो सृजन नहीं। विश्व के प्राचीनतम इनसाइक्लोपीडिया ऋग्वेद में जल को माताएँ (आपः मातरम्) कहा गया। नदियाँ पानी देती हैं, समृद्धि देती हैं, पवित्र करती है– पुनानः। ऋग्वैदिक ऋषियों के लिए सिन्धु माता है, सरस्वती माता है। मार्क्सवादी चिन्तक डॉ. रामविलास शर्मा ने बहुत बड़ी बात कही है, "सरस्वती की जैसी महिमा ऋग्वेद में है, वैसी किसी अन्य नदी की दूसरे देशों के साहित्य में दुर्लभ है।" वैदिक काल देवी उपासना से भरा-पूरा है। सामाजिक विज्ञान की दृष्टि से यह काल स्त्री आदर का है। यों देव शक्तियाँ स्त्रीलिंग या पुल्लिंग नहीं होतीं; लेकिन समाज अपने श्रद्धाभाव के चलते देवों को भी माँ या पिता कहता है।

भारत वैदिक काल से ही देवी उपासक है। समाज के विकासवादी विवेचन में मातृसत्ताक समाज व्यवस्था आदिम है, पितृसत्ताक बाद की। ऋग्वेद में ढेर सारे देवता हैं। अनेक देव पुरुषवाचक हैं और अनेक देवियाँ स्त्रीवाचक। लेकिन अदिति नाम की एक देवी में समूचा ब्रह्माण्ड, देश और काल भी समाहित है। ऋग्वेद (१.८९.१०) के गुनगुनाने लायक खूबसूरत मन्त्र में कहते हैं, **"अदितिः द्यौ, अदितिः अन्तरिक्षं, अदितिः माता सः पिता सः पुत्रः, अदिति विश्वेदेवाः, अदिति पंचजनाः, अदितिः जातम् जनित्वम्** अर्थात् "अदिति द्युलोक, अन्तरिक्ष, माता, पिता, पुत्र और अदिति ही विश्वदेव है, अदिति पञ्चजन है। जो कुछ है, हो चुका और होगा, सब अदिति ही है।" दुनिया की कोई भी कौम अपने ऐसे विराट् देव–देवी को अपना पुत्र नहीं कह पायी। यह सृष्टि–प्रकृति एक चिरन्तन प्रवाह है, इसी प्रवाह का नाम है अदिति। सो अदिति माता है, प्रवाह के अगले चरण में वही पुत्र है, जो हो चुका और होगा, वह सब अदिति ही है। यहाँ सृष्टि सम्भवन की प्रत्येक गतिविधि में एक निरन्तरता है, एक अविच्छिन्न प्रवाह है। यह प्रवाह एक दिव्य अनुभूति है, सो देवी है। वाणी भी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है।

ऋग्वैदिक मन्त्रों के द्रष्टा ऋषि हैं। ऋग्वेद में प्रत्येक सूक्त पर द्रष्टा ऋषियों के नाम छापे जाते हैं। ऋग्वेद और अथर्ववेद में २५ ऋषिकाओं के नाम हैं। वे ४२२ मन्त्रों की द्रष्टा हैं। वाक् आम्भृणी, घोषा, अपाला, उर्वशी, इन्द्राणी, शची, रोमशा, श्रद्धा, कामायनी, यमी वैवस्वती आदि प्रख्यात ऋषिकाएँ हैं। ऋग्वेद (१.१७९.२) में लोपामुद्रा का कथन सारगर्भित है, "सत्य की साधना करनेवाले देवतुल्य ऋषियों ने भी सन्तति-प्रवाह चलाया है, वे जीवन के अन्त तक ब्रह्मचारी ही नहीं रहे, उनके भी पत्नियाँ थी।" यहाँ गृहस्थ आश्रम की महत्ता है, सन्तति-प्रवाह न रोकने की स्थापना है। आगे का मन्त्र अगस्त्य का है, "हमने जीवन की तपः साधनाओं पर विजय पायी है, हम दम्पति अब सन्तति-प्रवाह में लगेंगे।" (वही मन्त्र ३) यहाँ लोपामुद्रा ऋषिका हैं, वे अगस्त्य ऋषि की पत्नी हैं। प्रत्यक्ष रूप में यह वार्त्ता व्यक्तिगत दिखायी पड़ती है; लेकिन इसकी स्थापनाएँ दिशाबोधक हैं, लोपामुद्रा का जोर गृहस्थाश्रम की सुदृढ़ता पर है, अगस्त्य का जोर तपः साधना पर; लेकिन लोपामुद्रा– अगस्त्य का समन्वय प्रीतिकर है। वैदिक स्त्री दब्बू और शोषक नहीं है। वह खुलकर बात करती है, लोपामुद्रा अपने ऋषि पति से भी सम्वाद करते समय खुलकर बोलती हैं। ऐसी ही एक ऋषिका हैं इन्द्राणी। इन्द्राणी का कथन है, "मैं मूर्द्धन्य हूँ और उग्र वक्ता हूँ।" (ऋ० १०. १५९.२) इन्द्राणी अथर्ववेद (२०.१२६) की भी मन्त्रद्रष्टा ऋषिका हैं। यहाँ उनकी उद्घोषणा वैदिक काल के भी पहले के नारी-सम्मान का यथार्थ दर्शन कराती है। कहती हैं, "प्राचीन काल से ही नारी यज्ञों और महोत्सवों में भाग लेती रही है।" (वही मन्त्र १०) यह प्राचीन काल वेदों के रचना-काल से भी बहुत पुराना होना चाहिए।

ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में सभा, समितियाँ हैं। सभा और समितियाँ वैदिक जनतन्त्र और स्नेहपूर्ण समाज का आधार हैं। सभा, समिति के उल्लेख ऋग्वेद में हैं, इसका अर्थ हुआ कि सभा, समितियाँ भी ऋग्वेद से प्राचीन हैं। इनका गठन, विकास प्राचीन है। ऋग्वेद में इनका उल्लेख बाद का है। अथर्ववेद में सभा और समिति को प्रजापति की पुत्रियाँ कहा गया है। ध्यान दीजिए, सभा और समिति जैसी आदर्श संस्थाएँ पुत्रियाँ हैं, पुत्र नहीं। स्त्रियाँ गुणों की खान हैं। ऋग्वेद (१.१२६.७) में ऋषिका रोमशा कहती हैं, "जिस प्रकार गान्धार की भेड़ रोमों से भरी होती हैं, उसी प्रकार मैं गुणों से भरपूर हूँ।" ऋग्वेद में केवल महिला ऋषिकाएँ ही नहीं हैं, यहाँ अनेक वीर महिलाओं के वर्णन भी हैं। विश्पला का पैर युद्ध में टूट गया था, अश्विनी देवों ने उसके कृत्रिम पैर लगाया (ऋ. १.११२.१०) ऐसी ही एक योद्धा है मुद्गलानी। वे रथारूढ़ होकर युद्ध जीतीं, उस समय उनके

वस्त्रों को वायुदेव ने सँभाला।" (ऋ० १०.१०२.२) स्त्रियाँ व्यसनीपति को छोड़ देती हैं, उन पर बाद की सामन्ती व्यवस्था जैसा दबाव नहीं है -- 'जुआरी की स्त्री पति को त्याग देती है।' (१०.३४.३) ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषद् साहित्य में स्त्री-विदुषियों के अनेक प्रसंग है। बृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी का खूबसूरत वाद-विवाद है। यहाँ गार्गी और याज्ञवल्क्य का प्रश्नोत्तर पठनीय है। गार्गी यहाँ सभानेत्री हैं।

सृष्टि-प्रवाह में स्त्री और पुरुष दोनों की भूमिका है; लेकिन माँ जननी है। दोनों का मन-हृदय एक होना चाहिए। दोनों का एकात्म ही आनन्दमग्न परिवार का उपकरण है। अग्नि ऋग्वैदिक काल के शीर्ष देवता हैं। अग्नि दोनों का मन-हृदय मिलाते हैं — समनसा कृणोषि। अग्नि दोनों का मन बेशक मिलाते है; लेकिन ऋषि ने स्वयं भी इनकी उपमा पति को चाहनेवाली स्त्री से की है। (ऋ. १.७३.३) वैदिक स्त्री स्वाधीन है, वह पुरुष के सामने स्वाभिमानी है, वह मन्त्रद्रष्टा ऋषिका है, वह युद्ध में वीरव्रती है, वह यज्ञ-कार्य में बराबर की भागीदार है, वह देवोपासक है। बावजूद इसके वह मर्यादा का उल्लंघन नहीं करती, "सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए स्त्री अपना शरीर केवल पति को ही दिखाती है। बाकी लोग केवल वस्त्र देखते हैं।" (ऋ. १०.७१.४) ऋग्वैदिक काल की स्त्री की स्थिति सम्मानजनक है, वह आदरणीय है। डॉ. रामविलास शर्मा की सटीक टिप्पणी है, "ऋग्वेद में स्त्रियों की स्थिति की जानकारी इस बात से भी होती है कि यहाँ देवों के साथ देवियाँ भी बार-बार वन्दनीय मानी गयी हैं।" दोनों घर-गृहस्थी का काम साथ-साथ करते हैं, साथ-साथ सोम निचोड़ते हैं और साथ-साथ देवोपासना भी करते हैं। (८.३१.५) मित्र देवता भी दोनों का मन एक करते हैं।

वैदिक काल की यही परम्परा पुराणकाल तक अविच्छिन्न है। शिव-पार्वती में पार्वती समतुल्य रूप में आदरणीया हैं। सीताराम में सीता माता है। श्रीराम कौसल्या, सुमित्रा के साथ कैकेयी को भी आदरणीय मानते हैं। पुराणकाल की 'दुर्गा सप्तशती' की समूची कथा ही देवी की पराक्रम गाथा है। **"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः"** जैसी नारी सम्मान की उद्घोषणा विश्व समुदाय को भारतीय संस्कृति की ही देन है। भारतीय वाङ्मय में हजारों नारी पात्र हैं, जो उल्लेखनीय और पठनीय हैं। भारत मातृशक्ति-आराधक राष्ट्र है। यहाँ गंगा माता है, गाय माता है, सिन्धु माता है। वाणी माता है, नदियाँ माता हैं, नीम का पेड़ माता है। सृष्टि का कण--कण यहाँ माता है — या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता। भारत पुरुषवाचक है; लेकिन भारतीय अनुभूति में भारत भी माता है, पृथ्वी माता है। सारी विद्याएँ माता हैं। समूची सृष्टि माता है — **विद्या समस्तास्तव देवि भेदा, स्त्रिया समस्ता सकला जगत्सु।** □

— एल-१५६२, सेक्टर-आई, ल.वि.प्रा. कालोनी,
कानपुर मार्ग, लखनऊ— २२६०१२ (उ.प्र.)

आद्यशक्ति : मातृशक्ति

– माधव गोविन्द वैद्य
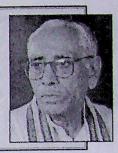
सम्पूर्ण विश्व में हिन्दू धर्म ही एक ऐसा धर्म है, जिसमें स्त्री को देवता के स्वरूप में देखा गया है। दुनिया के अन्य सब मजहबों, सम्प्रदायों, पन्थोपपन्थों में यह स्थिति नहीं है। वहाँ Female God-head (फीमेल गॉड हेड) को मान्यता नहीं है। परब्रह्म तो निर्गुण, निराकार और केवल होता है। वह अकेला रहता है; किन्तु उसको ही अनेक होने की इच्छा हुई। 'एकोऽहम्, बहुस्यामि'– इस उक्ति में वह चाह प्रकट हुई है और परिणामतः विविधता से ओतप्रोत सारी सृष्टि उत्पन्न हुई। सृष्टि के विस्तार के लिए मिथुन की आवश्यकता होती है। अतः स्त्रीरूप भी उत्पन्न हुआ। स्त्री और पुरुष, प्रकृति और पुरुष इस प्रकार की जोड़ी अनादि है और अनन्त रहनेवाली है। जहाँ कहीं भी परमात्मा का सगुण रूप आविष्कृत हुआ, या भक्तों ने उसको चुना, वहाँ सर्वत्र वह परमात्मा जोड़ी के रूप में ही प्रकट हुआ है। विष्णु के साथ लक्ष्मी हैं, शिव के साथ पार्वती हैं। शिव को तो अर्द्धनारीश्वर कहा गया है। महाकवि कालिदास कहते हैं कि शब्द और अर्थ के समान, पार्वती और शिव परस्पर सम्पृक्त हैं। वागर्थमिव सम्पृक्तौ''– ये कालिदास के शब्द हैं। अनेक हिन्दू पुरुषों के नाम स्त्रीयुक्त जोड़ी के साथ हैं। जैसे उमाशंकर, लक्ष्मीनारायण, राधाकृष्ण, सीताराम। ये सारे द्वन्द्व समास है। और यह भी लक्षणीय है कि सभी में स्त्री का नाम प्रारम्भ में है और पुरुष का बाद में।

ऋग्वेद का प्रमाण

परमात्मा की सृजनशक्ति का नाम 'माया' है। वह स्त्रीरूपिणी है। वह जगदम्बा यानी जगन्माता है। यह परम्परा बहुत प्राचीन काल से चालू है, जिसके निर्माणकाल को काल भी छूने से डरता है, उस प्राचीनतम ऋग्वेद में स्त्रीदेवताओं का निर्देश है। उनमें अदिति सर्वश्रेष्ठ है। ऋग्वेद में मन्त्र है: "अदितिद्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः"।

अर्थ है अदिति ही द्युलोक है। वह अन्तरिक्ष है। वह माता, पिता और पुत्र भी है। (ऋग्वेद मण्डल– १ सू. ८६, मन्त्र १०) यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता में अदिति को महामाता, ऋताची, अधिष्ठात्री, पराक्रमी, रक्षणकर्त्री और मार्गदर्शक कहकर उसे गौरवान्वित किया है। संहिता के पश्चात् निर्मित वैदिक साहित्य में इस भगवती को उमा, काली, दुर्गा, चण्डी, कात्यायनी आदि अन्य नाम भी प्राप्त हैं। देवीपुराण में उसे तीन रूपों में वर्णित किया गया है। वह 'महाकाली' यानी संहारकशक्तिवाली है। वह 'महालक्ष्मी' यानी पोषणशक्तिसम्पन्न भी है और वह 'महासरस्वती' यानी ज्ञानदायिनी भी है। शाक्त सम्प्रदाय में 'देवी' को जगन्माता और सर्वव्यापक माना गया है। देवीमहात्म्य में उसका यह वर्णन करनेवाला श्लोक है :

"ब्रह्मविद्या जगद्धात्री सर्वेषां जननी तथा।
यया सर्वमिदं व्याप्तं त्रैलोक्यं स चराचरम्।।

अर्थ है– जगद्धात्री देवी ब्रह्मविद्या है। वह सब की जननी है और उसने सम्पूर्ण चराचर त्रिभुवन व्याप्त किया है।

ब्रह्मवादिनी महिलाएँ

अभी परम्परा चल पड़ी है कि स्त्री वेदमन्त्रों का पठन नहीं कर सकती; किन्तु यह आदिम सत्य नहीं है। वेदों के मन्त्रद्रष्टा ऋषियों में महिलाओं का भी अन्तर्भाव है। उनमें अनेक ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ थीं। पराशर संहिता पर लिखे अपने भाष्य में सुविख्यात वैदिक पण्डित सायणाचार्य, 'हारीत स्मृति' का आधार लेकर बताते हैं कि कन्याओं के दो वर्ग होते थे। एक ब्रह्मवादिनियों का वर्ग था और दूसरा सद्योवधुओं का। ब्रह्मवादिनी, ज्ञानमार्ग का निष्ठा से अवलम्ब करती थीं और सद्योवधू विवाह करती थीं। बृहदारण्यक उपनिषद् में ब्रह्मवादिनी गार्गी का उल्लेख है। याज्ञवल्क्य महान् विद्वान् थे। गार्गी ने उनसे शास्त्रार्थ किया। उनमें इस प्रकार प्रश्नोत्तर हुए।

याज्ञवल्क्य– "यह सारी पृथ्वी जल में स्थित है।"
गार्गी– "जल किसमें स्थित है ?"
याज्ञवल्क्य– "आकाश में।"
गार्गी– "आकाश किस में व्याप्त है ?"
याज्ञवल्क्य– "वायु में।"
गार्गी– "वायु किसमें ओतप्रोत है ?"
याज्ञवल्क्य– "अन्तरिक्ष में।"

अन्त में याज्ञवल्क्य ने कहा, ये सब ब्रह्म में अधिष्ठित हैं। तब गार्गी बोली, "ब्रह्म किस में स्थित है ?" तब याज्ञवल्क्य कुछ क्रोधित हुए और झल्लाकर बोले, "अति प्रश्न मत पूछ।"

याज्ञवल्क्य की दो पत्नियाँ थीं। एक कात्यायनी और दूसरी मैत्रेयी। जब संन्यास लेने का समय आया, तब याज्ञवल्क्य ने अपनी सम्पत्ति के दो भाग किये और एक हिस्सा कात्यायनी को दिया और दूसरा मैत्रेयी को। तब

मैत्रेयी बोलीं, "मुझे सम्पत्ति नहीं चाहिए। अमृतत्व देनेवाला आत्मज्ञान चाहिए।"

माता का महत्त्व

तात्पर्य यह कि प्राचीन भारत में उच्च कोटि की ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ थीं और समाज में उनका बड़ा आदर एवं गौरव रहता था; किन्तु ऐसी महिलाओं की संख्या कम ही रहती थी। सामान्यतः महिलाएँ गृहस्थाश्रम स्वीकार करती थीं। प्राचीन हिन्दुओं की समाज-व्यवस्था में चार आश्रमों का बड़ा महत्त्व था। उनमें गृहस्थाश्रम को 'सर्वोपकारक्षम' आश्रम कहा गया है; क्योंकि गृहस्थाश्रम के द्वारा ही ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थ आश्रमवालों की देखभाल हुआ करती थी। इस गृहस्थाश्रम की आधारशिला, गृहिणी यानी माता रहती थी।

प्राचीन समाज-व्यवस्था में माता का स्थान बड़ा ऊँचा माना जाता था। "न मातुः परदैवतम्"। माता से अधिक श्रेष्ठ देवता नहीं है। महाभारत में महाराज युधिष्ठिर से यक्ष प्रश्न करता है– "किं स्वित् गुरुतरं भूमेः" यानी पृथ्वी से भी अधिक गौरवपूर्ण कौन है ? युधिष्ठिर का उत्तर है, "माता"। माता पूज्यतम है। जिस किसी वस्तु को पूज्यता अर्पण करनी होती है, अपनी संस्कृति में, उसे माता के रूप में बताया जाता है। फिर हमारा सारा भावविश्व ही बदल जाता है। पृथ्वी तो कंकड़ पत्थरवाली जड़ होती है; किन्तु उसे मातृरूप में देखा और उसे भूमाता या मातृभूमि कहा कि वह जड़ नहीं रहती। सचेतन, जीवमान हो जाती है। वह 'समुद्रवसना' बनती है। 'पर्वतस्तनमण्डला' हो जाती है। स्वर्ग से भी श्रेष्ठ होती है। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' यह वचन प्रसिद्ध है। बंकिमचन्द्र जैसे भावकवि के लिए तो फिर वह 'दशप्रहरणधारिणी दुर्गा' बनती है। 'कमलदलविहारिणी कमला' (=लक्ष्मी) होती है। 'विद्यादायिनी वाणी' का रूप उसे प्राप्त होता है। चार पाँव की पशुयोनि की गो जब 'गोमाता' बनती है, तब उसका पशुत्व मानो समाप्त हो जाता है। इसी भाव से नदियाँ लोकमाताएँ बनी हैं। गंगा का रूपान्तर गंगामैया में और तुलसी का तुलसीमैया में होता है। मातृभावना का ऐसा महत्त्व है। वह अपना एक वैशिष्ट्यपूर्ण जीवनमूल्य है। 'मातृवत् परदारेषु' यह अपनी संस्कृति का विशेष मूल्य है। दूसरे की स्त्री को अपनी माता के रूप में देखने का एक बार स्वभाव बन गया कि फिर सारी शबल भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं। अपनी माता के समान वह परायी स्त्री माता बन जाती है। फिर उसके लिए केवल आदर और गौरव रह जाता है और उसकी ओर से केवल वत्सलभाव की अपेक्षा रहती है।

इस प्रकार जो आद्यशक्ति थी, वह मातृशक्ति हो गयी– जन्मदात्री माता के समान असीम आदरपात्र, पूजनीय, गौरवान्वित और सब से महान्। इस प्रकार का उच्च-कोटि का मातृगौरव, विश्व में और कहीं होगा ? □

– ३०१, तारा विलास अपार्टमेण्ट, डॉ. मुञ्जे मार्ग,
धन्तोली, नागपुर– ४४००१२ (महाराष्ट्र)

धरती मातृ-शक्ति पर ही टिकी है– मनु

– प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय

भारतीय नारी की सामाजिक स्थिति के विषय में प्रणीत आधुनिक विमर्श-साहित्य में उसके ह्रास का दोषारोपण, विशेषरूप से वामपन्थी विचारकों ने उत्तर वैदिक काल के धर्माचार्यों और शास्त्रकारों पर किया है। नारी की दयनीय स्थिति और दुर्दशा के लिए उन्होंने प्रायः स्मृतिकारों को उत्तरदायी ठहराया है।

श्रुतियों (वेदों) और सूत्रकाल के मध्य, सामाजिक व्यवस्था में जो विधि-विधान एवं आचार-विचार मौखिक रूप से परम्परा में सुरक्षित चले आ रहे थे, उन्हीं को ग्रन्थरूप में निबद्ध करने पर 'स्मृति' का नाम दिया गया। वैदिक साहित्य की दुर्बोधता के कारण, समाज को सरल-सुबोध ढंग से मर्यादित पथ पर चलने की प्रेरणा देने के लिए, वैदिक तत्त्वज्ञान को ही आचार्यों ने स्मृतियों के रूप में प्रस्तुत कर दिया। 'श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्व गच्छत'– सदृश सूक्तियाँ इसकी द्योतक हैं। यही स्मृति-साहित्य अपनी सर्वांगीणता के कारण कालान्तर से धर्मशास्त्र के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। 'श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः' प्रभृति कथन इसके प्रमाण हैं। स्मृतियाँ बहुसंख्यक हैं; लेकिन 'प्रयोगपारिजात' के अनुसार मुख्य स्मृतियाँ १८ ही हैं, जिनमें मनु स्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति विशेष महत्त्वपूर्ण मानी जाती हैं। अन्य स्मृतियाँ भी अपने-अपने विशिष्ट प्रतिपाद्य के कारण ग्राह्य होती रहती हैं। स्मृतियों की प्रामाणिकता वेदानुसरण पर ही निर्भर है। वेद बाह्य होने पर वे निष्फल मानी जाती हैं, जैसा कि मनु का कथन है–

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फला व्यर्था तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः।।

(मनु स्मृति, १२.६५)

स्मृति-साहित्य में निश्चय ही कहीं-कहीं प्रक्षिप्त वचन भी मिलते हैं; लेकिन प्रबुद्ध पाठक प्रकरण तथा सम्पूर्ण ग्रन्थ की एक साथ अन्विति एवं संगति का आकलन कर उसका निराकरण भी कर लेते हैं।

जहाँ तक स्मृतियों में नारी-विमर्श है, उसकी प्रयोजन, प्रतिपाद्य एवं प्रासंगिक दृष्टि से अर्थवत्ता असन्दिग्ध है। कहीं-कहीं उसमें निहित अर्थ के मर्म तक पाठक के न पहुँच पाने के कारण भ्रम भी उत्पन्न होते रहे हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित बहुचर्चित पद्य को लिया जा सकता है–

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्रीस्वातन्त्र्यमर्हति।। (मनु. ६.३)

इसमें 'स्वान्त्र्यमर्हति' शब्द स्थूलदृष्ट्या स्त्री की स्वतन्त्रता का विरोधी प्रतीत होता है; लेकिन जब हम अन्य पादों में, तीन बार आयी 'रक्षा' क्रिया के साथ इसका अन्वय करते हैं, तो इसका सही अर्थ स्वयमेव सामने आ जाता है। तात्पर्य यह कि प्रत्येक अवस्था में स्त्री को रक्षा की आवश्यकता होती है– उसकी सुरक्षा करने में उसका निजी सुरक्षा-तन्त्र अर्थात् शारीरिक सामर्थ्य पर्याप्त नहीं है। अंग्रेजी में इसका अनुवाद होगा– She should not be left without proper protection. नारी की सामान्य स्वतन्त्रता पर इससे कोई आँच नहीं आती।

स्त्रियों के सन्दर्भ में अलग-अलग पक्षों को लेकर भी स्मृतिकारों ने विचार किया है। उदाहरण के लिए स्त्री-धन के विषय में कात्यायन-स्मृति में अधिक विस्तार से विचार किया गया है। मेधातिथि और विश्वरूप जैसे धर्मशास्त्रियों ने इस सन्दर्भ में कात्यायन को बहुधा उद्धृत किया है।

गृहस्थ-जीवन की समरसता के लिए स्मृतिकारों ने पति-पत्नी के पारस्परिक आनुकूल्य पर बार-बार बल दिया है– 'भर्तुः समानव्रतचारित्वम्।' मनु का कथन है कि स्त्री जैसे गुणोवाले पति के साथ विवाह करती है, उन्हीं गुणों से वह भी उसी प्रकार संयुक्त हो जाती है, जैसे समुद्र में मिली हुई नदी तद्वत् ही हो जाती है–

यादृग्गुणेन भर्ता संयुज्येत यथाविधि।
तादृग्गुणा सा भवति समुद्रेणेव निम्नगा।।

(मनु. ६.२२)

ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि शूद्रवर्ण में उत्पन्न स्त्रियों को भी विकास के अवसर प्राप्त रहे हैं। दासीपुत्र कक्षीवान् की पुत्री काक्षीवती घोषा के द्वारा साक्षात्कृत अनेक मन्त्र ऋग्वेद में मिलते हैं (ऋ.सं. १०.३६.१-१४; १०.४०.१-१४)।

मनुस्मृति का निर्देश है कि यदि किसी पुरुष का विवाह परिस्थिति अथवा संयोगवश किसी अनिच्छित स्त्री से भी हो गया हो, तब भी पुरुष को उसका भरण-पोषण करना ही चाहिए; क्योंकि इससे देवता प्रसन्न होते हैं–

देवदत्तां पतिर्भार्यां विन्दते नेच्छयात्मनः।
ता साध्वी बिभृयान्नित्यं देवानां प्रियमाचरन्।।(३.५६)

स्मृतियों ने पुत्रवधुओं, कुमारी कन्याओं तथा गर्भवती और रुग्णा स्त्रियों को सर्वप्रथम भोजन कराने का भी निर्देश दिया है (मनुस्मृति ३.११४)।

वसिष्ठ स्मृति का कथन है कि परिवार में विद्यमान सास-ससुर, जेठ, देवर, चाचा तथा अन्य सभी सदस्यों को चाहिए कि वे स्त्रियों को वस्त्राभूषण तथा रुचिकर भोजनादि प्रदान करते हुए उनका सदैव सम्मान करें–

भर्तुः भ्रातृपितृव्यैश्च श्वश्रूश्वसुरदेवरैः।
पुत्रैश्च पूजनीया स्त्री भूषणाच्छादनाशनैः।। (५.१८)

मनुस्मृति ने तो सैद्धान्तिक रूप से कन्याओं को भी पिता की मृत्यु के उपरान्त पैतृक धन में हिस्सा पाने का अधिकारी बनाया है; क्योंकि आत्मीयता की दृष्टि से पिता के लिए दोनों समान ही हैं–

यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा।
तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत्।। (६.१३०)

विवाहिता स्त्रियों के सन्दर्भ में, कालान्तर से समाज ने इस नियम का परिपालन कुछ दूसरे रूप में निर्धारित किया। दहेज-प्रथा का आरम्भ सम्भवतः इसी क्रम में हुआ। मूलतः 'दहेज' शब्द 'दायाद्य' शब्द से ही निष्पन्न प्रतीत होता है। कृषिप्रधान देश में विवाह के अवसर पर कन्या को कृषि का अंश न देकर, उसके तुल्य धन दे देना ही व्यावहारिक था; क्योंकि विवाह के बाद मायके में आकर खेती कराना, उसके लिए असुविधाजनक ही था– फिर खेती को बार-बार बाँटना भी परिवार की अगली पीढ़ियों को ध्यान में रखकर उचित नहीं था। भ्रातृ-द्वितीया, रक्षाबन्धन तथा सन्ततियों के विवाहादि के अवसरों पर भी विवाहिता स्त्रियों को निरन्तर कुछ-न-कुछ मायके से मिलते रहने की परम्परा भी इसी क्रम में प्रचालित हुई प्रतीत होती है।

मनु ने जीवन की सम्पूर्ण व्यवस्था ही स्त्रियों को ध्यान में रखकर निर्धारित की है; क्योंकि परिवार में स्वर्गिक आनन्द उन्हीं पर निर्भर है– उनके विना न तो सन्तानों का पालन सम्भव है और न अन्य सुख–

अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषां रतिरुत्तमा।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्च हि।। (६.२८)

शतपथ (५.२.१.१०) और तैत्तिरीय (३.३.५) संज्ञक ब्राह्मण ग्रन्थों ने स्त्री और पुरुष की समान स्थिति अक्षरशः निर्धारित की है और निःसंकोच यह घोषित किया है कि पत्नी के विना मनुष्य अधूरा है; क्योंकि वह उसका अर्द्ध भाग है–

'अर्धो ह वा एष आत्मनो यज्जाया, तस्माद् यावज्जायां न विन्दते नैव तावत् प्रजायते असर्वो हि तावद् भवति, अथ यदैव जायां विन्दतेऽथ प्रजायते, तर्हि सर्वो भवति। ...अथो अर्धो वा एष आत्मनः यत्पत्नीः।।'

स्मृतियों से ज्ञात होता है कि भारतीय समाज में स्त्रियों की द्विविध स्थितियाँ रही हैं। एक तो वे जो आजीवन 'ब्रह्मवादिनी' रहकर ज्ञान-विज्ञान के आदान-प्रदान में संलग्न रहती थीं– इसमें विवाहिता और अविवाहिता दोनों ही भाग लेती थीं। दूसरी वे जो विवाह करके मात्र गृहस्थ जीवन के दायित्वों के निर्वाह में ही लगी रहती थीं–

'द्विविधाः स्त्रियः। ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च। तत्र ब्रह्मवादिनी नामुपनयनमग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भिक्षाचर्या।। (स्मृतिचन्द्रिका १.२४)

स्त्रियों के गौरव-ज्ञापन की परम्परा तो ऋग्वेद से ही प्रारम्भ हो गयी थी, जिसमें उन्हें घर का पर्याय तथा स्वर्गिक सुख का केन्द्र बतलाया गया है–

'जायेदस्तं मधवन् त्सेदु योनिः' (ऋ.सं. ३.५३.४)।

एक अन्य मन्त्र में कहा गया है कि पति-पत्नी का मिलन उसी प्रकार है, जैसे वृक्ष को जल से सींचना– सुशील और कल्याणी पत्नी की प्राप्ति पुरुष के सौभाग्य की पराकाष्ठा है–

याभिः सोमो मोदते हर्षते च कल्याणीभिर्युवतिभिर्नमर्यः।
ता अध्वर्यो अपो अच्छापरेहि यदासिञ्चा ओषधीभिः पुरस्तात्।। (ऋ.१०.३०.५)।

ऋग्वेद के ही एक मन्त्र में स्त्री को परिवार में ब्रह्मा के समकक्ष कहा गया है–

'स्त्री हि ब्रह्मा बभविथ' (ऋ.सं. ८.३३.१६)।

नारी के मूल्यांकन में स्मृतियों ने बहुधा इसी वैदिक परम्परा का अनुवर्तन ही नहीं, पुरोवर्तन भी किया है। स्मृतियों में निरूपित नारी के भव्य स्वरूप की सम्यक् अभिव्यक्ति महाकवि भवभूति के 'उत्तररामचरित' के निम्नलिखित पद्य में देखी जा सकती है। कथन है ब्रह्मवेत्ता राजर्षि जनक का, अपनी वनवासिनी पुत्री सीता से– 'तुम मेरी कन्या हो या शिष्या, जो भी हो और जैसी भी हो, वह अपनी जगह ठीक है; लेकिन महत्त्व की बात यह है कि तुम्हारे प्रति मेरी अगाध श्रद्धा तुम्हारे उत्कृष्टतम आचरण के कारण है। तुम चाहे स्त्री हो या शिशु– अपने श्रेष्ठ आचरण के कारण निःसन्देह जगद्वन्दनीय हो; क्योंकि गुणियों का आदर उनके गुणों से होता है न कि लिंग अथवा अवस्था के आधार पर–

शिशुर्वा शिष्या वा यदसि मम तत्तिष्ठतु तथा
विशुद्धेरुत्कर्षस्त्वयि तु मम भक्तिर्द्रढयति।
शिशुत्वं स्त्रैणं वा भवतु ननु वन्द्यासि जगतां
गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः।। (४.११)

महान् ज्योतिर्विद् वराहमिहिर तो सीधे-सीधे प्रश्न करते हैं कि आप ही लोग सच-सच बतलाइये कि ऐसा कौन-सा दोष है, जो स्त्रियों में तो हो; लेकिन पुरुषों में न हो ? यह तो असभ्य पुरुषों की धृष्टता ही है कि वे स्त्रियों में दोष निकालते हैं– वास्तव में स्त्रियाँ तो गुणागार ही हैं, जैसा कि मनु महाराज ने कहा है–

'प्रब्रूत सत्यं कतरोऽङ्गनानां दोषोऽस्ति यो नाचरितैः मनुष्यैः।
धाष्ट्र्येन पुंभिः प्रमदा निरस्ताः गुणाधिकास्ताः मनुनात्र चोक्तम्।।'

वराहमिहिर ने मनु स्मृति के जिन पद्यों का निर्देश किया है, उनमें से एक यह है–

स्त्रियः साध्व्यो महाभागाः सम्मता लोकमातरः।
धारयन्ति महीं राजन् ! इमां सवनकाननाः।।

वराहमिहिर ने उन सभी को दुष्ट ही माना है, जो वैराग्यवश स्त्रियों के गुणों को ओझल करके केवल उनके दोषों को गिनाने का पाप करते हैं, ऐसे लोगों को सद्भावना से रहित ही मानना चाहिए–

ये ऽप्यङ्गनानां प्रवदन्ति दोषान्
वैराग्यमार्गेण गुणान् विहाय।
ते दुर्जना मे मनसो वितर्कः
सद्भाववाक्यानि न तानि तेषाम्।।

प्राचीन आचार्यों ने स्त्रियों को समग्ररूप से पूज्य बतलाया है– **'स्त्रियो मेध्यास्तु सर्वतः।'**

वराहमिहिर ने 'बृहत् संहिता' के 'स्त्री-लक्षणम्' संज्ञक प्रकरण में स्त्रियों के गौरव का निरूपण अत्यन्त विस्तार से ७०वें एवं ७४वें अध्यायों में किया है। तदनुसार यदि स्त्री से कोई दोष भी हो गया हो– किसी दुष्ट व्यक्ति ने उन्हें दूषित कर दिया हो, तब भी वे निर्दोष ही मानी जाती हैं; क्योंकि प्रत्येक मासिक-धर्म से स्त्रियों के दोषों का निराकरण हो जाता है।

आचार्यों ने उन पुरुषों की कसकर भर्त्सना की है, जो नारी के जननी और पत्नी स्वरूपों की गरिमा को भूलकर उसकी निन्दा में संलग्न हो जाते हैं– ऐसे कृतघ्न लोगों को भला कहाँ से सुख मिल सकता है–

जाया वा स्यात् जनित्री वा सम्भवो स्त्रीकृतो नृणाम्।
हे कृतघ्नाः ! तयोर्निन्दां कुर्वतां वः कुतः सुखम्।।

नारी-निन्दा करनेवालों की स्थिति वराहमिहिर की दृष्टि में वैसी ही है, जैसे कोई चोर चोरी करने के बाद उल्टे गृहस्वामी को ही चोर ठहराने लगे। हिन्दी में यह मुहावरा 'उल्टा चोर कोतवाल को डाटे' सम्भवतः इसी प्रसंग से रूढ़ हुआ– यह तो ढिठाई की पराकाष्ठा ही हो गयी–

अहो धाष्ट्र्यमसाधूनां निन्दतामनघाः स्त्रियः।
मुष्णतामिव चौराणां तिष्ठ चौरेति जल्पताम्।।

स्मृति-काल की ही उपलब्धि है 'महाभारत', जिसमें भी नारी-गौरव के अनेक उत्कृष्ण उदाहरण हैं। उसमें सुलभा नाम की एक ऐसी विलक्षण विदुषी स्त्री का वर्णन है, जिसने अध्यात्मचर्चा के प्रसंग में राजर्षि जनक तक को अवाक् कर दिया था (महाभारत, शान्तिपर्व, ३२१.२०-१९२)। इसी पर्व में कहा गया है कि स्त्री तो कभी कोई अपराध करती ही नहीं। सारे अपराधों और पापों का कर्त्ता तो पुरुष ही है, जो उन्हें स्त्री पर आरोपित कर देता है।

'नापराधोऽस्ति नर एवापराध्यति'

(शान्तिपर्व २६६.३८–४०)

वास्तव में स्त्री की मर्यादा पर आघात मुस्लिम आक्रमणकारियों के कारण हुआ। उनसे सम्भावित भय और उत्पीड़न के कारण लोग कन्याओं का विवाह अल्पायु में करने लगे और 'अष्टवर्षा भवेद् गौरी, दशवर्षा तु रोहिणी' जैसी उक्तियाँ प्रचलन में आयीं तथा स्त्रियों को शिक्षा से वञ्चित रहना पड़ा, जो आज भी तालिबानी मानसिकता से ग्रस्त लोग कर रहे हैं। हिन्दू धर्मशास्त्र का इसमें कोई दोष नहीं है। □

– बी–१/४, विक्रान्त खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ (उ.प्र.)

सती शिरोमणि अनसूया जी

सती-साध्वी स्त्रियों में अनसूया जी का स्थान बहुत ऊँचा है। स्वायम्भुव मनु की पुत्री देवी देवहूति इनकी माता और ब्रह्मर्षि कर्दम इनके पिता थे और भगवान् विष्णु के अवतार कपिल मुनि इनके अनुज। अनसूया जी में अपने वंश के अनुरूप ही सत्य, धर्म, शील, सदाचार, विनय, लज्जा, क्षमा, सहिष्णुता तथा तपस्या आदि सद्गुणों का स्वाभाविक रूप से विकास हुआ था। ब्रह्मा जी के मानसपुत्र परम तपस्वी महर्षि अत्रि को इन्होंने पतिरूप में प्राप्त किया था। अपनी सतत सेवा तथा पावन प्रेम से अनसूया ने महर्षि अत्रि के हृदय को जीत लिया था। पति की सेवा को ही ये नारी के लिए परम कल्याण का साधन मानती थीं।

कहते हैं कि भगवती लक्ष्मी जी, पार्वती जी और ब्रह्माणी जी को अपने पातिव्रत्य का बड़ा अभिमान था। भगवान् और किसी के अभिमान को चाहे सहन कर लें; किन्तु वे अपने भक्तों के हृदय में उठे हुए अभिमान के अंकुर को तुरन्त नाश कर देते हैं। यही उनकी भक्तवत्सलता है। भगवान् ने देखा कि जगत् वन्दनीया देवियों को बड़ा गर्व हो गया है, तो उनके गर्व को खर्व करने के निमित्त कौतुकप्रिय नारद के मन में प्रेरणा की। वीणा बजाते हरि गुण गाते नारद जी को अपने यहाँ आते देखकर लक्ष्मी जी बोलीं, आइये नारद जी! अब की तो बहुत दिनों में आये !'

नारद जी बोले, 'माता जी ! क्या बताऊँ, कुछ बताते नहीं बनता। अब की बार मैं घूमता-घामता भगवान् अत्रि के आश्रम पर पहुँच गया। वहाँ भगवती अनसूया के दर्शन कर कृतार्थ हो गया। आज संसार में उनके समान पतिव्रता कोई भी नहीं है। उन्होंने अपने तप के प्रभाव से गंगा की एक धारा प्रकट कर दी।' लक्ष्मी जी ने पूछा, 'नारद ! क्या पातिव्रत्य में वे मुझसे भी बढ़कर हैं !' नारद जी बोले, 'माता जी ! सच तो यह है कि आप उन देवी अनसूया की तुलना में पासंग के बराबर भी नहीं।'

यह सुनकर लक्ष्मी जी रोष से बोलीं, 'नारद! यह समय बतायेगा कि वह पासंग हैं या मैं।' उन्होंने मन ही मन अनसूया को नीचा दिखाने का निश्चय किया। नारद जी अपना काम कर चलते बने।

भगवान् ने लक्ष्मी जी कोपभवन में देख उनके रोष का कारण पूछा। लक्ष्मी जी बोलीं, 'आपको अनसूया के पातिव्रत्य की परीक्षा लेनी होगी।'

भगवान् मुस्कराये, समझ गये और फिर चल पड़े अनसूया जी के आश्रम की ओर।

इधर नारद जी कैलास पहुँचे। पार्वती जी ने उनका स्वागत किया और खाने को एक लड्डू दिया। नारद जी बोले, 'अहा ! कैसा स्वादिष्ट लड्डू है; किन्तु भगवती अनसूया के यहाँ जैसा स्वाद तो है नहीं।'

'नारद ! यह तू क्या कह रहा है। कौन अनसूया ?'

'माता जी ! भगवान् अत्रि की प्राणप्रिया पत्नी भगवती अनसूया के सदृश कोई पतिव्रता नहीं।'

'मुझसे भी अधिक ?'

'उनके पातिव्रत्य के समक्ष आपका पातिव्रत्य फीका है।' नारद जी चिनगारी को ज्वाला बना खिसक लिये। पार्वती जी. शिव जी के पास पहुँचीं, 'आप मुझे पतिव्रताओं में शिरोमणि कहते हैं; परन्तु नारद तो कहता है कि अनसूया जी के समक्ष मेरा पातिव्रत्य फीका है !'

शिव जी बोले, 'अनसूया के पातिव्रत्य की कोई तुलना नहीं।' यह सुनते ही निराश उमा ने हठ पकड लिया कि अनसूया का सतीत्व भंग कर मुझे ही सती शिरोमणि की प्रतिष्ठा देनी होगी। भोलेनाथ चल दिये, 'बोले प्रयास कर देखता हूँ अन्यथा किसका साहस है कि अनसूया के पातिव्रत्य को भंग करने की कल्पना भी कर सके !'

इधर ब्रह्मलोक पहुँच नारद जी ने ब्रह्माणी जी को कहा, 'मैंने मर्त्य-लोक में एक बड़ी अद्भुत बात देखी कि कोई तपोबल में इतना बढ़ जाये, जिसके समक्ष देवी-देवताओं का भी तपोबल फीका पड़ जाये। माता जी ! अत्रिपत्नी अनसूया का ऐसा ही प्रभाव है।'

ब्रह्माणी ने शंका प्रकट की, 'क्या वह मुझसे भी बढ़कर है ?' नारद जी बोले, 'सभी ऋषि-मुनि यही बात कह रहे हैं कि आज अनसूया से बढ़कर कोई पतिव्रता नहीं।' यह सुनते ही ब्रह्माणी ब्रह्मा जी के पास जाकर हठ करने लगीं कि उन्हें किसी भी प्रकार अनसूया का पातिव्रत्य भंग करना होगा।' ब्रह्मा जी भी भगवान् की इस लीला में सम्मिलित होने निकल पड़े।

मन्दाकिनी के तट पर त्रिदेवों की परस्पर भेंट हुई और कुछ विचार-विमर्श के बाद साधुवेष में अनसूया के पातिव्रत्य की परीक्षा लेने का कार्यक्रम बनाया। उन्होंने अनसूया से जाकर यही भिक्षा माँगी कि वे विवस्त्र होकर उनका आतिथ्य-सत्कार करें। यह सुनकर पहले तो अनसूया स्तम्भित हुई। फिर अपने योगबल से सब रहस्य समझ गयीं। उन्होंने अपने पातिव्रत्य के प्रभाव से तीनों देवों को छह मास का शिशु बना दिया तथा विवस्त्र होकर अपना स्तन-पान कराकर मातृत्व-शक्ति की पराकाष्ठा दिखा दी, जिसे देखकर तीनों महादेवियों का अभिमान चूर हो गया। वे अनसूया के चरणों पर गिरकर ही अपने-अपने पतियों को उनके ममता-बन्धन से मुक्त करा सकीं। ▫

– प्रस्तुति : डॉ. सर्वेशचन्द्र शर्मा
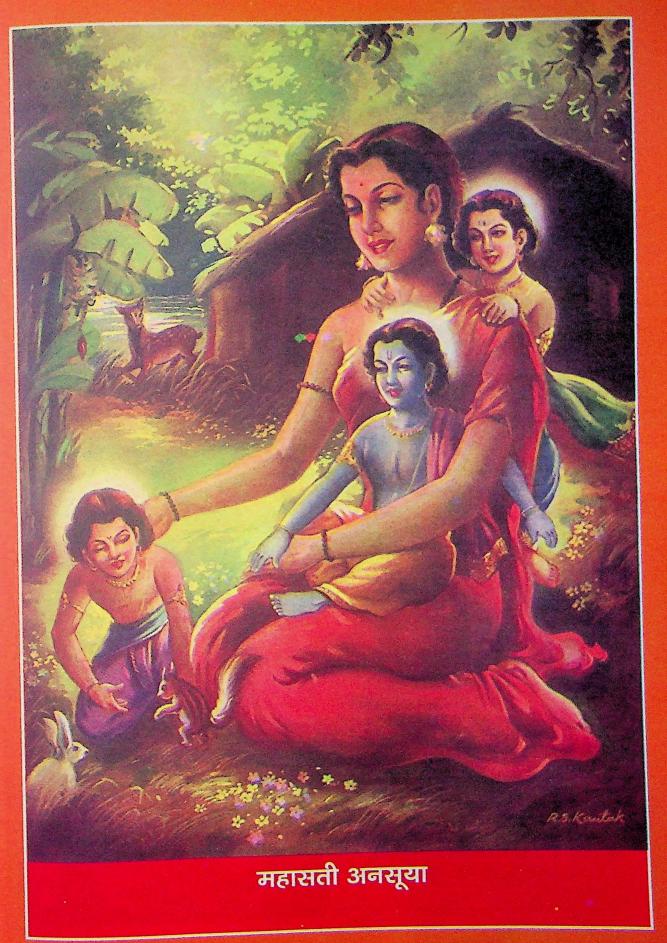
महासती अनसूया

द्रौपदी

– डॉ. अम्बाशंकर नागर

महर्षि व्यास प्रणीत महाभारत द्वापर युग में कौरवों के द्वारा हुई धर्म की ग्लानि और परिणामस्वरूप पाँचो पाण्डवों के द्वारा धर्म के पुनर्स्थापन के लिए कुरुक्षेत्र में लड़े गये भीषण युद्ध की कथा है। इस युद्ध में यादवेन्द्र श्रीकृष्ण और द्रुपदनन्दिनी द्रौपदी की भूमिका गौण होते हुए भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इन दोनों दिव्य नर-नारी का जन्म ही अधर्म को मिटाकर धर्म की स्थापना के लिए हुआ था। द्रौपदी अयोनिजा थी, अपूर्व सुन्दरी थी। उसकी देह-यष्टि अत्यन्त सन्तुलित थी। देह की कान्ति उज्ज्वल नीलमणि के सदृश थी। महर्षि व्यास ने उसे नख से शिख तक सुन्दर बताया है। वह चिर तरुणी बनकर जन्मी थी और अन्त तक तरुणी ही बनी रही। रूपमती होने के साथ वह गुणवती भी थी। सभी नारी-सुलभ गुणों से वह मण्डित थी। श्रीकृष्ण भी दिव्य पुरुष थे। वे मानव देहधारी साक्षात् भगवान् थे।

ये दोनों नहीं होते, तो युद्ध ही नहीं होता। युद्ध नहीं होता, तो धर्म-राज्य की स्थापना नहीं होती। सामान्यतया युद्ध के लिए दोषी दुर्योधन को माना जाता है; क्योंकि वह कहता है– 'सूच्याग्रं नैव दास्यामि' सुई की नोक के जितनी जमीन भी विना युद्ध के नहीं दूँगा; किन्तु युद्ध के वास्तविक उत्प्रेरक द्रौपदी और श्रीकृष्ण हैं।

पाण्डव वीर थे, नरपुंगव थे, युद्ध–कला में निपुण थे, उनके पास दिव्यास्त्र भी थे; किन्तु वे शान्तिप्रिय, युद्ध-विरत, धर्मानुयायी व्यक्ति थे। उन्हें युद्ध के लिए प्रेरित किया द्रौपदी ने; क्योंकि उसका कुरु सभा में घोर अपमान हुआ था। विचारणीय यह है कि श्रीकृष्ण क्यों पाण्डवों के पक्षधर, प्रेरक, सहायक और सारथी हुए ? क्या इसलिए कि पाण्डव उनके बुआ के बेटे, भाई थे, जिन पर कौरव तरह-तरह के अत्याचार कर रहे थे ? अथवा इसलिए कि वे द्रौपदी के सखा थे और नारी-वत्सल होने के कारण वे कौरवों के द्वारा किये गये उसके अपमान को नहीं सह सके थे और उसका बदला लेना चाहते थे ? कुछ अध्येताओं की मान्यता है कि श्रीकृष्ण लोकरक्षक, मनुष्य देहधारी भक्तवत्सल भगवान् थे और जो कुछ वे कर रहे थे, धर्म संस्थापनार्थ कर रहे थे।

कारण कुछ भी रहा हो, यह स्वीकार करना पड़ता है कि युद्ध के लिए पाण्डवों को प्रेरित द्रौपदी और श्री कृष्ण ने ही किया था अन्यथा पाण्डव युद्धोन्मुख नहीं थे। अर्जुन ने तो युद्धभूमि में जाकर भी लड़ने से इनकार कर दिया था। श्रीकृष्ण गीता न सुनाते और अपना विराट् रूप न दिखाते, तो अर्जुन गाण्डीव उठाने को तैयार ही नहीं होता। इसलिए युद्ध के पश्चात् महारानी गान्धारी ने इस भीषण नर-संहार और कौरव-कुल के सर्वनाश के लिए द्रौपदी और श्रीकृष्ण को ही दोषी, उत्तरदायी माना। द्रौपदी के साथ तो उसके कौरव पुत्रों ने अत्याचार किया था, इसलिए उसे क्षमा करके श्रीकृष्ण को उसने शाप दिया कि 'यह युद्ध तेरे कारण हुआ, इसलिए मेरे कुल की तरह तेरे यादव कुल का और तेरा भी नाश होगा।' और यह अभिशाप चरितार्थ भी हुआ। इस अभिशाप के कारण ही यादव कुल का, मूसलों से परस्पर लड़कर नाश हुआ और श्रीकृष्ण भी जरा व्याध के बाण से स्वर्ग सिधारे।
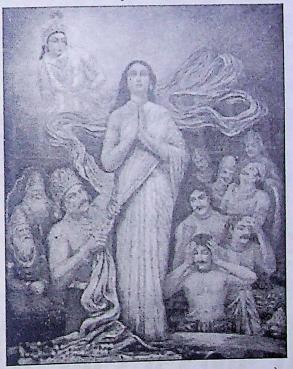
श्रीकृष्ण अकारण ही अभिशप्त हुए। उन्हें सम्राट् बनना नहीं था, धन-धान्य का उन्हें मोह नहीं था, कौरवों से उनकी दुश्मनी नहीं थी। व्यर्थ का रक्त-संहार हो, यह वे चाहते नहीं थे, वे शान्ति-चाहक व्यक्ति थे। इसीलिए जरासन्ध से युद्ध न करके, वे मथुरा छोड़कर द्वारका आ गये थे। इसी कारण उनका एक नाम 'रणछोड़' पड़ गया था। वे शान्ति-दूत बनकर कौरवों को समझाने हस्तिनापुर भी गये थे। स्यात् युद्धोन्मुख वे द्रौपदी के अनुरोध की रक्षा हेतु ही हुए थे।

श्रीकृष्ण अपने समय में नारी-मुक्ति आन्दोलन के अग्रदूत

थे। वे नारी-हितैषी, गोपीजन-वल्लभ थे। रुक्मिणी का पत्र पाकर उसकी मुक्ति के लिए उन्होंने उसका हरण किया था। पाताल के नरकासुर को मारकर उसके कारागार से सोलह हजार नारियों को मुक्त करके उन्होंने उनका वरण किया था। जनश्रुति है कि उनके रनिवास में सोलह हजार एक सौ आठ रानियाँ थीं। वे नारी-वत्सल थे। द्रौपदी के तो वे सखा थे। जब-जब द्रौपदी ने पुकारा, वे गरुड छोड़कर, नंगे पाँव दौड़े आये थे। कुरु-सभा में द्रौपदी के चीर-हरण के समय उसकी सहायता करना तो प्रसिद्ध ही है।

द्रौपदी और श्रीकृष्ण का सम्बन्ध अनिर्वचनीय सम्बन्ध था। रिश्ते में सम्भवतः वे उसके देवर या जेठ रहे होंगे। द्रौपदी उन्हें भगवान् मानती थी और उनकी अनन्य भक्त थी। यह भक्ति दास्य-भाव की न होकर सख्य-भाव की थी। वह श्रीकृष्ण को सखा मानती थी और संकट के समय अपना सुख-दुःख श्रीकृष्ण से ही कहती थी। यह सम्बन्ध इतना प्रगाढ़ था कि महाभारत के युद्ध के पहले, अर्द्ध-रात्रि में, भीष्म पितामह के शिबिर में जब द्रौपदी आशीर्वाद लेने गयी, तब उसकी चरण-पादुकाएँ दुपट्टे में लपेटकर श्रीकृष्ण काँख में दबाये बाहर खड़े रहे थे। इन प्रगाढ़ सम्बन्धों को देखते हुए लगता है कि श्रीकृष्ण ने द्रौपदी के अपमान का दण्ड देने के लिए पाण्डवों को कौरवों से युद्ध करने के लिए प्रेरित किया और तन-मन-धन से उनकी सहायता भी की।

आधुनिक युग में 'स्त्री-विमर्श' की बड़ी चर्चा है। नारी विमर्श के अध्येताओं को महाभारत की नारियों पर भी दृष्टिपात करना चाहिए। महाभारत में केवल द्रौपदी ही नहीं है, शकुन्तला, अनामिका, उर्वशी, सावित्री, दमयन्ती, देवयानी, माधवी, सुलभा, कपोती भी हैं और द्रौपदी की समकालीन नारियों में सत्यवती, गान्धारी, कुन्ती, सत्यभामा, रुक्मिणी, उलूपी, सुभद्रा, चित्रांगदा, हिडिम्बा आदि भाँति-भाँति की और किस्म-किस्म की नारियाँ हैं। द्रौपदी की सौतों की संख्या ग्यारह थी। इन नारियों के चित्र-विचित्र चरित्रों के अवलोकन से आज से पाँच हजार वर्ष पहले के युग में नारियों की स्थिति का प्रत्यक्ष परिचय मिलेगा और यह देखकर आश्चर्य भी होगा कि युगान्तर हो जाने के पश्चात् भी नारी की स्थिति में कोई खास अन्तर नहीं आया है।

वस्तुतः नारी की जो स्थिति तब थी, वही अब है। उस समय नारी का वरण-हरण होता था, आज भी होता है। बहुपत्नीत्व-पतित्व की प्रथा तब थी, आज भी है। कु-सन्तान और नियोग तब था, आज भी है। नियोग का नया रूप 'स्पर्म डोनेशन' है। अपहरण-बलात्कार तब भी होते थे, अब भी होते हैं। रही नारी के मान-अपमान की बात, वह आज भी वैसी ही है। बाह्य परिस्थितियाँ बदलीं हैं, पर नारी की अन्तर्दशा नहीं बदली। यह बदलाव आवश्यक है। द्रौपदी का पात्र हमें इसकी प्रेरणा देता है। इसीलिए आज
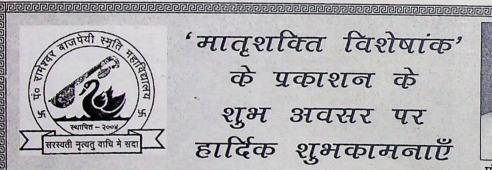
के युग में भी द्रौपदी प्रासंगिक और प्रेरक है।

आज जो नारी सशक्तीकरण की इतनी चर्चा है, वह वास्तव में नारी और पुरुष के बीच में जो भेद-भाव है, उसे मिटाने और उसे वैधानिक मान्यता देने की ही माँग है। नारी को पारम्परिक बन्धनों और वर्जनाओं से मुक्ति दी जानी चाहिए। द्रौपदी, पौराणिक नारियों में प्रथम विद्रोही नारी थी, जिसने कुरु-सभा में राजा-महाराजाओं और धर्म-धुरन्धरों के बीच खड़ी होकर न्याय की माँग की थी और अपनी वाग्मिता के कारण विजयी होकर पतियों के द्वारा द्यूत में हारे गये राजपाट को धृतराष्ट्र से प्राप्त किया था। उसकी वाक्छटा, उसकी बुद्धिमत्ता, उसकी तेजस्विता की जितनी सराहना की जाय, कम है। द्रौपदी ने असह्य दुःख से पीड़ित होकर कुरु-सभा को सम्बोधित कर कहा, **'जहाँ वृद्ध नहीं है, वह सभा-सभा नहीं है। जो धर्म की व्याख्या नहीं करते, वे वृद्ध नहीं हैं। जिसमें सत्य नहीं है, वह धर्म नहीं है। जिसमें छल-कपट है, वह सत्य नहीं है।'**

महाभारत की प्रखर अध्येता, परम विदुषी, श्रीमती दुर्गा भागवत ने 'व्यास पर्व' में द्रौपदी के इन वचनों को सराहते हुए द्रौपदी के सम्बन्ध में कहा है, "नारी जाति के सनातन तेज और दौर्बल्य को द्रौपदी के चित्र में मनोज्ञतापूर्वक अंकित किया गया है। प्रीति और रति, भक्ति और मैत्री, संयम और आसक्ति के द्वन्द्व का सूक्ष्म सन्तुलन जैसा द्रौपदी के व्यक्तित्व में निखर उठा है, वैसा किसी अन्य पौराणिक नारी में मुझे नहीं दिखा।" (व्यास पर्व, पृ. १०३ ज्ञानपीठ)

श्रीमती दुर्गा भागवत का कथन सही है। **महर्षि व्यास ने द्रौपदी का चरित्र-पट काले और सफेद रेशमी धागों से बुना है, इसमें काले रंग का धागा नियति का है और पुरुषार्थ का धागा सफेद रंग का है। नियति के कारण देह-धारण से देह-विसर्जन तक उसका जीवन आपदा, विपदा और अनगिनत कष्टों से घिरा रहा; किन्तु अन्याय का उसने सदा डटकर मुकाबला किया।**

द्रौपदी की आत्मकथा, व्यथा की करुण कहानी है। वह यज्ञ की ज्वालाओं से जन्मी और हाड़-मांस की नारी बनकर आजीवन सांसारिक पञ्चाग्नि में जलती रही। यज्ञ की उन्हीं ज्वालाओं से द्रौपदी का अग्रज धृष्टद्युम्न भी जन्मा था; किन्तु वह पुरुष होने के कारण सदा गरिमामण्डित रहा। द्रौपदी को इतने कष्ट नारी होने के कारण ही सहने पड़े।

द्रौपदी में इन्द्राणी का अंश था। इन्द्राणी एक, इन्द्र अनेक। द्रौपदी के भी पाँच पति थे। अर्जुन उसका इच्छा-पुरुष था। भीम उसका हँसने-बोलने का सहचर और रक्षक था। युधिष्ठिर धर्मोपदेश

झाँसी वाली रानी याद आती है

— कमल किशोर 'भावुक'

ऋतुपर्व चाहे कोई भी रहा हो, उम्र भर—
वीरों का वसन्त ही मनाया रानी झाँसी ने।
भारत की बेटियाँ ये सिर्फ ओस-बिन्दु नहीं
ज्वाला भी हैं, युद्ध में बताया रानी झाँसी ने।
दाँतों में दबा लगाम, खट्टे कर दिये दाँत,
ऐसा रण-कौशल दिखाया रानी झाँसी ने।
नहीं दूँगी झाँसी, कभी नहीं दूँगी, प्रण यह—
अन्त तक प्राण दे, निभाया रानी झाँसी ने।

घायल थी झाँसी वाली सिंहिनी समर-मध्य,
ध्येय का महान रथ लेकिन रुका नहीं।
शत्रु थे समर्थ और कारनामे भी कुटिल,
किन्तु रोक पाया अवरोध बेतुका नहीं।
तन में थकन भले, मन में लगन दृढ़,
साहस का कोष भी था किञ्चित चुका नहीं।
परिणाम कुछ भी रहा हो युद्ध का मगर,
जीते जी पवित्र ध्वज देश का झुका नहीं।

देश के पुनीत गौरव-गान में विराजमान,
वीरता की अमिट निशानी याद आती है।
पानी-पानी जिसने किया था वैरियों का पानी,
उस पानीदार की कहानी याद आती है।
थामे मुँह में लगाम, दोनों हाथों में कृपाण,
भारत की भारती भवानी याद आती है।
गोरों को कराया याद, जिसने छठी का दूध,
आज वही झाँसी वाली रानी याद आती है।

भूल आँसुओं की कथा आग में पली जो सदा,
खौलते रुधिर की रवानी याद आती है।
रणभूमि में दिखायी नारी की अदम्य शक्ति,
जौहर की ज्वाल-सी जवानी याद आती है।
मेंहदी-रची हथेलियों ने थामी तलवार,
लोहा लेती कोमल कहानी याद आती है।
धर्मयुद्ध-वेदी पर हँसते हुए चढ़ी जो,
आज वही झाँसी वाली रानी याद आती है।

— 'भावुक-भवन', ५४५क/ई-५६, प्रभातपुरम्
(आलमनगर स्टे. के सामने), राजाजीपुरम्,
लखनऊ— २२६०१७ (उ.प्र.)

देनेवाले समादरणीय गुरु थे। नकुल-सहदेव के प्रति उसका दाम्पत्य से, वात्सल्य भाव अधिक था। यह सब सहज था, स्वाभाविक था।

द्रौपदी के जीवन की सबसे करुण घटना, युद्धोपरान्त अश्वत्थामा द्वारा उसके निद्राधीन पाँच पुत्रों की हत्या है। इन समाचारों से आहत होकर उसका हाहाकार कर उठना और क्रोधित हो जाना स्वाभाविक है; किन्तु जब भीम और अर्जुन अश्वत्थामा को पकड़कर लाते हैं और उसका वध करना चाहते हैं, तब द्रौपदी कहती है, "इसे छोड़ दो, ब्राह्मण है, गुरुपुत्र है, इसे खोकर इसकी माँ, जिसका पति अभी युद्ध में मारा गया है, निराश्रित हो जायेगी।" द्रौपदी की वत्सलता और उदारता का यह अप्रतिम उदाहरण है। नारी होते हुए द्रौपदी इतना बड़ा आघात सह सकी; किन्तु शूरवीर होते हुए भी द्रोणाचार्य 'अश्वत्थामा हतः' सुनकर अचेत हो गये। दुःख को भोगना, सहना, पी जाना बड़ी बात होती है। दुःख आदमी को माँजता है, उज्ज्वल करता है, द्रौपदी समुज्ज्वला थी।

द्रौपदी और पाण्डवों की कथा तो महाभारत की माला का मात्र एक मनका है। भारतीय संस्कृति की इस बृहद् कथा में महानता ही नहीं, क्षुद्रता भी है। सत्य ही नहीं, असत्य भी है। उत्थान ही नहीं, पतन भी है। धर्म ही नहीं, अधर्म भी है। न्याय ही नहीं, अन्याय भी है। दयालुता ही नहीं, क्रूरता भी है; किन्तु द्रौपदी की चुनरी में कहीं दाग-धब्बा नहीं है, वह निष्कलंक है। द्रौपदी के चरित्र की इस निर्मलता और उदात्तता के कारण ही हजारों वर्ष बीत जाने पर भी महाभारत की यह कथा काल-कवलित नहीं हुई और आज भी प्रासंगिक है।

आज हम जिस युग में जी रहे हैं, वह युग विज्ञान का युग है और वैश्वीकरण की ओर उन्मुख हैं; किन्तु इस युग में भी लोभ, मोह, स्वार्थ, सत्ता का घमासान युद्ध, व्यक्ति, समाज और राष्ट्रों में वैसा ही है। राग, द्वेष, क्रोध, ईर्ष्या आज के मानव में भी है। धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय का संघर्ष तब भी था, अब भी है। नारी की दुर्दशा तो आज पहले से भी अधिक है। गोप-संस्कृति में नारी गृहिणी थी, वह संयुक्त-परिवार के कारण दुःखी थी। आज संयुक्त-परिवार टूट रहे हैं। आज की नारी घर की चारदीवारी से बाहर निकल पड़ी है। परिणामस्वरूप उसे पद-पद पर दुर्योधन, दुःशासन, जयद्रथ और कीचक मिलते हैं और उसे बचाने के लिए न तो गदाधर भीम हैं और न गरुडध्वज श्रीकृष्ण हैं। ऐसे में उसकी थोड़ी बहुत सहायता द्रौपदी के चरित्र की निर्भीकता, न्यायप्रियता, सदाचारिता और वाग्मिता ही कर सकती है। बाकी तो उसको अपना पथ अपने आप प्रशस्त करना होगा।

द्रौपदी के पाँच पति थे; पर पाँचों धर्म-भीरु थे। इसीलिए द्रौपदी के घोर अपमान के समय भी वे उसकी सहायता नहीं कर सके। आज धर्म का स्थान 'अर्थ' और 'काम' ने ले लिया है। इसीलिए आज भी नारी निराश्रित है। विराट् पर्व में द्रौपदी दुःखी होकर कहती है– "जिसका पति युधिष्ठिर जैसा हो, उसका सुख से क्या वास्ता !"

महाभारत में द्रौपदी के २२ वक्तव्य हैं। सभी प्रेरक हैं। वे नारी सशक्तीकरण के आलोक-स्तम्भ हैं। द्रौपदी का पात्र 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की नाट्यात्मक अभिव्यक्ति है। स्वर्ग-पथ में द्रौपदी और पाण्डवों के पहुँच जाने के बाद हमें पारस्परिक मान-अपमान, राग-द्वेष, उत्थान-पतन, जय-पराजय सब निःसार प्रतीत होते हैं और एक उदात्त भूमिका में कृतकार्य होकर द्रौपदी इस संसार से विदा होती है। स्वर्गारोहण में उसके पाँच पतियों में से कोई उसके लिए नहीं रुका ! भीम झिझका, तो युधिष्ठिर ने मर्मवेधी कटु वचन कहे, 'रुको मत, पीछे मत देखो, आगे बढ़ो !' यह सुनकर अपने अन्तिम क्षणों में द्रौपदी को जो आघात लगा, वह उसकी करुणान्तिकी है।

उपर्युक्त कथन को इन शब्दों से विराम देना समीचीन होगा 'द्रौपदी के जीवन-संगीत में ताल जीवन का है; किन्तु संगीत मृत्यु का है, जिसमें वादी वह स्वयं है, संवादी पाण्डव हैं और विवादी कौरव हैं। वाद्यवृन्द देशकाल है और संगीत निर्देशक नियति है।' ◻

– 'शिवम्', सरस्वती नगर,
अहमदाबाद– ३८००१५ (गुजरात)

नारी सदा महान्

– विजय कुमार

हमारे आस-पास अनेक ऐसी मातायें-बहनें हैं, जिनके जीवन-प्रसंग प्रेरणादायी ही नहीं, प्राणवत्तादानी भी हैं; पर हमारी दृष्टि उन सामान्य-सी दीखती अपने गाँव, मोहल्ले, घर, परिवार की उन महिलाओं के उन गुणों की ओर नहीं जाती, जो उन्हें हमारी पारिवारिक जीवनधारा में समाहित संस्कारों से उन्हें अनायास प्राप्त होते हैं और जिन्हें कोई विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय प्रदान करने में सक्षम नहीं है।– सम्पादक

मातृशक्ति के बारे में सोचते समय हमारा ध्यान प्रायः प्राचीन नारियों की ओर ही जाता है, जबकि नारी कल ही नहीं, आज भी उतनी ही महान् है। ऐसे ही कुछ प्रसंगों की चर्चा करना यहाँ उचित होगा, जिनकी अमिट छाप मेरे मन-मस्तिष्क पर है। स्थान और पात्रों के नाम जानबूझ कर छोड़ दिये हैं, क्योंकि महत्त्व प्रसंग और उसके पीछे की भावना का है, नाम का नहीं।

बात गंगा के किनारे बसे उत्तराञ्चल के एक नगर की है। वहाँ दिल्ली के एक स्वयंसेवक उद्योगपति ने किसी समय एक भूखण्ड खरीदा। उसके पीछे सोच यह थी कि जनसेवा के लिए कोई भवन बनवायेंगे, जहाँ वे और उनके परिजन भी कभी-कभी सपरिवार आकर गंगा माँ के सान्निध्य का लाभ उठाया करेंगे। भूखण्ड खरीदकर उन्होंने उसकी चहारदीवारी भी बनवा दी।

लेकिन समय पर तो किसी का बस नहीं चलता। उन उद्योगपति महोदय के घर में कोई सन्तान नहीं हुई। बहुत वर्ष तक प्रतीक्षा करने के बाद अन्ततः उन्होंने अपने एक भतीजे को गोद ले लिया। इस बीच कारोबार के उतार-चढ़ाव में वे उस भूखण्ड पर कुछ निर्माण नहीं करवा सके और उनका देहान्त हो गया।

समय बीतता रहा। अब भतीजे ने कारोबार सँभाल लिया। ईश्वर की कृपा से कारोबार ने तेजी पकड़ ली। आर्थिक दशा ठीक हुई, तो उसे चाचा जी द्वारा खरीदे गये उस भूखण्ड का ध्यान आया; पर तब तक उसके कुछ हिस्से पर दबंग पड़ोसी कब्जा कर चुके थे। उन्होंने उन लोगों को समझाने का बहुत प्रयास किया। कुछ पैसा लेकर हट जाने को भी कहा; पर पड़ोसियों को मालूम था कि यह उद्योगपति महोदय हर दूसरे-चौथे दिन दिल्ली से यहाँ लड़ने नहीं आयेंगे। अतः वे अपनी अकड़ बनाये रहे।

हार कर उन्होंने संघ के कार्यकर्त्ताओं से सम्पर्क किया। उन्होंने बताया कि यह भूखण्ड चाचा जी ने जनसेवा के लिए ही खरीदा था; यदि आप चाहें, तो मैं इसे संघ को दान दे सकता हूँ। वहाँ संघ का कार्यालय न होने से सबने सहर्ष यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उन दिनों प्रदेश में भाजपा की सत्ता थी, अतः थोड़े प्रयास से ही वह भूखण्ड खाली हो गया और फिर एक दिन वहाँ भूमि-पूजन कर संघ कार्यालय का निर्माण प्रारम्भ हो गया। भूमि-पूजन समारोह में प्रदेश शासन के एक केबिनेट मन्त्री भी उपस्थित थे।

भूमि-पूजन के समय पूजा में दिल्ली से आकर वे सज्जन भी सपत्नीक बैठे थे। यज्ञ के बाद स्थानीय लोग कार्यालय निर्माण के लिए दान-राशि एवं ईंट, सीमेण्ट, सरिया आदि सामग्री की घोषणा करने लगे। ऐसे में उन सज्जन की पत्नी ने उनसे कहा – सब लोग दान दे रहे हैं, आप कुछ नहीं करेंगे ?

– मैं क्या करूँ; मैंने तो लाखों रुपये की जमीन ही दे दी।

– वह जमीन आपकी कहाँ थी ? वह तो चाचा जी की थी। आपने तो उसमें एक पैसा खर्च नहीं किया। आपके बस में उसे खाली कराना भी नहीं था। संघ वालों ने खाली करवा ली और आपको विना कुछ किये दान का पुण्य और वाहवाही मिल गयी।

– तो क्या करूँ ?

– कम से कम एक कमरा बनवाने की घोषणा तो करो।

वे सज्जन खड़े हुए और उन्होंने एक कमरे के लिए ५१,००० रु० देने की घोषणा कर दी।

\+ + + + + +

संघ के एक वरिष्ठ कार्यकर्त्ता का भरपूर आयु में देहान्त हुआ। गाँव के सुख-दुःख और हर सामाजिक गतिविधि में सक्रिय होने के कारण पूरे क्षेत्र में उनकी प्रतिष्ठा थी। गाँव में अच्छी खेती-बाड़ी तथा उससे सम्बन्धित अनेक कारोबार थे। उनके पुत्र आई.आई.टी., रुड़की से अभियन्ता की डिग्री लेकर भी अपनी खेती तथा कारोबार सँभालते थे। उनकी सामाजिक कार्यों में रुचि कुछ कम थी।

देहान्त के बाद तेरहवीं और पगड़ी की रस्म हुई। रात में खाना खाते समय वृद्धा माँ और पुत्र में वार्त्ता प्रारम्भ हुई।

— बेटा ! तुम्हें जो यह पगड़ी पहनायी गयी है, इसका अर्थ समझते हो ?

— हाँ माँ, इसका अर्थ है कि अब पिताजी के सारे कारोबार, खेती और जमीन-जायदाद की देखभाल मुझे करनी है।

— बस ?

— इसके साथ ही सभी नाते-रिश्तेदारियाँ भी अब मुझे निभानी हैं। तीज-त्योहार में बुआ जी और बहनों को बुलाना, सुख-दुःख में सब जगह जाना, यह भी मुझे ही करना है।

— बस ?

अब पुत्र का माथा ठनका। वह कुछ देर चुप रहकर बोला— माँ ! मैं समझा नहीं कि तुम कहना क्या चाहती हो ?

— बेटा, पगड़ी का अर्थ केवल जमीन–जायदाद और नाते–रिश्तेदारी ही नहीं है। तेरे पिताजी इस क्षेत्र की हर सामाजिक गतिविधि में आगे रहते थे। कई संस्थाओं के वे अध्यक्ष और मन्त्री थे। घरेलू काम से अधिक वे संघ के काम को महत्त्व देते थे। वे १९४८ में भी जेल गये और १९७५ में भी। अब उन कामों की देखभाल भी तुम्हें ही करनी है। पगड़ी का अर्थ घरेलू ही नहीं, समाज की जिम्मेदारियाँ भी है।

पुत्र की समझ में बात आ गयी, उन्होंने माँ के चरण-स्पर्श किये। समाज के प्रति माँ का यह प्रेम उन्होंने पहली बार ही देखा था। अगले दिन उन्होंने पिताजी की संघ वाली टोपी पहनी और संघ कार्यालय से अपने नाप का निकर खरीद लाये। क्रमशः उनकी सक्रियता बढ़ती गयी और उन्होंने अपने पिताजी से भी अधिक बड़े दायित्वों पर काम किया।

\+ + + + + +

एक व्यापारी की दुकान पर हिसाब–किताब देखनेवाले, सामान्य आर्थिक स्थिति वाले एक कार्यकर्त्ता संघ में बहुत सक्रिय थे। इस नाते उनके घर प्रायः सभी वरिष्ठ अधिकारियों तथा प्रचारकों का आवागमन होता ही था। सुबह अँधेरे में ही उनकी साइकिल नगर में घूमने लगती थी। कार्यालय के पास घर होने से प्रायः वे प्रातःस्मरण के समय कार्यालय पर ही आ जाते थे। आगे चलकर उन्होंने अपनी एक दुकान भी खोल ली। उनके तृतीय वर्ष शिक्षित, सायं शाखा में सक्रिय एकमात्र पुत्र ने जब पढ़ाई पूरी की, तो उनकी पत्नी ने आग्रह किया कि अब यह पूरी तरह दुकान पर बैठे और इसका विवाह कर दिया जाये।

जब यह बात उन कार्यकर्त्ता की माता जी के कानों में पड़ी, तो उन्होंने साफ मना कर दिया। वे बोलीं — नहीं, पहले यह दो वर्ष तक संघ का प्रचारक बनेगा। हमारे घर में कितने प्रचारक आते हैं। वे भी किन्हीं माँ-बाप के बेटे ही
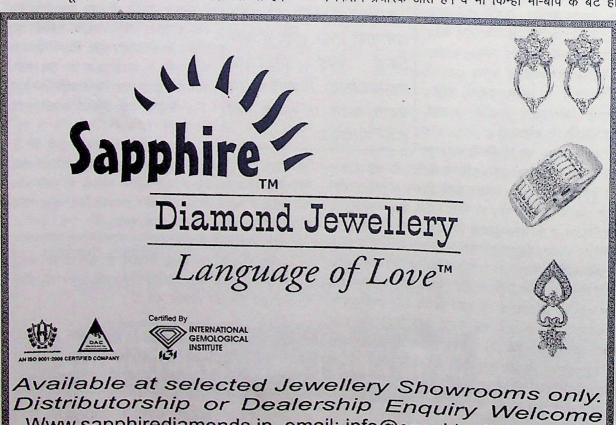
अमृत बाँटती माँ

अमृतानन्दमयी

आज जिन्हें सम्पूर्ण विश्व में माँ अमृतानन्दमयी के नाम से जाना जाता है, उनका जन्म २७ सितम्बर, १६४३ को केरल के समुद्र-तट पर स्थित आलप्पाड ग्राम के एक अति निर्धन मछुआरे परिवार में हुआ। वे अपने पिता की चौथी सन्तान हैं। बचपन में उनका नाम सुधामणि था। जब वे कक्षा चार में थीं, तब उनकी माँ बहुत बीमार हो गयीं। उनकी सेवा में सुधामणि का अधिकांश समय बीतता था। अतः उसके बाद की उनकी पढ़ाई छूट गयी। सुधामणि को बचपन से ही ध्यान एवं पूजन में बहुत आनन्द आता था। माँ की सेवा से जो समय शेष बचता, वह इसी में लगता था। पाँच वर्ष की अवस्था में ही वह कृष्ण-कृष्ण बोलने लगी थीं। इस कारण उन्हें मीरा और राधा का अवतार मानकर लोग श्रद्धा व्यक्त करने लगे।

माँ के देहान्त के बाद सुधामणि की दशा अजीब हो गयी। वह अचानक खेलते-खेलते योगियों की भाँति ध्यानस्थ हो जाती। लोगों ने समझा कि माँ की मृत्यु का आघात न सहन कर पाने के कारण उसकी मानसिक दशा बिगड़ गयी है। अतः उसे वन में निर्वासित कर दिया गया; पर वन में सुधा ने पशु-पक्षियों को अपना मित्र बना लिया। वे ही उसके खाने-पीने की व्यवस्था करते। एक गाय उसको दूध पिला देती, तो पक्षी फल ले आते। यहाँ सुधा ने प्रकृति के साथ समन्वय का पाठ सीखा कि प्रकृति का रक्षण करने पर वह भी हमें संरक्षण देगी। धीरे-धीरे उसके विचारों की सुगन्ध चारों ओर फैल गयी। लोग उन्हें अम्मा या माँ अमृतानन्दमयी कहने लगे।

जब कोई भी दुःखी व्यक्ति उनके पास आता, तो वे उसे गले से लगा लेतीं। इस प्रकार के उसके कष्ट लेकर अपनी आध्यात्मिक ऊर्जा का सञ्चार उसमें कर देतीं। इससे वह हल्कापन एवं रोगमुक्त अनुभव करता। हजारों लोगों को प्रति दिन गले लगाने के कारण लोग उन्हें 'गले लगानेवाली सन्त' (Hugging saint) कहने लगे। एक पत्रकार ने उनसे गले लगाने का रहस्य पूछा, तो वे हँसकर बोलीं– माँ अपने बच्चों को गले ही लगाती है। इसी से बच्चे के अधिकांश रोग-शोक एवं भय मिट जाते हैं। उसने फिर पूछा– यदि आपको दुनिया का शासक बना दिया जाये, तो आप क्या पसन्द करेंगी। अम्मा का उत्तर था– मैं झाड़ू लगानेवाली बनना पसन्द करूँगी; क्योंकि लोगों के दिमाग में बहुत कचरा जमा हो गया है। वह पत्रकार देखता ही रह गया।

अम्मा ने निर्धनों के लिए हजारों सेवा कार्य चलाये हैं। इनमें आवास, गुरुकुल, विधवाओं को जीवनवृत्ति, अस्पताल एवं हर प्रकार के विद्यालय हैं। गुजरात के भूकम्प और सुनामी आपदा के समय अम्मा ने अनेक गाँवों को गोद लेकर उनका पुनर्निर्माण किया। यद्यपि अम्मा केवल मलयालम भाषा जानती हैं; पर सारे विश्व में उनके भक्त हैं। वे उन सबको अपनी सन्तान मानती हैं। जब २००३ में उनका ५०वाँ जन्मदिवस मनाया गया, तो उसमें १६२ देशों से भक्त आये थे। इनमें शीर्ष वैज्ञानिक, समाजशास्त्री, पर्यावरणविद्, मानवाधिकारवादी सब थे। वे अम्मा को धरती पर ईश्वर का वरदान मानते हैं। **संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपने कार्यक्रमों में तीन बार अतिविशिष्ट वक्ता के रूप में उनका सम्मान किया है। शिकागो के विश्व धर्म सम्मेलन में उनकी अमृतवाणी से सारे धर्माचार्य अभिभूत हो उठे थे।** ईश्वर उन्हें दीर्घायु करें, जिसमें वे अमृतपुत्रों के सृजन में लगी रहें।□

(साभार : 'हर दिन पावन')

हैं। इसके जन्म के कुछ दिन बाद पूज्य श्री गुरुजी हमारे घर आये थे। उन्होंने इसे गोद में लेकर आशीर्वाद दिया था। उनका आशीर्वाद व्यर्थ नहीं जाना चाहिए। इसलिए पहले यह प्रचारक बने, फिर दुकान और शादी की बात करेंगे।

परिणाम यह हुआ कि दादी माँ के आदेश से पुत्र महोदय दो वर्ष प्रचारक रहे। इसके बाद उन्होंने दुकान और व्यापार सँभाला। यथासमय उनका विवाह हुआ। अब वे अपनी तीसरी पीढ़ी के साथ प्रसन्नता से रहते हैं। कारोबार अब उनका बेटा देखता है और वे अधिकांश समय संघ और अन्य सामाजिक कार्यों में लगाते हैं।

\+ \+ \+ \+ \+ \+

उतार-चढ़ाव व्यापार का नियम है। एक सज्जन को

व्यापार में इतना बड़ा झटका लगा कि उन्होंने अपनी फैक्ट्री को स्वयं चलाने से सदा के लिए हाथ खींच लिया। वे अब उसे किराये पर देकर उस आय से परिवार चलाने लगे। यह चोट इतनी गहरी थी कि इसके बाद वे अधिक समय तक जीवित भी नहीं रह सके।

कुछ समय तक उनके बड़े पुत्र ने भी इस परम्परा को निभाया। वे संघ के अच्छे कार्यकर्त्ता भी थे। उनका विवाह एक बहुत सम्पन्न परिवार में हुआ था; पर अब की स्थिति भी किसी से छिपी नहीं थी।

एक दिन जब वे फैक्ट्री को फिर अगले कुछ वर्ष के लिए किराये पर देने की बात कर रहे थे, तो उनकी पत्नी ने एक साहसिक कदम उठाया। उन्होंने कहा कि चाहे जो हो; पर अब फैक्ट्री किराये पर नहीं उठेगी। अब आप और छोटे भैया दोनों मिलकर वहाँ बैठो और फैक्ट्री चलाओ।

लेकिन घर का खर्च कैसे चलेगा, यह बड़ी भारी समस्या थी। इसका प्रबन्ध भी वह साहसी महिला कर चुकी थी। घर के बाहर एक छोटी कोठरी सड़क की ओर खुलती थी, उन्होंने वहाँ अनाज पीसने की एक चक्की लगा ली थी। उस मोहल्ले में और कोई चक्की नहीं थी, इस कारण उनका काम चल निकला था।

उन्होंने कहा – मैंने सारा हिसाब लगा लिया है। अब इस चक्की से घर का खर्च चलेगा। घर का राशन, कपड़े-लत्ते, बच्चों के विद्यालय की फीस, नाते–रिश्तेदारों का सत्कार, आपके मित्रों और संघ वालों की चाय-पानी.. सब इसमें से मैं निकालूँगी। फैक्ट्री से जो मिले, उसे वहीं लगा दो। मैं आपसे घर के खर्च के लिए कुछ नहीं माँगूँगी। मुझे चाहे जितना परिश्रम करना पड़े; पर अब फैक्ट्री किराये पर नहीं उठेगी। बहुत दिन हो गये, अब हमें सम्मान से जीना है।

अपनी पत्नी का यह साहस देख वे कार्यकर्त्ता भी दिल पक्का कर फैक्ट्री पर बैठने लगे। उनके परिश्रम और ईश्वर की कृपा से दो-तीन साल में फैक्ट्री ने फिर गति पकड़ ली। यह देखकर पत्नी ने भी चक्की बन्द कर दी और गृहस्थी सामान्य ढंग से चलने लगी।

आज तो वह फैक्ट्री पहले से कई गुना बड़ी हो चुकी है। उनके बच्चे उसे सँभालते हैं और वे कार्यकर्त्ता सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र की एक बड़ी हस्ती हैं।

इन सब प्रसंगों का मैं किसी न किसी रूप में साक्षी हूँ। यद्यपि इनके कई पात्र अब इस दुनिया से जा चुके हैं। सीता, सावित्री, दुर्गा और लक्ष्मीबाई तो सदा प्रेरणा की स्रोत हैं; पर हर गाँव और नगर, हर गली और मोहल्ले में विद्यमान इन महान् नारियों को स्मरण करना भी कम उपयोगी नहीं है। □

– संकटमोचन आश्रम, रामकृष्णपुरम्, सेक्टर ६, नयी दिल्ली – ११००२२

मातृशक्ति विशेषांक
राष्ट्रधर्म

गढ़वाल की वीराङ्गना

रानी गंगा
जिसने शाहजहाँ की नाक काटी

– डॉ. शिवनन्दन कपूर

भारत की धरती में अनेक मर्द, कितने ही मरजीवणे बाँके जवान हुए। आदि काल से लेकर अब तक कई सूरमा हुए, जो अपने शौर्य की गाथा इस धरा की माटी पर रुधिर की धार से लिख गये। वीर होने का गौरव इस राष्ट्र के नर ही नहीं पाते रहे, नारियाँ भी प्राप्त करती रहीं। वे शत्रु की प्रबलता का विचार किये विना उनका सामना करती रहीं। जय-पराजय का द्वन्द्व उनके मन में न रहता था। वे लोहा लेतीं और रिपु को पराजित करती रहीं। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई तो पुत्र को पीठ से बाँधकर, घोड़े पर सवार किले से कूदीं। अरि अंग्रेजों से टक्कर ली। कित्तूर की रानी चेनम्मा भी ऐसी ही वीरांगना थीं। पराक्रम की प्रतिमा रही ऐसी भारतीय ललनाओं ने सम्राटों को भी सीधा किया। उनकी नाक में दम किया। नाकों चने चबवाये।

भारत की माटी में उत्तर से दक्षिण तक ऐसी ही पानीदार पुत्रियाँ हुईं। उनकी तलवार के पानी के समक्ष वे शासक पानी भरते रहे। पथरीले प्रदेश गढ़वाल की गोरी गंगा की गौरव-गाथा भी गर्व योग्य है। उसने इतिहास-प्रसिद्ध मुगल बादशाह शाहजहाँ की नाक पर सुपारी ही नहीं तोड़ी, उसकी नाक ही काट ली। मुगल-सम्राट् अपने इतिहास-नवीसों से अपनी प्रशंसा लिखवाते रहे। गंगा का पानी वहाँ कहाँ लहराने पाता ? पर मनूची तथा आर.एन. सालेतोर ऐसे पर्यटकों ने उसकी वीरता तथा साहस का वर्णन किया है। घटना शाहजहाँ के शासन के नवें वर्ष की है। गढ़वाल की रानी गंगा ओजस्विनी नारी थी। मुगल बादशाह भारत भर में पैर पसारते, 'कर' वसूल रहे थे। उसके प्रताप-ताप के आगे सबने हाथ ऊँचे कर रखे थे। वह हार मानकर, उपहार या कर देने के लिए प्रस्तुत न हुई। बादशाह ने इस पर नाक-भौंह सिकोड़ी। भौंहें तरेरीं, भय भी दिखाया; पर गंगा न डिगी। शाहजहाँ कोप से कराल काल बन गया। एक औरत, वह भी विधवा ! इतनी गुस्ताख, ऐसी निडर होगी? विश्वास न हो रहा था। उसने तत्काल एक बड़ी फौज रानी को सबक सिखाने रवाना कर दी। उसमें घण्टा बजाते, निशान लहराते, झूल झमकाते गजराज थे। पीछे डंका बजाती ऊँट-वाहिनी थी। घोड़ों की कतार के साथ भाला-बरदार, पैदल सैनिक थे। रसद की कमी न रहे। पहाड़ी इलाका है। इसलिए नागौरी बैलों से जुती बहलियों पर गोनियों में अनाज, और दूसरी खाद्य-सामग्री थी। घास तथा चने भी कुछ बैल-गाड़ियों पर बोरियों में भरे थे।

रानी शासन करने में ही नूरानी न थी। उसे पता था, बादशाह को इनकार सुनकर, कैसी तिलमिलाहट हुई होगी। इसलिए वह गुप्तचरों को हर आहट पर कान लगाने और बराबर खबर देने के लिए कह चुकी थी। उसके चर फकीर, गवैये, भीख माँगनेवालों के रूप में आगे बढ़ चुके थे। वे तो शाही खेमे के साथ चल रहे थे। फौज बढ़ती आ रही थी। उनमें निश्चिन्तता थी। छोटे से राज्य की रानी की टक्कर लेने की क्या बिसात ? फौज की एक फूँक में उड़ जायेगी। कभी-कभी आत्म-विश्वास की अति अपने को अपाहिज बनाकर, डुबो देती है।

रानी ने अपने सेनानियों के साथ बैठकर योजना बना ली। बाहर से, इतनी दूर कौन मदद करेगा ? मुगल फौज पास आती जा रही थी। रानी ने अपनी सेना की एक टुकड़ी उस वाहिनी के मार्ग में तैनात कर दी। हमला करने आये मुगल-सिपहसालार ने उस दल को देखा, तो हँस पड़ा। रानी की उस टुकड़ी ने नाममात्र का सामना किया। फिर वह पीछे हटने लगी। वह सामना करने योग्य थी भी नहीं। मुगल फौज बढ़ती जा रही थी। उसे तो रानी के राज्य को हाथ में करने का आदेश मिला था। दो पहाड़ों के बीच तंग दर्रा था। रानी की टुकड़ी तेजी से, जैसे जान बचाकर भाग रही थी। उनके साथ भारी सामान, लाव-लश्कर न था। अतः पीछे हटने में उन्हें कठिनाई न हो रही थी। कई सिपाही पहाड़ियों पर चढ़ गये। वे इसके अभ्यस्त भी थे। देखते-देखते सभी गढ़वाली गायब हो गये।

अचानक दोनों ओर के पहाड़ों से पत्थर गिरने लगे। मुगल सिपाही ऊपर चढ़ने का प्रयास करते; पर एक तो वे इसके अभ्यस्त न थे, दूसरे लुढ़कते पत्थरों के ढोके उनकी राह बन्द करते, घायल कर, नीचे पहुँचा देते। मुगल सेनापति

ने कोई चारा न देखकर, पीछे लौटने का आदेश दिया; पर उसमें भी सफलता न मिली। पता चला, इस बीच चट्टानों से पीछे की राह बन्द की जा चुकी है। आफत तो अकेली नहीं आती। पता चला, रसद की गाड़ियाँ जो आराम से पीछे आ रही थीं, लूट ली गयीं। तंग राह में हाथी-घोड़ों की रेल-पेल अलग मुसीबत पैदा कर रही थी। जानवर भड़ककर, अपनी ही फौज को कुचलने लगे। उन पर काबू रखना कठिन हो गया। पत्थरों और तीरों की बरसात से बचने का उपाय न था। सब जैसे चूहेदान में फँसे, बस ईश्वर को याद कर रहे थे; पर कोई युक्ति काम न आ रही थी। सब हक्के-बक्के थे। पहाड़ पर पत्थरों की आड़ में छिपे गढ़वाली सुरक्षित थे। नीचे से चलाये गये तीर उन्हें छू भी न पाते थे। रानी की सलाह से उसके दल ने यह मोर्चाबन्दी कर रखी थी।

कोई रास्ता न देख मुगल-सेनापति ने सफेद झण्डा लहराया। सन्धि का पत्र और सफेद झण्डा लेकर बढ़ते सिपाही को न रोका गया। वह पुकारता जा रहा था, 'मुझे रानी के पास ले चलें।' उसे बन्दी बनाकर रानी के पास ले जाया गया। छिपी मार और तंग दर्रे की घुटन से सबकी दशा बिगड़ रही थी। रसद और गोला-बारूद लुट चुका था। भोजन का अभाव थके तन को और निढाल कर देता है। रसद का अभाव तथा मरण-भय और विश्राम न हो पाने से उनकी दशा पागलों-सी हो रही थी। रानी चाहतीं, तो उस फौज का एक सिपाही भी जीवित बच कर न जा पाता; पर वह उनकी हत्या न करना चाहती थीं; किन्तु विना सीख दिये, विना दण्ड दिये यों ही जाने देना भी उन्हें स्वीकार न था। उससे अपनी सत्ता, अपनी स्थिति को चोट लगती।

गंगा ने उनकी जान बख्श देने का वचन दिया। उन्हें छोड़ देने की प्रार्थना स्वीकार कर ली; पर इसके साथ एक शर्त रखी। उन मुगल सैनिकों को जान के बदले अपनी नाक कटानी होगी। इससे वे रानी की क्षमता तथा शक्ति के बारे में अपने बादशाह को प्रमाण दे सकेंगे। वह कटी नाकें बोलेंगी कि भारतीय नारी विधवा हो जाने पर भी असहाय नहीं होती। उसे लाचार समझकर कोई अपमानित करने की चेष्टा न करे। शर्त ऐसी थी, जो सहज स्वीकार न होती। नाक कटा चेहरा दिखाने में लाज आती ही है। पर जब जान के लाले पड़ें हों, तब हीले-हवाले की गुञ्जाइश ही नहीं रहती। रानी ने कह दिया; अगर जीवन का उपहार चाहते हो, तो हार लेकर यह उपहार देना ही होगा। सबने भाग्य ऊपर वाले के हवाले कर, बात मान ली। जीते रहे, तो कुछ उपचार होकर शायद नाक ढक जायें। नाक चाक हो जाने के बाद भी हाथ बचे रहेंगे। जीविका का सहारा रहेगा। रानी ने इसीलिए जान छोड़ नाक काटी कि वह यादगार रहेगी। उनके चेहरे पर अपने आतंक की छाप रहेगी। अगली बार आक्रमण का साहस न कर सकेंगे।

रानी के आदेश के अनुसार, शाहजहाँ के सैनिकों ने उस घाटी में ही अपने अस्त्र छोड़ दिये। उस उपत्यका के दूसरे छोर पर पतली पगडण्डी बना दी गयी। उससे केवल एक सिपाही आगे बढ़ सकता था। बाहर रानी के सैनिक खड़े थे। एक-एक मुगल-सैनिक आगे आता और नाक कटवाकर बढ़ जाता। इस प्रकार मुगल-फौज के सभी लड़ाकों की नाक काट ली गयी। यह सैनिकों की नहीं, मुगल-साम्राज्य की, या कह लीजिये, रानी ने खुद शाहजहाँ की ही नाक साफ कर दी। नाक ही प्रतिष्ठा की प्रतीक हुआ करती है।

कहना न होगा, इस गहरी हार के प्रहार के बाद बादशाह ने दोबारा गढ़वाल पर हमला करने की न सोची। उसने रानी को 'नाक काटी रानी' का सम्बोधन दिया! सेनापति क्या मुँह लेकर बादशाह को चेहरा दिखाता ? हार की शर्म, राह की तकलीफें, पछतावे से बीमार होकर वह पहाड़ से मैदान तक पहुँचने की राह में ही मर गया। यही समाचार सैनिकों ने बादशाह तक पहुँचाया।

कुछ इतिहासकारों ने बादशाह की इज्जत रखने के लिए संशोधन किये। लिखा, 'रानी पहले से ही नाक काटी रानी' के नाम से मशहूर थी; क्योंकि वह अपने विद्रोहियों को दण्ड देने के लिए उनकी नाक काट लिया करती थी। ऐसी ही बात मैसूर के शासकों की भी बतायी जाती है। जिस सिपहसालार को शाहजहाँ ने गढ़वाल पर आक्रमण करने का आदेश दिया था, उसका नाम मिर्जा नजावत खाँ था। 'नजावत' याने 'शराफत'। उसकी शराफत गढ़वाल के दर्रे में दफन हो गयी। बात भी शर्म से डूब मरने की ही थी। गढ़वाल जैसे छोटे से भू-भाग की विधवा रानी को जीतना था। उसके लिए उसे तीस हजार घुड़सवार और एक लाख पैदल सिपाही दिये गये थे; पर वे गंगा की गर्द तक भी न पहुँचे। उसने सबका गर्व गर्त्त में पहुँचा दिया। सब गंगा की लहर में बह गये। कुछ इतिहासकारों ने उसे मुँह छिपाने का मौका देते लिखा– 'वह हार से दुःखी हो गम्बाल की ओर भाग गया।' उसकी भी नाक काटी गयी थी या रानी ने उसे कृपा कर बख्श दिया, इसका उल्लेख नहीं मिलता। सेनापति मिर्जा शुजा नजावत खाँ का औरंगजेब के सातवें शासकीय साल (१६६४-६५) में देहान्त हो गया था।

औरंगजेब के शासन-काल में सुलेमान शिकोह उसके भय से भागकर गढ़वाल में छिपा था। औरंगजेब की ओर से प्रतिनिधि रूप में राजा जयसिंह ने मैत्री करने तथा सुलेमान को सौंपने की बात चलायी थी; पर गढ़वाल राज्य की ओर से उसे टका-सा जवाब देते लिख दिया गया, "हम आपकी मैत्री के भूखे नहीं। एक बार हम आप की नाक काट चुके हैं। जो नाक उतार सकते हैं, वे गर्दन भी उतार सकते हैं।" □

– विट्ठलनगर, खण्डवा (म.प्र.)

श्रद्धा-समर्पण की मूर्त्ति : भामती

– डॉ. कोशी

देखकर अध्ययन-लेखन में जागरूक को,
पति चुना भामती ने वाचस्पति मिश्र पञ्चानन को।
अध्ययनशील, चिन्तनशील, लेखनशील पञ्चानन,
परिणय कर भी विस्मृत हुए चतुर्दिक् का वातावरण।
लिख रहे थे जीवन-आत्म-अध्यात्म दर्शन का ग्रन्थ,
मन-हृदय-आत्मा उनका था रहा विचारों में मथ।
अविचल श्रद्धा और समर्पण की वह मूर्त्ति,
पति-लक्ष्य पूर्ण करने में जुटी, दत्तचित्त हो भामती–
भूल गयी यौवन के शृंगार, प्यार और पति का मनुहार,
दमित कर ली मातृत्व की चाह और आँचल का प्यार।
पत्र हो या लेखनी, शय्या हो या कुशासन,
जुटा रही थी सारी व्यवस्था, उपालम्भरहित मन।
दिवस-पक्ष-मास-वर्ष गये कितने बीत,
कर्ममय सेवा ही उसकी बन गयी थी रीत।
अनवरत श्रम के बाद ग्रन्थ का समापन हुआ,
पञ्चानन को अब तनिक बाह्य जगत् का भान हुआ।
दृष्टि उठायी और देखा कर्मरत एक प्रौढ़ा सन्नारी को,
भूले-से, भ्रमे-से, बोल पड़े, पहचाना नहीं आपको ?
विगलित हो भामती, जाकर गिरी चरणों में,
बोली मैं आपकी.... शब्द रह गये अधरों में।
स्मरण कर, किशोरावस्था का वह परिणय,
काँप उठे पञ्चानन दुःख हुआ उन्हें असह्य।
यौवन, अवस्था और काल बिताया था उन्होंने साधना में,
किन्तु आह! होम कर जीवन किसी का निज आराधना में।
बोले अन्याय तुम्हारे प्रति भयङ्कर हुआ मुझसे,
किस प्रकार दूर करूँ पाप का परिताप स्वयं से ?
मानवता के कल्याणार्थ मैंने की आराधना बड़ी,
साधना की आराधना में खलल पहुँची न एक भी घड़ी।
तुम्हारी निष्ठा एवं तपस्या ने किया लक्ष्य पूर्ण मेरा,
निःसन्देह गौरवपूर्ण है मुझसे अधिक तप तेरा।
मानवता के कल्याणार्थ लिखित ग्रन्थ यह मेरा।
नाम से तुम्हारे हो विदित जग में यही प्रायश्चित्त मेरा।
पञ्चानन ने लिखा ग्रन्थ का नाम 'भामती',
उतारी इस प्रकार उन्होंने साधनामयी की आरती।

– सी–६१, सेक्टर– जे, अलीगञ्ज, लखनऊ (उ.प्र.)

हिन्दुवानी है रही पै जो श्रीमती एनी बीसेंट

– डॉ. अमरनाथ दुबे

"स्वामी विवेकानन्द का शिकागो व्याख्यान सुनकर एनी बीसेंट का भारत के प्रति असीम आकर्षण बढ़ा। १६ नवम्बर, १८६३ ई. को वे भारत आयीं और श्रेष्ठ तत्त्वज्ञान की परम्परा वाले देश को पराधीन देखकर उनकी आत्मा चीत्कार कर उठी। परिणामस्वरूप वे अंग्रेज होते हुए भी अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध कमर कसकर खड़ी हो गयीं। थियोसोफिकल सोसायटी की सभापति होते हुए भी वह कांग्रेस में विशेष सक्रिय रहीं। उन्होंने कांग्रेस में रहकर हिन्दुत्व का जागरण तथा अंग्रेजी सत्ता का प्रबल विरोध किया। स्वातन्त्र्य आन्दोलन में उनका प्रभावी योगदान रहा और अत्यन्त चर्चित हो गयीं। इसी लोकप्रियता के कारण वह सन् १९१७ में कांग्रेस की अध्यक्ष चुनी गयीं।"

श्रीमती एनी बीसेंट हिन्दू-धर्म की वैज्ञानिकता से अभिभूत थीं; किन्तु उन्हें इस बात का दुःख था कि अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करनेवाले हिन्दू ही हिन्दू धर्म को हेय दृष्टि से देखने लगते हैं। बनारस में रहकर उन्होंने सेण्ट्रल हिन्दू कालेज की स्थापना की, जिसका विकसित रूप आज का हिन्दू विश्वविद्यालय है। उन्होंने गीता का अनुवाद किया, रामायण और महाभारत की संक्षिप्त कथाएँ लिखीं और हिन्दू धर्म तथा संस्कृति विषयक अनेक भाषण दिये।" भारतीयों के लिए उनका आह्वान था– 'यदि आप हिन्दू धर्म छोड़ देते हैं, तो आप अपनी भारतमाता के हृदय में छुरा भोंकते हैं।'

भारतीय राजनीति के सर्वोत्तम का शासन उन्हें प्रिय था। पश्चिमी जनतन्त्र में उन्हें भ्रष्टाचार और संकीर्णता दिखायी देती थी और इसीलिए उनका कहना था कि "जनतन्त्र का भविष्य अन्धकारमय है।" उनका सोचना था कि "आदर्शविहीन और क्षणिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए विधान बनानेवाला राजनेता कभी महान् नहीं हो सकता।" एनी बीसेंट को राजसत्ता पर धर्मसत्ता का शासन प्रिय था।" एनीबीसेंट विदेशी होने पर भी भारतीय चेतना से परिपूर्ण, राष्ट्र के संरक्षण सम्वर्द्धन के लिए समर्पित, श्रेष्ठतम नारी-सामर्थ्य थीं।

थियोसोफिकल सोसाइटी और श्रीमती एनी बीसेंट

थियोसोफिकल सोसाइटी का नाम विदेशी है और यह संस्था विदेश में ही जन्मी थी। इसके सदस्यों की संख्या भी कभी इतनी नहीं हुई कि इसकी गिनती भारत के महान सांस्कृतिक आन्दोलनों में की जा सके। फिर भी इस संस्था की सभानेत्री श्रीमती एनी बीसेंट ने हिन्दुत्व के नवोत्थान एवं भारतीय राष्ट्रीयता के विकास के लिए इतना कुछ किया कि उनकी सेवा भुलायी नहीं जा सकती है। उन्होंने ऊँघते हुए हिन्दुओं में आत्माभिमान भर दिया और जब ईसाई मिशनरी भारत के विषय में कुप्रचार करके यहाँ के लोगों को ईसाई बना रहे थे, तब इस ईसाई महिला ने ही खुलकर भारत और हिन्दुत्व का पक्ष लिया।

थियोसोफिकल शब्द दो यूनानी शब्दों के योग से बना है। यूनानी भाषा में 'थियोस' ईश्वर को कहते हैं और सोफिया का अर्थ ज्ञान है, अतः थियोसोफी का अर्थ ब्रह्म–विद्या बताया जाता है। रूस की एक महिला 'हेलेना पेत्रोवना ब्लेवास्की' तथा अमेरिका के सज्जन 'कर्नल अल्काट' ने मिलकर न्यूयार्क में ही ७ सितम्बर, १८७५ ई. को थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना की। संस्था का उद्देश्य यह भी माना गया कि पूर्वी देशों में धर्म और ज्ञान के जो तत्त्व छिपे हुए हैं, उनका सम्यक् प्रचार पाश्चात्य देशों में किया जाना चाहिए। इस प्रकार वेद, बौद्ध ग्रन्थ, जेन्दावेस्ता और कन्फ्यूशिस के उपदेश, ये सभी थियोसोफिस्टों के विशेष अध्ययन के विषय बन गये। संस्था का सबसे महान् और उपयोगी उद्देश्य यह करार दिया गया कि विश्व मानवता के आविर्भाव और प्रचार के लिए यह दिखलाया जाये कि पूजा पद्धति की भिन्नता से एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से भिन्न नहीं हो जाता है। सभी मनुष्य एक ही परमसत्ता से निकले हैं और सभी सम्प्रदायों के अच्छे लोग एक समान पवित्र हैं।"

ब्लेवास्की और अल्काट १८७६ में बम्बई आये तथा आर्य समाज के सहयोग से सन् १८८२ ई. में थियोसोफी समाज का कार्यालय अड्यार (मद्रास) में स्थापित हुआ, जहाँ वह

आज तक अवस्थित है। कुछ दिनों बाद ब्लेवास्की बीमार होने के कारण इंग्लैण्ड चली गयीं, वहीं उन्होंने 'दि सीक्रेट डाक्ट्रिन' पुस्तक लिखी। इस पुस्तक को ही पढ़कर श्रीमती एनी बीसेंट थियोसोफी समाज में दीक्षित हुई थीं। ४६ साल की अवस्था में १६ नवम्बर, १८६३ में एनी बीसेंट भारत आयीं। सन् १६०७ में अल्काट का देहान्त हो गया, उसके बाद अपनी मृत्यु सन् १६३३ ई. तक थियोसोफी समाज की सभानेत्री एनी बीसेंट ही रहीं।

श्रीमती एनी बीसेंट मानती थीं कि पूर्वजन्म में वह हिन्दू थीं। आते ही भारतवर्ष उन्हें ऐसा लगा मानो अनेक जन्मों से वे यहाँ जन्म लेती आयीं हों। हिन्दू धर्म को वे विश्व के सभी धर्मों से प्राचीन ही नहीं, सबसे श्रेष्ठ भी मानती थीं। यहाँ आते ही उन्होंने गाउन छोड़कर साड़ी पहनी और शुद्ध भारतीय खान-पान अपना लिया। वे तीर्थों में भी घूमती थीं एवं 'अमरनाथ' (कश्मीर) तक पैदल यात्रा की थी।

'भारत' और हिन्दुत्व को श्रीमती एनी बीसेंट एक दूसरे का पर्याय मानती थीं। अपने भाषण में उन्होंने कहा था कि **"भारत और हिन्दुत्व की रक्षा भारतवासी और हिन्दू ही कर सकते हैं। हम बाहरी लोग आपकी चाहे जितनी प्रशंसा करें; किन्तु आपका उद्धार आप के ही हाथ है। आप किसी प्रकार के भ्रम में न रहें, हिन्दुत्व के विना भारत के सामने कोई भविष्य नहीं है। हिन्दुत्व ही वह मिट्टी है, जिसमें भारतवर्ष का मूल गड़ा हुआ है। यदि यह मिट्टी हटा ली गयी, तो भारत रूपी वृक्ष सूख जायेगा। भारत में प्रश्रय पानेवाले अनेक धर्म हैं, अनेक जातियाँ हैं; किन्तु इनमें से किसी की भी यह दम नहीं है कि भारत को वे एक राष्ट्र के रूप में जीवित रख सकें। इनमें से किसी की भी शिरा भारत के अतीत तक नहीं पहुँची। इनमें से प्रत्येक भारत से विलीन हो जाये तब भी भारत, भारत ही रहेगा; किन्तु यदि हिन्दुत्व विलीन हो गया, तो क्या शेष रह जायेगा ? तब शायद इतना याद रह जायेगा कि भारत कभी कोई भौगोलिक देश था। भारत के इतिहास, साहित्य, कला सब पर हिन्दुत्व की स्पष्ट छाप है।"**

ब्रह्म समाज और आर्यसमाज केवल संशोधित हिन्दुत्व का समर्थन करते थे, जिससे समग्र हिन्दुत्व का त्राण नहीं था। ऐसी अवस्था में श्रीमती एनी बीसेंट और उनके समाज को यह श्रेय अवश्य दिया जायेगा कि उन्होंने अखण्ड हिन्दुत्व का वीरतापूर्ण आख्यान किया। उनका हिन्दुत्व खण्डित नहीं था। उन्होंने केवल वेद, उपनिषद, गीता का ही हवाला नहीं दिया, प्रत्युत स्मृति, पुराण, धर्मशास्त्र और महाकाव्य में जब जहाँ जो बात मिली, सबके द्वारा हिन्दुत्व के प्रचलित समग्र रूप का समर्थन करना आरम्भ किया। उनका पुनर्जन्म, अवतार, देवता, मूर्तिपूजा आदि हिन्दुत्व के समस्त अंगों उपांगों पर विश्वास था। सन् १६१४ ई. में उन्होंने कहा था कि **"चालीस वर्षों के सुगम्भीर चिन्तन के बाद मैं यह कह रही हूँ कि विश्व के सभी धर्मों में हिन्दू धर्म से बढ़कर**

पूर्ण वैज्ञानिक, दर्शनयुक्त एवं आध्यात्मिकता से परिपूर्ण दूसरा और कोई धर्म नहीं है।" यह संस्था अन्तरराष्ट्रीय थी, अतएव उसके द्वारा भारत के पक्ष में सारे संसार में अच्छा प्रचार हुआ। थियोसोफिस्टों ने आत्मा की अमरता और पुनर्जन्म के सिद्धान्त में वैसा ही विश्वास अभिव्यक्त किया, जैसा विश्वास हिन्दुओं का है। इसका परिणाम यह हुआ कि बहुत से अभारतीयों के द्वारा पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार होते देखकर उन भारतवासियों की आँखें खुलीं, जो इस्लाम और ईसाइयत के प्रभाव में आकर हिन्दुत्व को शंका से देखने लगे थे।

श्रीमती एनी बीसेंट ने हिन्दुत्व की सभी मान्यताओं को समेटकर समग्र रूप में उनका महिमा मण्डन किया। जिस प्रकार स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दुत्व का समग्र दर्शन विश्व-मञ्च पर प्रस्थापित किया, वही कार्य एनी बीसेंट ने किया। इसके अतिरिक्त एनी बीसेंट ने भारतीय राजनीति में भी सक्रिय योगदान कई वर्ष तक किया। तिलक जी के द्वारा चलाये गये होमरूल आन्दोलन का पक्ष उन्होंने बड़े ही उत्साह व तत्परता से लिया। इस अपराध में मद्रास सरकार ने उन्हें १९१७ में नजरबन्द कर डाला, इस पर देश में इतने जोर का वाबैला मचा कि नजरबन्दी तुरन्त हटा ली गयी। इसी अवसर पर देश ने उन्हें कांग्रेस का सभापतित्व अर्पित किया, जिस पद को उन्होंने बड़े ही गौरव से सँभाला।" तीन-चार वर्ष तक राजनीति में सक्रिय रहकर इस देश में सुप्त राजनीतिक चेतना जगाने में बड़ा योगदान किया; किन्तु गान्धी जी के आगमन के बाद उनका प्रभाव घटने लगा था। यह सत्य है कि गान्धी जी के आविर्भाव के लिए जमीन तैयार करनेवालों में एक नाम श्रीमती एनी बीसेंट का भी है। गान्धी जी ने स्वयं कहा था कि "जब तक भारतवर्ष जीवित है, एनी बीसेंट की सेवाएँ भी जीवित रहेंगी, जो उन्होंने इस देश के लिए की थीं। उन्होंने भारत को अपनी जन्मभूमि मान लिया था। उनके पास देने योग्य जो भी था, उन्होंने भारत के चरणों पर चढ़ा दिया। इसीलिए भारतवासियों की दृष्टि में वे उतनी ही प्यारी व श्रद्धेय हो गयीं।"

भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन, हिन्दुत्व के पुनर्जागरण के प्रवाह के साथ चला। जिस प्रवाह को ब्रह्म समाज ने जन्म दिया, आर्य समाज ने धार दी तथा स्वामी विवेकानन्द ने विश्व-मञ्च तक पहुँचाया, उसी प्रवाह का विकासवान् चरण बनकर थियोसोफिकल सोसायटी उभरी और उसी प्रवाह से भारतीय राष्ट्रवाद का सुप्त सागर प्रबल गर्जना के साथ आन्दोलित हो उठा।

श्रीमती एनी बीसेंट अपने व्याख्यान में कहती हैं, "यदि आप हिन्दू धर्म छोड़ देते हैं, तो आप अपनी भारतमाता के हृदय में छुरा भोंकते हैं, यदि भारतमाता के जीवन में रक्त स्वरूप हिन्दू धर्म निकल जाता है, तो माता गतप्राण होगी। मैं आपको ये कार्यभार सौंप रही हूँ कि हिन्दू धर्म के प्रति निष्ठानवान् रहें, वही आपका सच्चा जीवन है। कोई धर्म-भ्रष्ट, कलंकित हाथ आप को सौंपी गयी इस पवित्र धरोहर को स्पर्श न करे।" महाराणा प्रताप तथा शिवाजी को भारत के महान् पुरुषों में पुरुषों में आदर्श माननेवाली एनी बीसेंट की आस्था तो भारतीय धर्म व दर्शन में ही थी। उन्होंने पाश्चात्य की भोंडी नकल का घोर विरोध किया और भारत के वैभवशाली अतीत के आधार पर भारत के निर्माण की कल्पना की तथा इसी को भारत की पहचान बताया। पं. सोहनलाल द्विवेदी की निम्नोधृत पंक्तियों में श्रीमती एनी बीसेंट के विचारों का भाव दर्शन है–

"भारत वहाँ है, जहाँ भारत का इतिहास,
भारत का विश्वास !
भारत का धर्म-कर्म, भारत का सत्य-मर्म,
जीवन की जटिलतम ग्रन्थियाँ खोलता है !
"सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, सर्वे सन्तु निरामया।"

जिसका है सामगान। □

– ५६, डाक बंगला मार्ग, सरायमीरा, कन्नौज (उ.प्र.)

"मातृ-शक्ति"

-- डॉ० सुशील चन्द्र त्रिवेदी "मधुपेश"

एकोऽहं से जहाँ ब्रह्म की बहुस्याम की वाञ्छा।
"मातृशक्ति" अर्चना उसी की मूर्तिमती आकांक्षा।।१।।

निखिल विश्व के सफल-सृजन की, बनती शाश्वत कारण।
धारण नियमन विलय सृष्टि की तदपि सदा साधारण।।२।।

स्रष्टा की सर्जना-विधा की विधायिनी ब्रह्माणी।
विश्वम्भर आभरण दिव्यश्री शिव ईशत्व शिवानी ।।३।।

रोम-रोम पुलकित, अणु-अणु कण-कण निसर्गतः-प्राणित।
माँ वात्सल्य निधाना निश्छल त्यागस्विता प्रमाणित ।।४।।

जननी वन्दे जन्म वहन बन करती पालन-पोषण।
कर सर्वस्व समर्पित हर्षित, स्वयं करा निज शोषण ।।५।।

पालित पर वात्सल्य, वाहिका, अविरल वन-निर्झरिणी।
स्नेहिल पर निःस्वार्थ भाव से स्वयं प्राण-उत्सरिणी।।६।।

अम्बर-सा उत्सर्ग समुन्नत वारिधि सी-वत्सलता।
नन्दन कानन के समीर-सी, ले स्नेहिल सुसरलता ।।७।।

सृष्टिकारिणी विश्वधारिणी युगान्तिका बन जाती।
उत्कर्षापकर्ष जिसका ही बनती ऐतिह्यथाती।।९।।

आदि-अनादि शक्ति का सचमुच स्वयं ! सविग्रह प्रकटन।
जन-जन की जननी, समरणीया प्रणमन प्रणमन।।१०।।

– ए–३/३०२, विशाल खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ (उ.प्र.)

अक्क महादेवी एक अनुपम व्यक्तित्व

– डॉ. टी.जी. प्रभाशंकर 'प्रेमी'

आज भी अक्क महादेवी स्त्री-स्वातन्त्र्य आन्दोलन की प्रेरक शक्ति रही हैं। वे भक्तिन के रूप में हों, चाहे विरागिनी के रूप में हों, वचन गीतों की कवयित्री के रूप में हों, बेजोड़ हैं। उनके इस अलौकिक व्यक्तित्व से अपरिचित कोई कन्नड़ भाषी नहीं है। आठ शताब्दियों से कविगण उनका यशोगान करते आये हैं।

जन्म-स्थान

ऐसे महान् व्यक्तित्व के विकास के लिए प्राकृतिक परिवेश भी योग्य रहा ही होगा। महादेवी का मायका 'मलेनाडु' है। वास्तव में प्राकृतिक सौन्दर्य का दूसरा नाम ही 'मलेनाडु' है। यह कर्नाटक का 'कश्मीर' है। मलेनाडु का एक प्रसिद्ध नगर बल्लिगामे प्राचीन शैव केन्द्र था। इस बल्लिगामे के समीप ही उडुतडि नामक गाँव है। यह गाँव बारहवीं शताब्दी में एक राज्य की राजधानी था। आज भी वहाँ जो भग्नावशेष मिलते हैं, उनसे पता चलता है कि वहाँ पहले कभी राजधानी रही होगी। जब यहाँ पर अक्क महादेवी ने जन्म लिया, तब उस प्रदेश का राजा कौशिक था। यह स्पष्ट नहीं है कि कौन कौशिक राज करता था। कुछ विद्वान् तर्क करते हैं कि प्रसिद्ध कसपय्य ही कौशिक था। अधिकतर विद्वानों की राय में उडुतडि महादेवी की जन्मभूमि है। हरिहर, पाल्कुरिके, सोमनाथ, चामरस, सिद्ध नंजेश आदि कवियों ने महादेवी को 'उडुतडि की महादेवी' ही सम्बोधित किया है।

माता-पिता

उडुतडि में महादेवी ने एक भक्त परिवार में जन्म लिया। उनके माँ-बाप के सम्बन्ध में भी मतभेद कम नहीं हैं। कवि हरिहर ने उनके माँ-बाप का नाम न बताकर केवल 'शिव भक्त-शिव भक्तिन' लिखा है। अन्य कवियों में चामरस, एलंदूर केरीश्वर और चेन्नबसवांक ने महादेवी के माँ-बाप के नाम 'निर्मल और सुमति' बताये हैं; मगर नाम जो भी हों, वे भक्त थे, शिवचर्य साधक थे और शिवतत्त्व के आराधक थे। सामान्यतः बहुत दिन तक सन्तान न होने पर माँ-बाप शिव या पार्वती से वर माँगते हैं। आखिर उन्हें सन्तान-प्राप्ति का वर मिलता है। प्राचीन काल से यह काव्य का वर्ण्य-विषय रहा है। महादेवी के साथ भी यही हुआ। हरिहर चामरस, चेन्नबसवांक और विरूपाक्ष पण्डित कवि ने वर्णन किया है कि पार्वती का ही अंश सुमति के गर्भ में पलकर महादेवी के रूप में अवतरित हुआ।

शिक्षा

महादेवी के बालपन का वर्णन भी कवियों ने खूब किया है। हरिहर के अनुसार महादेवी का शिशु रूप अत्यन्त मोहक था। शशि कला के समान दिनानुदिन उनका रूप-सौन्दर्य बढ़ता गया। महादेवी ने गुरु से शिक्षा पायी। वे साहित्य निधि और सकल-कलाकोविद बनीं। ज्ञान के साथ भक्ति का भी मन में अंकुर हुआ।

भगवद्-अनुराग

उडुतडि में ही अक्क महादेवी ने जो अनुभव पाया होगा, उसकी झलक उनके एक वचन में प्राप्त होती है।

सुनो जीजी मैंने देखा इक सपना
छोटी-छोटी जटाएँ छोड़े शिवजी को
भिक्षार्थ घर आये देखा
उनसे मेरा हुआ मिलन

महादेवी के वचन का अवलोकन करने पर लगता है कि महादेवी साकार से निराकार की ओर और निराकार से साकार की ओर बराबर विहार करती थीं। शायद सगुण और अगुण में भेद ही न रखती हों। त्रिविध लिंग-पूजा का परम रहस्य भी यही है।

माँ-बाप और सहेलियों के बीच भी अक्क अकेलेपन का ही अनुभव करती रहीं। 'आत्म संगात' के लिए मल्लिकार्जुन के रहते हुए भी बाह्य जीवन में समानधर्मी का अभाव सहज ही महादेवी को क्लेशपूर्ण रहा होगा। अनुरूप दूल्हे के साथ शादी करके पारिवारिक जीवन बिताना ही स्त्री का धर्म समझनेवालों को उन्हें समझाना पड़ा–

मयूर गिरि में न खेलकर
क्या किसी टीले पर खेलेगा ?
हंस सरोवर में न तैर कर
क्या किसी तालाब में तैरेगा ?
कोयल वसन्त में न कूक कर
क्या किसी दूसरी ऋतु में कूकेगी ?

भ्रमर सुगन्धी फूल पर न जाकर
क्या गन्धहीन फूल पर जायेगा ?
मल्लिकार्जुन के चरणों को छोड़कर
क्या मेरा मन अन्य वासना पर जायेगा ?

महादेवी का मन चन्न मल्लिकार्जुन को छोड़ अन्य की ओर देख न सकता था। यही था महादेवी आदर्श। अन्य की चाह उन्हें असह्य थी।

महादेवी सब में, सचराचर में चन्न मल्लिकार्जुन की ही चाह कर दिन-रात विश्व पूजा में तल्लीन रही–

सूरज का प्रकाश, आकाश का विस्तार
हवा का चालन, तरु गुल्म लतादियों में खिले फूल व पत्ते
षड्वर्ण सब दिन की पूजा;
चन्द्र, प्रकाश, तारे, अग्नि आदि
दीप्तिमान सब रात की पूजा !
रात दिन तुम्हारी पूजा में
मैं अपने को भूल गयी हूँ हे, चन्न मल्लिकार्जुन।

महादेवी पली थीं सह्याद्रि के प्राकृतिक सौन्दर्य के बीच। प्राकृतिक चेतना से मैत्री कर उनका अन्तरंग अनन्त विकास के लिए लालायित रहा। यह वचन सुनिये– शायद यह वचन-गीत श्रीशैल मार्ग में गाया होगा। इसमें प्रकृति प्रज्ञा और विश्व पूजा की परिकल्पना ने कैसी अभिव्यक्ति पायी है ?

वन सब तुम ही हो
वन के सारे कल्प वृक्ष तुम ही हो
वृक्ष में खेलते खग मृग सब तुम ही हो
हे चन्न मल्लिकार्जुन
मुझे क्यों न दरसन देते ?

विवाह का प्रसंग

महादेवी ने अपने को अपने आदर्श पति के लिए समर्पित कर लिया था; मगर यह राग-द्वेष मिश्रित समाज इसे कैसे मानता ! इस समाज का विश्वास था कि स्त्री का जन्म होते ही उसके लिए एक दूल्हा कहीं रहा होगा; मगर महादेवी का भगवान् से विवाह ! यह कहीं सम्भव है– अदेही देव के साथ देही कन्या का विवाह !

महादेवी अनुपम सुन्दरी थीं। कवि हरिहर ने उनकी वयः सन्धि का अत्यन्त मनोहर वर्णन किया है। पता नहीं, किस देव को मोहने के लिए बना था यह सौन्दर्य !

अब अग्नि-परीक्षा का समय आ गया। वसन्त मास का एक दिन उडुतडि के राजा कौशिक ने, जो उसी मार्ग से निकल रहा था, महादेवी को देख लिया।

महादेवी का कौशिक के साथ विवाह हुआ कि नहीं, यह अब भी अनबुझा प्रश्न है, समस्या है।

हरिहर कवि ने 'महादेवियक्कन रगले' में, चेन्नबसवांक ने अपने 'महादेवियक्कन पुराण' में, केंचवीरण्णोडिय ने 'शून्य सम्पादने' में बताया है कि महादेवी का विवाह हुआ था; मगर चामरस कवि ने 'प्रभुलिंग लीले' में, विरूपाक्ष पण्डित ने 'चेन्नबसव पुराण' में, एलंदूर हरीश्वर ने 'प्रभु देवर पुराण' में, गुब्बिमल्लणार्य ने 'गणभाषित रत्नमाले में, हलगे देवरू ने 'शून्य सम्पादने' में और गूलूर सिद्धवीरण्णोडेय ने 'शून्य

सम्पादन' में बताया है कि महादेवी का ब्याह नहीं हुआ था।

हरिहर के अनुसार महादेवी कौशिक के आग्रह से तंग आकर और माँ-बाप को राज-कोप से बचाने के लिए तीन शर्तों पर विवाह की माँग स्वीकार करती हैं। कौशिक के तीन शर्तों को तोड़ने पर महादेवी कौशिक को छोड़ देती हैं।

अतः साक्ष्य के रूप में महादेवी का वचन देखिये–

मुझको मेरी चिन्ता
चर्मकार को चाम की
धर्मी को धर्म की चिन्ता
कर्मी को कर्म की
मुझको मेरी चिन्ता
कौशिक को काम की
मूर्ख, छोड़ मेरा दामन
मुझ को चिन्ता मेरे स्वामी की कि
वह मुझ पर रीझेगा या नहीं ?

मगर एक दूसरे वचन से लगता है कि वे केवल चन्न मल्लिकार्जुन को ही पति के रूप में मानती थीं–

मरणरहित सलोने पर
रूपरहित प्रियतम पर
भवरहित अभव पर
निश्चित अचल अडिग पर
मैं रीझ गयी।
चन्न मल्लिकार्जुन ही हैं मेरे पति
अन्य से कोई सम्बन्ध नहीं।

महादेवी का ब्याह हुआ हो, तो भी उनकी गरिमा कुण्ठित नहीं होती है। यदि विवाह नहीं हुआ था, तो भी उनकी श्रेष्ठता कम नहीं होती।

महादेवी ने स्वयं कहा है–

पुरुष को सताती नारी माया बनकर
नारी को सताता पुरुष माया बनकर

महादेवी ने यह भी स्पष्ट किया है–

चन्न मल्लिकार्जुन के शरण जनों को
न माया सताती, न अभिमान।

हरिहर कवि कहते हैं कि महादेवी माँ-बाप, घर-बार छोड़कर श्री शैल की ओर चल पड़ीं। हरिहर महादेवी के कल्याण-गमन, प्रभुदेव-महादेवी के अनुभव मण्डप में वाद-विवाद आदि प्रसंग का उल्लेख तक नहीं करते; मगर हरिहर को छोड़कर अन्य सब कवि महादेवी के कल्याण गमन का वर्णन करते हैं।

दिगंबरत्व

हरिहर और चामरस दोनों कवि मानते हैं कि महादेवी दिगम्बर स्थिति में कौशिक के बन्धन से मुक्त होकर उडुतडि से निकल पड़ीं। हमारे देश में पुरुष का दिगम्बरत्व कोई नयी बात नहीं; मगर स्त्री का दिगम्बरत्व, वह भी एक जवान स्त्री का, सोचना भी कठिन था। आज भी यह शिष्टाचार विरुद्ध है; मगर महादेवी निर्भय होकर कहती हैं–

दिगम्बर ही दिव्याम्बर है मेरे लिए।

सखि, वे मुझसे कहकर जाते

– मैथिलीशरण गुप्त

सिद्धि-हेतु स्वामी गये, यह गौरव की बात,
पर चोरी-चोरी गये, यही बड़ा व्याघात।

सखि, वे मुझसे कहकर जाते,
कह, तो क्या मुझको वे अपनी पथ-बाधा ही पाते।

मुझको बहुत उन्होंने माना,
फिर भी क्या पूरा पहचाना ?
मैंने मुख्य उसी को जाना,
जो वे मन में लाते।
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

स्वयं सुसज्जित करके क्षण में,
प्रियतम को, प्राणों के पण में,
हमीं भेज देती हैं रण में–
क्षात्र-धर्म के नाते।
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

हुआ न यह भी भाग्य अभागा,
किस पर विफल गर्व अब जागा ?
जिसने अपनाया था त्यागा;
रहें स्मरण ही आते !
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

नयन उन्हें हैं निष्ठुर कहते,
पर इनसे जो आँसू बहते,
सदय हृदय वे कैसे सहते ?
गये तरस ही खाते !
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

जायँ, सिद्धि पावें वे सुख से,
दुखी न हों इस जन के दुख से,
उपालम्भ दूँ मैं किस मुख से–
आज अधिक वे भाते !
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

गये, लौट भी वे आवेंगे,
कुछ अपूर्व-अनुपम लावेंगे,
रोते प्राण उन्हें पावेंगे,
पर क्या गाते-गाते ?
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

('यशोधरा' से साभार)

एक और जगह पर कहती हैं–

जब चन्न मल्लिकार्जुन जगत् रूपी आँखों से
देख रहा है
तब अपने को कैसे छिपाऊँ ?

यह दिगम्बरत्व प्रकरण अद्भुत है; मगर लोक-जीवन को यह पागलपन लगा होगा। महादेवी लोक की चिन्ता न करते हुए कहती हैं–

पर्वत पर बसाकर घर
वन्य पशुओं से डरना क्या ?
सागर तट पर बसाकर घर
लहरों से डरना क्या ?
बीच बाजार बसाकर घर
शोरगुल से डरना क्या ?
चन्न मल्लिकार्जुन देव ! सुनो
जग में जन्म लेने पर,
स्तुति निन्दा होने पर
मन स्वस्थ न रहे तो क्या ?

महादेवी अपने मन को स्वयं सान्त्वना देती हुई कहती हैं–

हे मन, निर्भय रहो, निश्चित रहो !
भक्तों के निन्दक करोड़ों होते हैं
भक्तिहीनों के निन्दक कोई नहीं !

कल्याण की ओर

महादेवी जब केशाम्बरी हो कल्याण की ओर चल पड़ीं तब कामुकों ने उन्हें बहुत तंग किया होगा; मगर वे अधीर न हुईं। उन्होंने कहा चन्न मल्लिकार्जुन को छोड़कर अन्य पुरुष सब भाई हैं।

कल्याण पहुँचते ही महादेवी बसवेश्वर से मिलने को उत्सुक हुईं। कल्याण के प्रति उनकी परिकल्पना देखिये। कल्याण का प्रवेश आसान नहीं। लोभ-मोह रखनेवाले को कल्याण में पदार्पण नहीं करना चाहिए। जो अन्तरंग और बहिरंग शुद्ध नहीं, उन्हें कल्याण में प्रवेश न करना चाहिए। अन्तरंग को पहचानकर, चन्न मल्लिकार्जुन को चाह कर उभय लज्जा से मुक्त होने पर महादेवी कल्याण के दर्शन कर नमो-नमो कहती रहीं।

उभय लज्जा से मुक्त होकर कल्याण में प्रवेश करने पर भी अल्लम प्रभु की परीक्षा से बच न सकीं। अनुभव मण्डप में प्रभुदेव ने उनकी परीक्षा ली। उसमें महादेवी सफल हुईं। उन्होंने सिद्ध किया कि चन्न मल्लिकार्जुन ही एकमात्र पति है। उनका 'लिंग पति शरण सती' भाव अनुकरणीय है। लिंग करस्थल में रहने पर भी कितनी दूरी ! यह दूरी महादेवी के लिए असहनीय हो जाती है।

श्रीशैल की ओर

अब महादेवी कल्याण से श्रीशैल की ओर निर्गमन कर रही हैं। कल्याण के असंख्य शिवशरणों से विदा लेते, आँसू बहाते, शरण जनों के सामने महादेवी निर्मम न रह सकीं। उनकी आँखों से भी आँसू टपके विना न रह सके।

श्रीशैल मार्ग में चल पड़ी महादेवी कहती हैं–

भूख तुम ठहरो, ठहरो; प्यास तुम ठहरो ठहरो
नींद तुम ठहरो, ठहरो;
काम तुम ठहरो, ठहरो; क्रोध तुम ठहरो ठहरो
मोह तुम ठहरो, ठहरो; लोभ तुम ठहरो ठहरो
हे मद तुम ठहरो, ठहरो; मत्सर तुम ठहरो ठहरो
सचराचर तुम ठहरो, ठहरो
मैं ले जा रही हूँ एक आवश्यक पत्र
मेरे स्वामी मल्लिकार्जुन को ! सबको मेरा प्रणाम।

सचराचर को नमन कर महादेवी आगे चलीं। वे अचल हैं वज्र के समान। उन्हें कोई रोक नहीं सकता। समर्पण की सारी तैयारियाँ कर रही हैं। श्रीशैल पर चढ़ रही हैं। यह श्री गिरि का आरोहण मानव की ऊर्द्धगामी अभिलाषा का परम प्रतीक है।

कदलि वन के दर्शन करते ही वे अपने आपको भूल बैठीं। उन्हें कदलि एक अद्भुत संकेत के रूप में दिखायी पड़ा–

'कदलि तन है, मन है, विषयासक्तियाँ हैं, भव घोर अरण्य है, कदलि को जीतकर कदलि वन में भवहर को देखा ! भव को छोड़कर आयी समझकर जब चन्न मल्लिकार्जुन ने करुणा से गले लगाया, तब मैं उनके हृदय कमल में समा गयी।

अक्क महादेवी ने भक्ति-ज्ञान-वैराग्य इन तीनों में समान सिद्धि प्राप्त की थी। महादेवी नामातीत, सीमातीत, निज भक्ति ही निज शक्ति, अतरंग की प्रभा बहिरंग सब जो आप ही बनी थीं, तन गुण खोकर जो लिंगसंगी बनीं। मन गुण खोकर जो ज्ञान संगी बनी, भाव गुण खोकर जो महाप्रभा बनीं, मैं और वह के द्वैत-भाव खोकर गुहेश्वर लिंग में जो स्वयं लिंग बनीं, महादेवी के उस व्यक्तित्व का क्या वर्णन करें !

महादेवी की साहित्य साधना भी कम महत्त्व की नहीं है। समग्र कन्नड़ साहित्य में उनके स्तर की कवयित्री वे अकेली ही रही हैं। तीन सौ से भी अधिक वचनों में हरएक अनुपम रत्न के समान हैं। उनकी 'योगांग त्रिविधि' अमूल्य कृति रत्न है। ☐

– प्रभुप्रिया, ३६१, VI मैन, III ब्लाक, III स्टेज, बसवेश्वर नगर, बेंगलूर– ५६००७६ (कर्नाटक)

भामती

– डॉ. प्रज्ञा पाण्डेय दीक्षित (अमेरिका)

शाङ्कर वेदान्त में तीन प्रमुख प्रस्थान हैं– विवरण प्रस्थान, भामती प्रस्थान और वार्तिक प्रस्थान। इनमें 'भामती' प्रस्थान के पुरोवर्त्तक हैं आचार्यप्रवर वाचस्पति मिश्र, जो समस्त आस्तिक दर्शन के विशिष्ट व्याख्याकार के रूप में बहुचर्चित हैं। बहुत मौलिक ग्रन्थकार न होते हुए भी 'सर्वदर्शन कानन पञ्चानन' जैसे विरुद उनके गौरव के ज्ञापक हैं। 'भामती' उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है, जिसका प्रणयन ब्रह्मसूत्र पर शंकराचार्य के शारीरक भाष्य की विशद व्याख्या के रूप में हुआ। उनके अन्य टीकाग्रन्थों में न्यायदर्शन पर 'न्यायसूची निबन्ध' और 'न्यायवार्तिकतात्पर्य', सांख्य दर्शन में सांख्यकारिका की टीका 'तत्त्व कौमुदी', योगदर्शन में पतञ्जलि के योगसूत्रों पर 'तत्त्ववैशारदी', पूर्व मीमांसा के क्षेत्र में मण्डन मिश्र के 'विधिविवेक' पर 'न्यायकणिका' प्रमुख हैं। विद्वानों की धारणा है कि दार्शनिक विचार का उनका क्रम आरम्भ तो हुआ था न्यायशास्त्र से, जिसे पूर्णता प्राप्त हुई वेदान्त में। स्वयं वेदान्तनिष्ठ होते हुए भी वे जिस दर्शन की व्याख्या में प्रवृत्त होते हैं, व्याख्या के समय वे उसी दर्शन के सिद्धान्तों का पोषण करते हैं और उस पर अपनी वेदान्तनिष्ठा का अनावश्यक आरोपण नहीं करते। टीका-लेखन के अध्यवसाय से अर्जित अनन्त पुण्यराशि भी वे अन्त में परमात्मा को ही समर्पित कर देते हैं–

यन्न्यायकणिकातत्त्वसमीक्षा तत्त्वबिन्दुभिः
यन्न्यायसाङ्ख्ययोगानां वेदान्तानां निबन्धनैः।
समचैषं महत्पुण्यं तत्फलं पुष्कलं मया
समर्पितमथैतेन प्रीयतां परमेश्वरः।।

उनका समय १०वीं शती का उत्तरार्द्ध है, जैसा कि उन्होंने स्वयं 'न्यायसूत्रीनिबन्ध' में 'वस्वंकसुवत्सरे' (शकसंवत्) कहकर स्वयं उल्लेख किया है।

जैसा कि पहले कहा गया, 'भामती' वाचस्पति मिश्र की सर्वश्रेष्ठ रचना है, जिसका नामकरण उन्होंने अपनी पत्नी के नाम पर किया। कहा जाता है कि हर महान् पुरुष की उपलब्धि में किसी-न-किसी रूप में उसकी पत्नी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। अपनी श्रेष्ठ टीका के 'भामती' रूप में नामकरण से प्रतीत होता है कि इस कृति के प्रणयन में ही अपनी पत्नी के योगदान के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने के लिए ही वाचस्पति मिश्र ने उसके नाम पर इसका नामकरण कर दिया; लेकिन पारम्परिक मान्यता है कि अपनी पत्नी के प्रति आजीवन की गयी उपेक्षा का आंशिक परिष्कार करने का प्रयत्न ही उन्होंने इस रूप में किया। एक ऐसी पत्नी, जिसके साथ जीवन भर रहने पर भी उन्होंने कभी उसका संज्ञान नहीं लिया, यहाँ तक कि जब एक दिन वह सामने खड़ी हो गयीं, तो उसे वे पहचान भी नहीं पाये। फिर भी वह निरन्तर उनकी सेवा में संलग्न रही। जब पहचाना, तो जीवन की सन्ध्या हो चुकी थी। पत्नी के द्वारा एक सन्तान की लालसा व्यक्त करने पर उन्होंने उत्तर दिया– 'अब यह सम्भव नहीं है। हाँ, सन्तान के माध्यम से लोग जिस सुदीर्घ अस्तित्व के लिए लालायित रहते हैं, वह तुम्हें विना सन्तान के ही प्राप्त हो जायेगा। मैं अपनी सर्वश्रेष्ठ टीका का नामकरण तुम्हारे नाम पर किये दता हूँ।' सहज सन्तोषी भारतीय गृहिणी 'भामती' मात्र इतने से ही सन्तुष्ट हो गयी। निश्चय ही ज्ञान के क्षेत्र में पण्डितप्रवार वाचस्पति मिश्र जो अपूर्व योगदान कर पाये, उसमें भामती के त्याग, तप और सेवा की त्रिवेणी भी सम्मिलित है।

'भामती' नाम्नी टीका को बाद में कितनी प्रतिष्ठा और लोकप्रियता मिली, इसका आकलन उस पर प्रणीत टीकाओं और प्रतिटीकाओं की पुष्कल संख्या से किया जा सकता है, जिनमें अमलानन्द-कृत 'वेदान्त कल्पतरु', अप्पय दीक्षित-रचित 'वेदान्त कल्पतरु परिमल', वैद्यनाथ पायगुण्डे कृत 'वेदान्त कल्पतरु मञ्जरी', 'कल्पतरु व्याख्या', 'भामती तिलक (वल्लाल सूरिकृत), 'ऋजु प्रकाशिका' (अखण्डानुभूति यति-कृत), 'भामती भाव दीपिका' (अच्युत कृष्णतीर्थ कृत), 'भामतीयुक्त्यर्थ संग्रह' (अज्ञात कर्तृक), 'भामती विवरण' (सुब्रह्मण्य शास्त्री कृत), 'भामती टीका प्रकाश' (लक्ष्मीनाथ झा कृत) इत्यादि प्रमुख हैं। □

– १७०५, वेस्ट ७विंथ स्ट्रीट, अपार्टमेण्ट नं. ४,
फेडेरिक मेरीलैण्ड– २१७०२ यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमेरिका

महारानी पद्मिनी का जौहर

— महाकवि पं. श्यामनारायण पाण्डेय

लाल-लाल कराल, जीभों को निकाल बढ़ा रही थी।
अग्नि की हिलती शिखाएँ प्रलय-पाठ पढ़ा रही थीं।।
आज चरु के साथ रावल-वंश का संसार स्वाहा।
वीर-होता मन्त्र पढ़ते आँसुओं की धार स्वाहा।।
आज इस नरमेध मख में बाल-केलि, दुलार स्वाहा।
धधकती जलती चिता में माँ-बहन के प्यार स्वाहा।।
साथ आहुति के अनल में मेदिनी के भोग स्वाहा।
लो, पिता-माता-प्रिया के योग और वियोग स्वाहा।।
मन्दिरों के दीप स्वाहा राजमहल-विभूति स्वाहा।
आज कुल की रीति पर लो नीति-भूषित भूति स्वाहा।।
अमर वैभव से भरे इस ज्वाल में घर-द्वार स्वाहा।
आन-बान सतीत्व पर लो आज कुल-परिवार स्वाहा।।
इस हुताशन में कुसुम-से गीत स्वाहा, रूप स्वाहा।
लो प्रजा के साथ ही इस वीर-भू का भूप स्वाहा।।
पवन से मिल-मिल गले हँसती चिता में हास स्वाहा।
सत्य-रक्षा के लिए जीवन मधुर मधुमास स्वाहा।।
इधर होता हवन करते, उधर रूपवती खड़ी थी।
चौतरे पर गुनगुनाती आँसुओं की फुलझड़ी थी।।
आग, मैं तुझमें समाऊँ, अंक में ही मुक्ति पाऊँ।
आज अपनी लाज तेरी गोद में छिपकर बचाऊँ।।
पा सकी न शरण कहीं पर, माँ किसी ने दुख न देखा।
द्रौपदी के कृष्ण ने भी मलिन मेरा मुख न देखा।
साथ सतियों के इसी से शरण में आयी हुई हूँ।
माँ ! न तू मुँह फेरना, मैं दीन ठुकरायी हुई हूँ।।
माँ ! अगर आदेश दे, तो रूप की होली जलाऊँ।
आग, मैं तुझमें समाऊँ, अंक में ही मुक्ति पाऊँ।।
आज आँचल में छिपा ले, द्वार की इतनी हया कर।
पार जीवन के लगा दे, आज तू इतनी दया कर।।
आज लपटों से लिपटकर मैं कहूँ अपनी कहानी।
और इन चिनगारियों में फूँक दूँ ऐसी जवानी।।
ज्वलित तेरे लोचनों से भी करुण आँसू बहाऊँ।
आग, मैं तुझमें समाऊँ, अंक में ही मुक्ति पाऊँ।।
मैं जलूँ तो राख को तू दे उड़ा क्षिति से गगन पर।
पातकी रज छू न पावे, नभ हिले मेरे निधन पर।।

और विधि से कह किसी को रूप दे तो शक्ति भी दे।
पति मिले तो पति-चरण में भाव भी दे, भक्ति भी दे।।
माँ ! अगर कह दे, नहीं तो देह से ज्वाला जगाऊँ।
आग मैं तुझमें समाऊँ, अंक में ही मुक्ति पाऊँ।।
गीत के अन्तिम चरण के गरम रव ललकार निकले।
जल उठी रानी अचानक अंग से अंगार निकले।।
पातिव्रत के तेज जागे, जग उठीं चिनगारियाँ भी।
हा ! जलीं तन के अनल से साथ ही सब नारियाँ भी।।
तब चिता ने भी बुलाया, क्रूर लपटों को हिलाया।
और ज्वाला को सभय कम्पित रतन ने घी पिलाया।।
आग हाहाकार करती हरहराती चरु चबाती।
रूप ज्वाला में पचाने को चली भू-नभ कँपाती।।
बार-बार किला हिला, अम्बर हिला, भूडोल आया।
सिहरकर दबकीं दिशाएँ, 'जय सती' का बोल आया।।
देवताओं ने सजल नभ से सती को झाँक देखा।
भूलती उनको न उस दिन की सती की रूप-रेखा।।
इधर स्वाहा शब्द निकला, उधर वह कूदी अनल में।
जल उठीं लपटें लटों में जल उठी वह एक पल में।।
गात छन-छन रूप छन-छन, एक छन तक छन-छनाकर।
उड़ गयी मिलकर धुएँ में ज्योति जग में जगमगाकर।।
जल गयी रानी रुई-सी, स्मृति सुई सी गड़ रही है।
पथिक ! गंगा आँसुओं की, विवश आज उमड़ रही है।।
लाज अबला की बचा ली, आग, क्या तुझको बखानूँ।
छीन ले कोई अगर तुझसे उसे तो वीर जानूँ।।
हा ! सती के बाद ज्वाला में धधकती नारियाँ थीं।
खेलती चिनगारियों से, सुमन-सी सुकुमारियाँ थीं।।
आग में कूदीं अभागिन, प्रथम विधवाएँ बिचारी।
प्राणपति के सामने कूदीं चिता में प्राण-प्यारी।।
देखती अपलक तनय को, माँ जली जलती चिता में।
हा ! पिता के सामने कूदी सुता जलती चिता में।।
भाइयों को देखती कूदीं अनल में धीर बहनें।
अग्नि-पथ से स्वर्ग पहुँचीं वीर गढ़ की वीर बहनें।।
दुधमुँहीं नव बालिकाएँ, जो न कूद सकीं अनल में।
आग में फेंकी गयीं वे मातृ-कर से एक पल में।।

('जौहर' महाकाव्य से साभार)

रानी दुर्गावती

मध्य प्रदेश के जबलपुर शहर के पास गढ़ामण्डला का एक किला है। सोलहवीं सदी में इस जगह को गोंडवाना कहा जाता था। दुर्गावती इसी गोंडवाना राज्य के राजा दलपतशाह की वीर पत्नी थीं।

दुर्गावती बुन्देलखण्ड के चन्देल राजपूत राजा कीर्तिसिंह की बेटी थी। दुर्गावती बहुत सुन्दर तथा गुणवती थी। बचपन से ही उसे घुड़सवारी करने, तीर–कमान चलाने, तलवारबाजी करने, बन्दूक, तमञ्चा चलाने का शौक था। दुर्गावती की सुन्दरता तथा वीरता की चर्चा पूरे गोंडवाना तथा बुन्देलखण्ड में फैल गयी थी। बड़े–बड़े राजा उसे अपनी रानी बनाने के सपने देखने लगे। गढ़ामण्डला के राजा दलपतशाह ने तो निश्चय किया कि वह विवाह करेगा, तो दुर्गावती से ही।

दलपतशाह ने दुर्गावती के पिता कीर्तिसिंह को विवाह का प्रस्ताव भिजवाया। दुर्गावती एक राजपूत कन्या थी, इसलिए उसके पिता उसका विवाह किसी क्षत्रिय युवक से ही करना चाहते थे। कीर्ति सिंह ने दलपतशाह को लिख भेजा कि उनके जैसे गोंड युवक को एक राजपूत क्षत्राणी से विवाह की इच्छा नहीं करनी चाहिए। हाँ, यदि दलपतशाह कालिञ्जर की सेना के साथ लड़ाई में जीत गये, तो वह दुर्गावती को जीतकर उसके साथ विवाह कर सकेंगे, अन्यथा नहीं।

दलपतशाह के लिए यह एक कठिन चुनौती थी; परन्तु दलपतशाह भी हार माननेवाले नहीं थे। उन्होंने कालिञ्जर पर चढ़ाई कर दी। दोनों सेनाओं के बीच भयंकर युद्ध हुआ। अन्त में दलपतशाह की विजय हुई। दलपतशाह ने दुर्गावती से विवाह कर लिया।

दुर्गावती गढ़ामण्डल की रानी बनीं। विवाह के बाद उनके एक पुत्र वीरनारायण हुआ। वीरनारायण अभी चार साल का ही था कि अचानक बीमारी से दलपतशाह की मृत्यु हो गयी। दुर्गावती पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। साहसी रानी ने हिम्मत नहीं हारी। बड़े धैर्य और साहस के साथ अपने राज्य की देखभाल करती रहीं। उनके राज्य में प्रजा सुखी थी। प्रजा को रानी पर पूरा विश्वास था।

इधर शत्रु राज्यों की निगाहें गोंडवाना राज्य पर लगी रहती थीं। माण्डू के सुलतान बाजबहादुर ने रानी पर हमला कर दिया। रानी ने उसको युद्ध में हरा दिया। इस प्रकार अन्य पड़ोसी राज्यों से भी वह लोहा लेती रहीं।

उन दिनों उत्तर भारत में अकबर का राज्य था। उसने अनेक राज्यों को अपने राज्य में मिला लिया था। रानी दुर्गावती के सुन्दर रूप का वर्णन तथा उसके अच्छे राजकाज की कीर्ति भी उसने सुन रखी थी। वह गढ़ामण्डला को अपने राज्य में मिलाने की सोचने लगा।

सन् १५६४ में अकबर ने अपने सेनापति आसफ खाँ को एक बड़ी सेना के साथ गोंडवाना पर आक्रमण करने के लिए भेजा। दुर्गावती की सेना अकबर की सेना के मुकाबले काफी कम थी; परन्तु दुर्गावती की सेना छापामार युद्ध करने में बहुत निपुण थी। दुर्गावती की छापामार सेना से आसफ खाँ परेशान हो गया। अब उसने चालाकी करने की सोची। दुर्गावती की सेना के कुछ लोगों को अपनी ओर मिला लिया। दुर्गावती को ऐन मौके पर पता चल गया। उसने गद्दारी करनेवालों को सख्त सजा दी और शत्रु को मुँह की खानी पड़ी।

अब आसफ खाँ ने गढ़ा से पश्चिम में भेड़ाघाट से नर्मदा के चढ़ाव की ओर मोर्चा लगाया। दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध होने लगा। स्वयं आसफ खाँ रानी का रणचण्डी रूप देखकर काँप गया। रानी के दुर्भाग्य से उसकी सेना पीछे से गढ़ामण्डला की नदी और बाकी तीनों ओर से आसफखाँ की सेना से घिर गयी। तभी अचानक बेमौसम ही नदी में बाढ़ आ गयी। वीरनारायण युद्ध में घायल हो गया। रानी ने अपने विश्वासी सरदारों के संरक्षण में उसे चौरागढ़ पहुँचाने का आदेश दिया। दुर्गावती अपने बचे हुए सैनिकों को लेकर मोर्चे पर डट गयी। शत्रु की सेना चौगुनी थी। अचानक एक तीर रानी की आँख में आकर लगा। रानी ने उसे अपने हाथ से खींचकर बाहर निकाल दिया। असीम दर्द सहते हुए रानी ने अपने घोड़े की लगाम दाँतों से थाम ली और दोनों हाथों से तलवार चलाने लगी।

शत्रु कट-कटकर गिरने लगे। तभी एक तीर रानी की गर्दन में आकर लगा। रानी घोड़े से गिर गयी। शत्रु ने चारों ओर से उसे घेर लिया। इससे पहले कोई रानी को छू सके, रानी ने अपनी कटार अपने सीने में भोंक ली। रानी वीरगति को प्राप्त हो गयी।

दुर्गावती आजीवन अपने देश की स्वाधीनता की रक्षा करती रहीं। वह अल्प आयु में ही स्वर्ग सिधार गयी थीं; परन्तु उनकी जीवन-गाथा आज भी इतिहास के पन्नों में अमर है। □

– स्नेहलता

– १/३०६, विकास नगर, लखनऊ (उ.प्र.)

रानी दुर्गावती

तपोमूर्त्ति मृणालिनी देवी

– देवदत्त

"प्रश्न यह है कि तुम हिन्दूधर्म का पथ ग्रहण करोगी या नये सभ्य-धर्म का पथ ग्रहण करोगी. .. हजार ब्राह्म स्कूल में तुम क्यों न पढ़ी होओ, आखिर हो हिन्दू घर की ही लड़की, हिन्दू पूर्वपुरुषों का रक्त तुम्हारे शरीर में है, मुझे सन्देह नहीं कि तुम शेषोक्त पथ का ही अनुसरण करोगी।"

– श्री अरविन्द

श्री अरविन्द ने यह पत्र अपनी पत्नी मृणालिनी देवी को लिखा था। पत्र पुलिस के हाथ लग गया था और श्री अरविन्द के विरुद्ध अलीपुर बम केस में अदालत में सबूत के तौर पर रखा गया था।

श्री अरविन्द एवं मृणालिनी देवी (युवावस्था में)

मृणालिनी देवी का जन्म १८८८ ई. में हुआ था। उनके पिता श्री भूपालचन्द्र वसु प्रारम्भ के इंग्लैण्ड रिटर्न लोगों में से एक थे और शिलांग में कृषि विभाग के उच्च शासकीय पद पर अधिष्ठित थे। उनकी सन्तानों में मृणालिनी सबसे सुन्दर थीं। उनका वर्ण तेजस्वी गुलाबी था। उनके चरण और करतल नवजात शिशु की तरह मानो आलक्तक-रञ्जित थे। उनकी कोमलता देखकर सखियाँ हँसी में कहतीं कि हाथों में रुई भरी है क्या ? मृणालिनी अपने चाचा से शिकायत करतीं कि वे उसके लिए दो सुदृढ़ हाथ ला दें। जरा बड़ी होने पर उन्हें कलकत्ता के ब्राह्म विद्यालय में भेज दिया गया था। वहाँ सुधीरा बोस के साथ उनकी मैत्री हो गयी। सुधीरा बोस बाद में रामकृष्ण मिशन की संन्यासिनी बनीं। प्राचार्य गिरीश चन्द्र वसु उनके स्थानीय अभिभावक थे।

उधर श्री अरविन्द जब भारत आये और ७ वर्ष नौकरी के बाद बडोदरा कालेज के उपाचार्य बने, तो उन्होंने कलकत्ता के समाचारपत्रों में विज्ञापन दिया कि वे हिन्दू कन्या के साथ हिन्दू-विधि से विवाह करना चाहते हैं।

विज्ञापन ने गिरीश बोस का ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने सम्वाद प्रारम्भ किया। सम्वाद तो अन्य परिवारों ने भी प्रारम्भ किया था; पर श्री अरविन्द आये और प्रथम दृष्टि में उन्होंने मृणालिनी को पसन्द कर लिया। मृणालिनी तब १५ वर्ष की थीं। श्री अरविन्द का जोर था कि विवाह हिन्दू-रीति से सम्पन्न हो। विवाह में श्री जगदीश चन्द्र वसु, लार्ड सिन्हा आदि उपस्थित थे; पर श्री अरविन्द के पिता का परिवार और माता का परिवार दोनों ब्राह्म थे, अतः उनमें से कोई भी नहीं आया।

विवाह के बाद श्री अरविन्द उन्हें लेकर देवघर गये और वहाँ से नैनीताल जाकर बडोदरा गये। मृणालिनी वैराग्यनिष्ठ थीं। श्री अरविन्द नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। दोनों इसका बाह्य प्रदर्शन नहीं करते थे। रामकृष्ण परमहंस और माँ सारदा देवी की परम्परा में ही वे आध्यात्मिक दम्पति थे। बाद में माता आनन्दमयी और उनके पति बाबा भोलानाथ में यह परम्परा आगे चली थी। श्री अरविन्द का जीवन राजनीतिक था और वे जब कलकत्ता आ गये, तो भी सदा व्यस्त रहते थे। सुधीरा बोस के माध्यम से मृणालिनी सारदा माँ के सम्पर्क में आयीं और शिष्या बनकर मन्त्र-दीक्षा ली थी। क्रान्तिकारी कार्यों के कारण श्री अरविन्द का जीवन अपना नहीं बचा था। १६०६ के अन्तिम पत्र में श्री अरविन्द ने उन्हें बडोदरा को हमेशा के लिए छोड़ने की बात लिखी है। उन्होंने यह भी लिखा है कि उन्होंने मांस-मछली का परित्याग कर दिया है और यौगिक-साधना को अधिक समय दे रहे हैं।

सन् १६०६ में कलकत्ता आ जाने के बाद १६०७ में श्री अरविन्द पकड़े गये। तब वे शिलांग में पितृगृह में थीं; पर जब श्री अरविन्द मलेरिया से ग्रस्त हुए, तो उनके पास थीं और उन्होंने अहोरात्र उनकी सेवा की थी। वे उनकी शय्या के किनारे बैठतीं। माथे और पैर में मालिश करतीं। स्वयं पथ्य बनातीं और कुछ न हो, तो उन्हें पंखा झलती रहतीं। वैसे भी अन्य समय में श्री अरविन्द की सेवा ही उनका लक्ष्य

था। वे नित्य उनके स्नान की तैयारी करतीं, उन्हें भोजन करातीं और निश्चित समय पर चाय पिलातीं। श्री अरविन्द जब ससुराल में होते, तो भोजन के समय कन्यायें चुटकी लेकर हास-परिहास करतीं और उन्हें चिढ़ाती थीं। श्री अरविन्द इसमें विशेष आनन्द भी लेते थे; किन्तु बांग्ला बोलने का अभ्यास नहीं होने के कारण मुहतोड़ उत्तर नहीं दे पाते थे। ऐसे समय में मृणालिनी ही उनकी रक्षा करती थीं।

१९०७ में जब श्री अरविन्द पकड़े गये, तो छूटने के बाद वे श्री चारुदत्त के घर पर वेलिंग्टन स्क्वायर में ठहरे। तभी श्री अरविन्द के श्वसुर श्री भूपाल चन्द्र वसु अपनी पुत्री मृणालिनी के साथ कलकत्ता आकर ठहरे। वे एक दिन चारुदत्त के यहाँ आये और उन्होंने श्री अरविन्द को भोजन और रात्रिवास के लिए निमन्त्रण दिया। श्री अरविन्द जब सायंकाल कालेज से लौटे, तो उन्हें चारुदत्त की पत्नी ने निमन्त्रण की सूचना दी और बताया कि हमने आपके लिए नये कपड़े स्नानागार में रख दिये हैं। वे जब तैयार होकर निकले, तो उनकी पत्नी ने दो मालायें दीं और बताया कि एक आपके लिए है और एक मृणालिनी के लिए और सुबह के पहले मत लौटियेगा।

दूसरे दिन सवेरे नौकर ऊपर आया और बताया कि श्री अरविन्द आ गये हैं। पूछने पर श्री अरविन्द ने बताया– "मैंने बहुत स्वादिष्ट भोजन किया और आपके निर्देशानुसार मालाओं का आदान-प्रदान भी किया।" "पर आप जल्दी वापस क्यों चले आये ?"

श्री अरविन्द का उत्तर था– "मैंने उसे सारी बात बता दी थी और उसकी अनुमति से ही मैं वापस आया हूँ।"

बाद में श्री अरविन्द और मृणालिनी एक साथ कलकत्ता के ग्रे स्ट्रीट के एक भाड़े के मकान में रहने लगे थे। वहीं एक रात पुलिस ने छापा मारा। मृणालिनी ने उठकर द्वार खोला, तो उन्होंने पूछा– "श्री अरविन्द कहाँ हैं ?"

श्री अरविन्द कम्बल बिछाकर जमीन पर सोये हुए थे।

पुलिस सार्जेण्ट ने कहा– "आप जैसा सुशिक्षित इस तरह सो रहा है। यह बहुत शर्मनाक है।"

श्री अरविन्द का उत्तर था– "हम हिन्दुओं के लिए इस प्रकार का जीवन त्याग और उच्च आदर्श का प्रतीक है।"

पुलिस ने मृणालिनी देवी का सन्दूक तोड़ डाला और श्री अरविन्द द्वारा उन्हें लिखे गये पत्र जब्त कर लिये।

श्री अरविन्द को पुलिस द्वारा ले जाये जाने के बाद मृणालिनी सुधबुध खो बैठीं। उन्हें श्री अरविन्द के मौसा श्री कृष्ण कुमार मित्र अपने घर ले गये। वहाँ से वे अपने पिता के द्वारा शिलांग ले जायी गयीं। श्री अरविन्द का अपना कोई घर नहीं था।

शिलांग उनकी साधना–भूमि थी। प्रतिदिन प्रातः वे स्नान करके बगीचे से फूल चुनतीं, फिर पूजागृह में प्रवेश करतीं

और घण्टों पूजा और ध्यान में बितातीं। फिर पारिवारिक कार्य करतीं और विवेकानन्द तथा रामकृष्ण परमहंस की पुस्तकों का पाठ करतीं। सायंकाल वे पुनः ध्यान करने चली जातीं। रात्रि में पिता या सखियों के कहने पर भक्ति संगीत सुनाती थीं। उन्होंने मांस-मछली तथा मिठाई का परित्याग कर दिया था। उनके पिता उन्हें पाण्डिचेरी ले जाना चाहते थे; पर ब्रिटिश सरकार ने अनुमति नहीं दी। शिलांग की पहाड़ियों में वे ध्यान किया करती थीं। वे ध्यान-योगिनी थीं। किसी का आभास था कि पूर्व जन्मों में जब श्री अरविन्द कृष्ण के पुत्र अनिरुद्ध थे, तो वे बाणासुर की पुत्री उषा थीं।

श्री अरविन्द बडोदरा में शासकीय वेष पहनते थे; पर कलकत्ता आने पर वे विदेशी वस्त्रों का त्याग करके धोती पहनने लगे थे। मृणालिनी इन वस्त्रों को क्रान्तिकारियों को गुप्त कार्य हेतु जाते समय पर पहना देती थीं। बांग्ला और अंग्रेजी दोनों भाषाओं का ज्ञान होने पर भी वे शुद्ध बांग्ला का व्यवहार अपने लेखन में करती थीं।

सन् १९१८ में वे आँखें दिखाने के लिए कलकत्ता आयीं और गिरीश वसु के घर ठहरीं। उधर सौरीन आदि पाण्डिचेरी से कलकत्ता आ रहे थे। सौरीन ने श्री अरविन्द से पूछा कि मैं मृणालिनी से मिलने वाला हूँ। उनको क्या कहूँ ?

श्री अरविन्द ने कहा कि आप मृणालिनी के लिए यहाँ आने की व्यवस्था कर सको, तो मुझे बड़ा हर्ष होगा।

तब श्री अरविन्द बड़ी दरिद्रता में रहते थे। जब उनका ध्यान इस ओर दिलाया गया, तो उनका उत्तर था– "मिताहार से काम चला लेंगे।"

दिसम्बर, १९१८ में श्री अरविन्द का सन्देश आया– "मेरी साधना परिपूर्ण हुई है।... मुझे विश्व के लिए बहुत सारे कार्य करने हैं। आओ ! मेरे कार्य में सहायक बनो।"

अब मृणालिनी के पिता ने मृणालिनी को पाण्डिचेरी ले जाने का निर्णय लिया। शासन से अनुज्ञा भी मिल गयी। मृणालिनी कलकत्ता भी पहुँच गयीं। वहाँ वे जहरीले मलेरिया का शिकार हो गयीं और १७ दिसम्बर, १९१८ को उन्होंने शरीर छोड़ दिया।

सुधीरा बोस संन्यासिनी हो गयी थीं। वे धैर्य दिलाने के लिए मृणालिनी की माँ को सारदा देवी के पास ले गयीं। मृणालिनी सारदा माँ की शिष्या थीं और सारदा माँ उन्हें 'बहू माँ' कहकर पुकारती थीं। सारदा माँ उस समय ध्यान में थीं। जब उन्होंने आँखें खोलीं और मृणालिनी की माँ को देखा, तो बोलीं– "अभी मैं बहू माँ से बात कर रही थी, वह उर्ध्वलोक की देवी थीं। उसके कर्म पूरे हो गये और आत्मा मुक्त हो गयी थी।"

मृणालिनी के देहान्त के बाद उनके गहने निवेदिता बालिका विद्यालय को दे दिये गये और श्री अरविन्द द्वारा लिखे गये पत्रों की पेटी उनकी इच्छानुसार गंगा जी में प्रवाहित कर दी गयी थी। □

– श्री अरविन्द आश्रम, पुदुच्चेरी– ६०५००२

कश्मीर की रानी यशोवती

कल्हण ने अपने राजतरंगिणी ग्रन्थ में गोनन्द (प्रथम) नामक सम्राट् से कश्मीर के इतिहास का श्रीगणेश किया है। यही कालखण्ड धर्मराज युधिष्ठिर के राज्याभिषेक का है। गोनन्द ने मथुरा पर आक्रमण किया था और श्रीकृष्ण के हाथों मारा गया था। कश्मीर का ज्ञात इतिहास महाभारत के समय के साथ-साथ चलता है।

सम्राट् गोनन्द के पश्चात् उसके पुत्र दामोदर का राज्याभिषेक सम्पूर्ण धार्मिक रीतियों के अनुसार हुआ। दामोदर मथुरा की रणभूमि में वीरगति को प्राप्त हुए अपने पिता गोनन्द की मृत्यु पर क्षुब्ध था। अतः उसने श्रीकृष्ण को युद्ध की चुनौती दी। उस समय श्रीकृष्ण गान्धार में एक स्वयम्वर से सम्बन्धित उत्सव में भाग ले रहे थे। दामोदर ने एक चतुर राजनेता की भाँति इसी अवसर पर श्रीकृष्ण पर आक्रमण करना उचित समझा; परन्तु राजनीति और रणकौशल में निपुण श्रीकृष्ण ने दामोदर के आक्रमण का वीरोचित उत्तर दिया। युद्ध हुआ और दामोदर मारा गया।

श्रीकृष्ण को समूचे भारत की राज-व्यवस्था एवं जनजीवन की कितनी चिन्ता थी, यह बात इस ऐतिहासिक तथ्य से प्रकट होती है कि जब दामोदर की मृत्यु के पश्चात् कश्मीर के राजसिंहासन का प्रश्न खड़ा हुआ, तो श्रीकृष्ण ने ही इस समस्या का समाधान खोजा। दामोदर का उस समय कोई पुत्र नहीं था। श्रीकृष्ण ने उसकी पत्नी रानी यशोवती का कश्मीर के राजसिंहासन पर अपनी योजना एवं व्यवस्था के अन्तर्गत राज्याभिषेक करवा दिया। उस समय रानी यशोवती गर्भवती थी। उसने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम गोनन्द रखा गया। यही इतिहास में गोनन्द (द्वितीय) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। रानी यशोवती के राज्याभिषेक में समस्त भारत के राजा-महाराजाओं का भाग लेना यह प्रकट करता है कि कश्मीर राज्य का सम्बन्ध भारत के शेष राज्यों के साथ मधुर था। इस समय तक कौरवों-पाण्डवों की पारिवारिक कलह एक बहुत बड़े राजनीतिक संघर्ष में बदल चुकी थी, जिसकी परिणति महाभारत नामक महायुद्ध के रूप में हुई। इस युद्ध में कश्मीर के भाग न लेने का एक कारण यह भी था कि गोनन्द (द्वितीय) उस समय छोटा था, अतः उससे किसी ने युद्ध में भाग लेने को नहीं कहा। श्रीकृष्ण की व्यवस्था में सम्भवतः कश्मीर राज्य को युद्ध की ज्वालाओं से दूर रखना ही था, ताकि भारतीय दर्शन के इस उद्गमस्थल को रणक्षेत्र की आँच से सुरक्षित रखा जाये। *('धर्मान्तरित कश्मीर' से साभार)*

– नरेन्द्र सहगल

मातृशक्ति

– डॉ. ब्रह्मदत्त अवस्थी

शक्ति का सञ्चरण सर्वत्र है। धरा के नर्त्तन में, सागर के उफान में, मेघों के गर्जन में, गगन में उड़ते पक्षियों के कलरव में, कुलाँचें भरते हिरनों के वेग में, दहाड़ते सिंहों में, खिलते पुष्पों में और खिलखिलाते, हँसते, उछलते बाल वृन्दों में उसी का स्फुरण है। कोई भी क्रिया, शक्ति के विना सम्भव नहीं और कोई भी अस्तित्व शक्ति के विना टिकता नहीं।

अस्तित्व और क्रिया को जन्म देनेवाली, उसे गोद में ले गुदगुदाने, पुचकारने, प्यार करने और सम्हालनेवाली, अपने हाथों पालने और पोषित करनेवाली, अपनी सामर्थ्य से सिखाने और बढ़ानेवाली, अपनी संरक्षण से रक्षित और सम्वर्द्धित करनेवाली, अपनी कृपा से सम्पन्न, सशक्त और मुखर बना लक्ष्य को प्राप्त करनेवाली शक्ति, मातृशक्ति है। माँ का दिव्यतम स्वरूप है। विराट् स्वरूप है।

इसीलिए, जब अन्तेवासी, आश्रम से विदा लेकर, गृहस्थ आश्रम की ओर प्रस्थान करता है, तो आचार्य अपने सम्पूर्ण ज्ञान को, सम्पूर्ण स्वानुभूतियों को, समाधिस्थ हो समेट, उद्घोष करता है 'मातृ देवो भव'। और भी वाक्य गूँजे; पर सभी समा गये इसी उद्घोष में– 'मातृदेवो भव।' इसमें समाहित है– हमारा ऐहिक जीवन, आयुष्मिक जीवन, हमारा अभ्युदेय-निःश्रेयस्; स्वार्थ-परमार्थ।

'माँ' शब्द का जब हम उच्चारण करते हैं, तो लगता है, कोई शिशु अपनी तोतली बोली में– सारी श्रद्धा को, कृतज्ञता को भरकर पुकारता है– प्रभु को, आद्याशक्ति को, पृथ्वी को– अपनी जननी को। यह पुकार अमोघ है– वह करुणामयी, वात्सल्यमयी– शक्ति सौन्दर्यमयी माँ दौड़ पड़ती है। उसका स्नेहाञ्चल छा जाता है, जिसकी शीतल छाया में श्रान्त-क्लान्त संसार विश्राम करता है–

"या देवी सर्व भूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः।।"

शब्द-सम्पदा का सबसे छोटा, पर पूर्ण-गहन-विशद-रहस्यागर्भी शब्द है 'माँ'। वह श्री है, शक्ति है, चिति है। उसकी मुस्कान में सृजन, दूध में स्थिति और उसके रोष में प्रलय छिपा है। उसकी ममता, करुणा, क्षमा और सहिष्णुता को, उषा और गोधूलि-वेला में छिटकता देखते हैं। एक में बिछुड़ते वात्सल्य की गहराई है, तो दूसरे में मिलने की आतुरता की तीव्रता। विरह और मिलन की दूरी में मातृत्व का फैला हुआ रसमय व्याप है।

जब मनुष्य आर्त्त होता है, पीड़ित होता है, दुःखों से घिर जाता है, तो वह ईश्वर को पुकारता है– ईश्वर, जो अनन्त गुणों का आकर है, ज्योतिस्वरूप है, करुणासागर है; पर वह आर्त्तदशा में सब भूल जाता है और धरती पर प्रथम-प्रथम उच्चरित शब्द– 'माँ' याद आता है– 'त्वमेव माता'। उसे विश्वास है कि प्रभु क्षमाशील है, वात्सल्यमय है, माँ की करुणा से पूर्ण है और वह सब प्रकार सुरक्षित है। माँ का अर्थ है– सुरक्षा का विश्वास, पाप-ताप-शाप से मुक्ति।

'बृहद्धर्म पुराण' में व्यासदेव जी ने मातृस्तोत्र द्वारा माँ की गरिमा एवं महिमा को मुक्त भाव से उभारा है–

पितुरप्यधिका माता गर्भधारणापोषणात्।
अतो हि त्रिषु लोकेषु नास्ति मातृसमो गुरुः।।

– पुत्र के लिए माता का स्वरूप पिता से बढ़कर है; क्योंकि वह इसे गर्भ में धारण कर चुकी है तथा माता के द्वारा ही उसका पालन-पोषण हुआ है। अतः तीनों लोकों में माता के समान दूसरा गुरु नहीं।

जब, युधिष्ठिर से प्रश्न होता है 'पृथ्वी से भारी, गरिमामयी क्या है ?' तो उत्तर आता है– माता। माता से बढ़कर और कुछ नहीं। प्रकृति की गोद में फैले हुए इस मातृत्व को भारत ने भरपूर दोनों हाथों से बटोरा है; पूजा है। जहाँ करना ही करना है; जहाँ देना ही देना है; जहाँ पोषण ही पोषण है; जहाँ प्यार ही प्यार है; जहाँ आनन्द ही आनन्द है; वहाँ मातृत्व के उभरते स्वरूप को पहचाना और पूजित किया। 'गो' हमारे लिए पशु नहीं, 'माँ' है; गंगा हमारे लिए नदी नहीं 'माँ' है; 'तुलसी' हमारे लिए पौधा नहीं, 'माँ' है; धरती हमारे लिए मिट्टी का टुकड़ा नहीं, 'माँ' है। 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।' 'जिस प्रकार माता अपने पुत्रों के लिए मन के
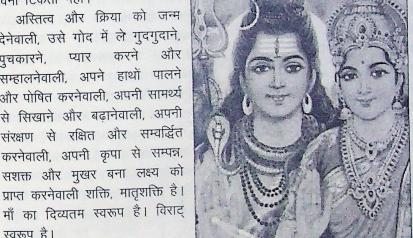
वात्सल्य भाव से दुग्ध का विसर्जन करती है, उसी प्रकार दूध और अमृत से परिपूर्ण मातृभूमि अनेक पयस्विनी धाराओं से राष्ट्र के जन का कल्याण करती है।" डॉ. वासुदेव अग्रवाल की यह व्याख्या समीचीन है।

शक्ति के विना 'शिव' 'शव' है; राधा के विना कृष्ण अधूरे हैं; सीता के विना राम अशक्त हैं और धरती के विना राष्ट्र स्वप्न है। ठाकुर कहते हैं "इस शरीर के भीतर माँ स्वयं है। भक्तों को लेकर लीला कर रही है।" भारतीय चिन्तकों ने व्यष्टि रूप के मातृत्व को समष्टि रूप में देखकर उसे आद्याशक्ति के रूप में पहचाना। "या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।" जगद्‌गुरु शंकराचार्य ने 'सौन्दर्य लहरी' के उत्तरार्द्ध में समस्त विश्व को भगवती की ही विराट् देह मानकर, प्रकृति माता के दिव्य स्वरूप को खींचा है। उन्होंने घोषणा की "कुपुत्रो जायेत क्वचदपि कुमाता न भवति।" वस्तुतः यही मातृशक्ति है। शक्ति-तत्त्व ही मातृ-तत्त्व है। हमने इस तत्त्व को माँ दुर्गा में, माँ लक्ष्मी में और माँ सरस्वती में पूजा है। शक्ति एक ही है, स्वरूप अलग-अलग हैं। बंकिम ने 'माँ भारत' को 'वन्दे मातरम्' में इन तीनों ही स्वरूपों में देखा है। 'माँ' का यह दिव्य रूप, समस्त समस्याओं का समाधान है।

यह 'माँ' का ही धधकता भाव है, जो सन्तान में ज्वाला बनकर दहका और अंग्रेज सत्ता छोड़ भाग खड़ा हुआ। भगत सिंह ने, चन्द्रशेखर आजाद ने, अशफाक और बिस्मिल ने सत्ता के लिए प्राणों की आहुति नहीं दी थी; फाँसी का फन्दा नहीं चूमा था; सीने पर गोली नहीं खायी थी। भारत माँ के लिए भारत के लालों ने मौत को गले लगाया था। आज सत्ता प्राप्त करते ही वह मातृत्व विदा कर दिया गया। मातृत्व गया, तो समर्पण का भाव भी चला गया। मातृत्व गया, तो बन्धुत्व का भाव भी विदा हुआ; मातृत्व गया, तो निजत्व और अपनत्व का भाव भी गया। रह गये हम, वोटर और नागरिक। बेटे न रहे।

परिणाम है कि पूरा भारत जल रहा है। बाहर से हमला है और भीतर से घात है। सर्वत्र लूट है, हाहाकार है। मौत नृत्य कर रही है और जीवन सिसक रहा है। राष्ट्र भक्त कहलानेवाले, जनता के सेवक कहलानेवाले, सदन में चप्पल और जूता, माइक और मुक्का चला लहूलुहान होते हैं, लोकसभा में गाली-गलौज और धक्का-मुक्की करते हैं। पूरा देश लुटेरों का देश बन गया है।

कितना अच्छा होता कि मातृत्व उभरता; मनुष्यत्व जगता; पशुत्व भागता और घर-घर माँ पूजित होती। गली-गली, नगर-नगर, माँ का वन्दन चलता; पूरे देश में भारत माँ के स्वर गूँजते। हम भोग के लिए भेड़िये बने झपट्टा न मारते और 'माँ के बेटे' बन, माँ भारत को अखण्ड करते; एकात्म करते; सशक्त करते; परम-वैभव पर पहुँचाते। मिटते हुए विश्व को बचाने के लिए एक ही उपाय है– मातृत्व जगे, विश्व-मातृत्व उद्‌बुद्ध हो। सृजन की अनन्त भावनाएँ हमारी प्रतीक्षा कर रही हैं। मातृत्व वह वृत्ति है, जो प्रेम, त्याग, उत्सर्ग भाव से कण-कण को पालती है। हमारी प्रार्थना है– हे माँ विश्वेश्वरि ! तू विश्व की रक्षा कर। इसी माँ के लिए रवीन्द्रनाथ ठाकुर गाते हैं–

तेरे लिए ही माँ
तेरे लिए ही माँ, यह देह और प्राण समर्पित हैं।

इसी भाव में भर, विक्रम विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में महादेवी वर्मा कहती हैं– "मातृभूमि देवो भव"। वह भारत में मातृत्व का पूरापन उभड़ता पाती हैं और उसके लिए श्रद्धा से भर, बच्चे-बच्चे का आह्वान करती हैं कि वह भारत–भक्त हो। □

– १/२३६, नगलादीना, फतेहगढ़, फर्रुखाबाद (उ.प्र.)

कहानी अधूरी-सी

– शिवानी सिंह

माँ-बाप ने नाम भी ऐसा दिया.... ममता। वह ममता जो मातृत्व पर कलंक लगा रही थी.... वह ममता जो नारीत्व का गला घोट रही थी।

नारीत्व की सम्पूर्णता के जिस अहसास से हर स्त्री रोमाञ्चित हो उठती है, उसी गर्भधारण की सूचना मिलते ही ममता रो पड़ी। एक बार फिर... फिर से भ्रूण जाँच की प्रक्रिया से गुजरना होगा और एक बार फिर कन्या भ्रूण का पता चलते ही उसकी हत्या होगी।

ममता ने दूसरी तरफ सोते हुए पति पर निगाह डाली। रवि खुश थे कि शायद इस बार उनको अपना कुलदीप मिल जाये और उम्मीद की तकिया सिरहाने लगाकर रवि चैन से सो रहे थे।

अपने अन्दर पनपती घृणा का दम घोटने के लिए ममता ने दूसरी ओर करवट ली। बगल के पलंग पर उसकी बिटिया दुनिया की कड़वाहट से दूर, आशाओं के नन्हें पर लगाकर उम्मीदों की ऊँची उड़ान भर रही थी। क्या नहीं करती है वह अपने माँ-बाप को रिझाने के लिए। अब तो कभी-कभी अपने नन्हें कोमल हाथों से आड़ी-टेढ़ी रोटियाँ भी बनाती है। उस पर पढ़ाई में अव्वल।

मेरे माथे पर पड़ते बल से ही मेरी बिटिया मेरे हृदय की व्यथा समझ जाती और तब कभी माँ बनकर दुलराती और कभी रेत पर पानी की बूँद की तरह मेरे घावों को तर कर जाती। कभी ओस की बूँद की तरह मेरे दुःखों को सहलाती और कभी सहेली (हमजोली) बन अनायास ही हँसा जाती।

रवि के लिए तो अब मैं मात्र एक शरीर हूँ; पर मेरी आत्मा का बोध मेरी बच्ची ने मुझे कराया कि मैं नारी हूँ.... सौन्दर्य हूँ, इसका एहसास मेरी बच्ची को सँवारते हुए हुआ मुझे। भूल चुकी थी मैं कि मैं भी एक जीवन हूँ, मेरी साँसों का एहसास मेरी बच्ची ने कराया मुझे।

सीधे लेटकर ममता ने खुद को शान्त करने के लिए आँखें मूँद लीं; क्योंकि खुली आँखों का सच सहन करने में वह स्वयं को असमर्थ पा रही थी।

रात धीरे–धीरे गहराने लगी कि...

अचानक....

ममता के चारों तरफ खून ही खून था। पहले चादर फिर पूरी पलंग, उसकी कपड़े और एक-एक अंग... सब लाल थे। चीखकर जाग उठी ममता।

दहल गया उसका दिल... रुक-सी गयीं उसकी धड़कनें; क्योंकि साल-साल भर पहले मारी गयी उसकी बेटियाँ उसके सामने खून से लथपथ खड़ी थीं और मानो कह रही थीं....

माँ हमें क्यों मरने दिया तूने,
हम तो तेरा ही अंश थे न ?
हम तो तेरा हाथ बँटाते माँ
दीवाली पर मिठाई और
होली पर गुझिया बनवाते माँ
हम तो तेरी जिम्मेदारियों के लिए
कन्धा तेरा बन जाते माँ
हम तो तेरे आँगन में
मिट्टी के घरौंदे बनाते माँ
हम जो तेरी उँगली पकड़कर
चलना सीख जाते माँ
तेरी बाँहों को थामकर
ये दुनिया तुझे दिखाते माँ
इससे पहले कि हम तेरे
निर्जीव हृदय में धड़कन भरते
तूने हमसे साँसें छीन लीं
अन्त कर दिया.... क्यों माँ ?
कुछ तो कह, जवाब दे माँ ?
क्यों न हमें बचाया तूने
नारी तो दुर्गा, चण्डी है फिर
क्यों न वह रूप दिखाया तूने
क्यों माँ क्यों ?

जाग उठी ममता और शायद पहली बार जागी थी आज। पूरी रात जागती ममता अपने जीवन के उधेड़बुन करती रही। जीवन के गणित में जोड़-घटाने लगाती रही और सूरज

की पहली किरन के साथ उठकर बैठ गयी।

शान्त थी वह अब। अधरों पर मुस्कान थी उसके। नहा-धोकर, ईश्वर के समक्ष हाथ जोड़ खड़ी हो गयी, और विना शब्दों के ही बहुत कुछ प्रण कर गयी।

रवि ने बताया कि दस बजे उन्हें भ्रूण परीक्षण के लिए अपने चिकित्सक मित्र के पास जाना है। बड़े ही शान्त किन्तु दृढ़ स्वरों में ममता ने रविं से कहा– बस....। बहुत चढ़ चुकी बेटियों की बलि अब और अनर्थ नहीं।

ममता की आँखों का तेज और स्वरों की दृढ़ता बहुत कुछ कह गयी रवि से। वह चुप था...। ममता ने लाड़ के साथ अपनी लाड़ो को उठाया और स्कूल के लिए तैयार करने लगी।

रवि एकटक देखता रह गया और ममता अपनी बिटिया का हाथ थामें उसे स्कूल बस में बिठाने चली...। यह एक प्रारम्भ है....

जी हाँ, ऐसी कई ममताओं की ममता कूड़ेदान, नाली गटर और सड़कों पर मिल जायेगी और बड़े–बड़े अखबारों के किसी पन्ने पर छोटी-सी खबर बन जायेगी। क्या यही है हमारी बेटियों का भविष्य ? बातें तो हम नयी सदी, नये युग, २०१० की करते हैं, डिग्रियाँ बड़ी-बड़ी लिये घूमते हैं; पर आज भी एक आम भारतीय घर में एक पुत्र की चाहत बलवती है। फिर बहाना चाहे वंश का हो, बाप-दादा के नाम का हो, कारोबार का हो या धन जायदाद का हो। मात्र सोच का फेर है; वरना इसमें से कुछ भी ऐसा नहीं, जो बेटियों द्वारा सम्भव न हो। फिर यह भेदभाव क्यों ?

एक नारी होने के नाते मैं हर नारी की जिम्मेदारी मानती हूँ कि यह कुकर्म रोका जाये। जिस गर्भ को धारण आपकी कोख करती है, उसका फैसला कोई और क्यों ले? दफन मत कर दीजिये अपनी लाडली को, अपनी सिसकियों में दीजिये एक नयी कोपल को नयी बहार और यह आपके द्वारा ही सम्भव है, बस आवश्यकता है एक कदम बढ़ाने की। साथ ही साथ उस नारी वर्ग से भी प्रार्थना करती हूँ कि नारी होकर नारीत्व का अन्त न करें और जो स्वयं नारी होकर भी कन्या रत्न का घर में स्वागत नहीं कर पाती है, जो बहू या बेटी के कन्या पैदा हो जाने पर मातम मनाती है। स्वयं को अबला कहकर पल्ला मत झाड़ लीजिये। बस एक बार हिम्मत कर अपनी बिटिया की उँगली थाम कर एक कदम तो चलकर देखिये हजारों कदम आपके साथ चल पड़ेंगे। लाखों चल पड़ेंगे आपके पीछे और होगा एक नवीन प्रारम्भ जब कन्या की पैदाइश पर लड्डू बाँटे जायेंगे... बड़े बुजुर्गों के पाँव छुये जायेंगे और सात दिनों तक गाँवों में सोहर, मंगल गाये जायेंगे।

□

– ३/३५, पत्रकारपुरम्, गोमतीनगर, लखनऊ (उ.प्र.)

माँ : हम सभी की

— बालकवि बैरागी

जब भी लिखता हूँ 'माँ'
तो लेखनी सरल और सारस्वत शस्त्र
हो जाती है।
कलाई में कम्पन नहीं होता
वह हो जाती है कर्मठ
अँगुलियाँ दिपदिपाने लगती हैं
मानो गोवर्द्धन उठा लेंगी।।
जब भी बोलता हूँ 'माँ'
जबान से शब्द नहीं शक्ति झरती है
खिल जाता है ब्रह्म कमल
भाषा वाणी हो जाती है
और वाणी ?
वाणी हो जाती है दर्शन।।
जब भी सोचता हूँ माँ के बारे में
हृदय देवत्व से भर जाता है
अन्तर का कलुष मर जाता है।।
याद आता है उसका कहा–
"बेटा ! ईश्वर ने जीभ और हृदय में
हड्डियाँ नहीं दीं।
क्यों ?"
फिर समझाती थी
"जीभ से कोमल और मीठा बोलो
हृदय से निश्छल और निर्मल सोचो।"
मैं वात्सल्य और ममता से छलछलाती
उसकी कल्याणी आँखों में
खुद को देखता रह जाता।।
फिर
अपने अमृत भरे वक्ष को
आँचल से ढँकती हुई मुझे
ममता, वात्सल्य और आँचल का
अर्थ समझाती
कर्म–कर्मठता–पुरुषार्थ–परमार्थ
पुण्य और परिश्रम का पाठ पढ़ाती
अपनी गायी लोरियों में
जागरण के छिपे मर्म को
नये सिरे से गाकर सुनाती।
मैं अबोध होकर सुनता रहता।।
'घर' और 'मकान' का फर्क बताती
'विवाह' और 'विश्वास' का भेद सुनाती
'परिवार' और 'गृहस्थी' की
गूढ़ ग्रन्थियाँ सुलझाती।।
जीतने पर इतराना नहीं
हारने पर रोना नहीं
गिरने पर धूल झटक कर
फिर से उठ खड़े होना सिखाती
'लक्ष्य' और 'आदर्श' का फासला
तय करवाती।।
मेरी डिग्रियों पर अपना दीक्षान्त लिखती
कम बोले को ज्यादा समझने की
कला बताती।।
पेड़–पत्तों और जड़ों का रिश्ता
धरती और आसमान से जोड़कर
मौसम और ऋतु से
आयु का गणित जोड़ती
मुझे भीतर तक मथ देती
मेरी नासमझी की बलैयाँ लेती
मैं समझने की कोशिश में
अवाक् सुनता रहता।।
एक दिन उसने सवाल किया
"बता! माँ के दूध को अमृत क्यों कहा?"
मैं चुप।
वह खिलखिलाकर बोली
"अमृत का स्वाद किसी को पता नहीं
क्योंकि उसे किसी ने पिया या चखा नहीं।।
माँ के दूध को अमृत कहा ही इसलिए कि
उसे पीने वाले भी
उसका स्वाद नहीं जानते।।
ज्यों ही मुझे लगा कि
तुझे उसमें स्वाद आने लगा है
मैंने अपनी छातियों से तुझे दूर कर दिया था
बता ! तब मेरे दूध का स्वाद कैसा था?"
मैंने चुप्पी तोड़ी– कहा
अमृत जैसा था।
वह खिलखिलाती रही
मैं हँसता रहा
मेरा सिर उसकी गोदी में था
वह आशीष देती रही
मेरे बाल सहलाती रही
उसकी आँखों से टप टप टपकते आँसू
मेरे ललाट पर गिरकर
विधाता के लिखे
मेरे भाग्यलेख को धो रहे थे
आकाश में चक्कर लगाते देवता
इस दृश्य पर न्योछावर हो रहे थे।।
पिताजी कहते थे
तेरी माँ निरक्षर जरूर है
पर अपढ़ नहीं है
जब तक वह तेरे पास है
तब तक तेरे जीवन में
कोई गड़बड़ नहीं है।।
एक साकार समूचा सशरीर
ईश्वर होती है माँ
अपने बच्चों के लिए ही
जागती और सोती है माँ
अपने सपनों में भी वह
तुम्हारा और केवल तुम्हारा
सुखी भविष्य देखती है
यह मत सोच कि वह
तुम्हारे और मेरे लिए
बस दो चार रोटियाँ सेंकती है।।
यहाँ साक्षात् भगवान् भी
माँ की कोख और उसके
पेट से जन्म लेता है
वह भी माँ के ऋण से उऋण
नहीं होता है।।
तेरी माँ तेरा स्वर्ग है
मैं बस उस स्वर्ग का द्वारपाल
तू अपनी जीवन–यात्रा का आदर्श तय कर
और अपने लक्ष्य को सम्हाल।।
आज बिलकुल अकेला मैं
सोचता हूँ
हाथ तो भगवान् ने मुझे बस
दो ही दिये हैं
पर मातृशक्ति मेरी माँ ने
कितने शस्त्र दे दिये हैं
मेरे इन दो हाथों में
इन्हें आजमाऊँगा मैं अपने जीवन–संग्राम में
इन्हें नहीं घुमाऊँगा
किन्हीं जुलूसों और बारातों में।।

□

'धापूधाम', १६६, डॉ. पुखराज वर्मा मार्ग, पोस्ट– नीमच– ४५८४४१ (म.प्र.)

मातृशक्ति के सम्मान की गाथा कह रहा है राजौरी का बलिदान भवन

– डॉ. महाराजकृष्ण भरत

देश-विभाजन के बाद जब पाकिस्तान अस्तित्व में आया, तो उसने जम्मू-कश्मीर के भूभाग को हथियाने के लिए साठ हजार से अधिक सशस्त्र कबाइलियों और पाकिस्तानी सैनिकों को भारतीय क्षेत्र में घुसा दिया। यह २२ अक्तूबर, १६४७ का वह दिन था, जब पौ फूटने से पूर्व ही हमलावरों ने मुजफ्फराबाद को आग के हवाले कर दिया था। इससे पहले कि यहाँ के निवासी यह जान पाते कि क्या हो रहा है, पाकिस्तानी हमलावरों ने मुजफ्फराबाद के प्रमुख ठिकानों पर कब्जा कर लिया था। जम्मू-कश्मीर में महाराजा की फौज के अधिकांश मुस्लिम सिपाही और अधिकारी भी इन लुटेरों के साथ मिलकर अपने ही साथियों की हत्या कर रहे थे और हमलावरों का मार्ग भी प्रशस्त कर रहे थे। तब तक राज्य का औपचारिक विलय भारत के संघीय ढाँचे में नहीं हुआ था। २६ अक्तूबर को विधिवत् रूप से विलय-सन्धि पर हस्ताक्षर करते हुए तत्काकालीन महाराजा हरिसिंह ने सम्पूर्ण जम्मू-कश्मीर का विलय भारत में किया था, जिसमें पाक अधिकृत कश्मीर तथा गिलगित व बाल्टिस्तान के क्षेत्र भी आते हैं।

बलिदान–कूप

राजौरी में नवम्बर, १६४७ के शहीदों की प्रतिस्मृति में बना बलिदान भवन

मुजफ्फराबाद में भड़की आग की भीषण लपटों की आँच जम्मू कश्मीर राज्य के अन्य क्षेत्रों तक भी पहुँची। कश्मीर क्षेत्र के उड़ी, बारामूला, सोपोर, हंदवाड़ा, कुपवाड़ा, बांडीपोरा, पट्टन, टंगमर्ग, बड़गाम तथा जम्मू भूभाग के पुंछ, राजौरी, मीरपुर, मुनावा भिम्बड़, कोटली, नौशहरा तक भी हमलावरों ने अपनी बर्बरता का खूनी इतिहास लिखा। जब भारतीय सेना ने श्रीनगर से कूचकर हमलावरों को रोका और पीछे खदेड़ना आरम्भ किया, तो इधर दुश्मनों ने जम्मू सम्भाग की ओर मुँह मोड़ा। उस समय राज्य या केन्द्र के पास इतनी पर्याप्त सेना भी नहीं थी कि उसे जम्मू क्षेत्र में तैनात किया जा सके। पहली प्राथमिकता हमलावरों को पीछे खदेड़ कर कश्मीर को बचाना था। राजौरी आक्रमण से पूर्व हमलावर मीरपुर, भिम्बड़, कोटली को हथिया चुके थे। मेंढर भी दुश्मनों कब्जे में था और अब पुंछ की बारी थी। राजौरी पर दुश्मनों ने दीवाली से एक दिन पहले रात के डेढ़ बजे आक्रमण किया। दुश्मन 'हाथी दरवाजे' से राजौरी में घुसे थे। उनके साथ महाराजा की फौज के वे सैनिक भी थे, जो बागी होकर दुश्मनों से मिल गये थे।

यहाँ के प्रत्यक्षदर्शियों एवं भुक्तभोगियों से जब राजौरी पर हुए आक्रमण की चर्चा हुई, तो उनका कहना था कि यह इस नगर को पहले ही आभास हो चुका था कि आक्रमण होनेवाला था। इसलिए कुछ पूर्व तैयारियाँ भी की गयी थीं। यह भी सुनिश्चित किया गया था कि जब हमला होगा, तो उस समय बिगुल बजाया जायेगा। तहसील कार्यालय में खजाने की रक्षा के लिए उस समय तहसीलदार हर्जीलाल समेत १८ गोरखे तथा २२ पेंशनधारी थे। पहले तहसीलदार ने यह आश्वासन दिया था कि किसी भी स्थिति में वह राजौरी छोड़कर नहीं भागेंगे; लेकिन हुआ इसके विपरीत, तहसीलदार रात के समय ही कुछ गोरखों को साथ लेकर भाग गया, जिसके कारण भी यहाँ की जनता का मनोबल गिर गया। राजौरी में संघ के अधिकारी श्री हरदेव वर्मा जी मुझे राजौरी-काण्ड के प्रत्यक्षदर्शियों से मिलाने ले गये। १६४२ में अमदाबाद से प्रथम वर्ष शिक्षित ८५ वर्षीय कृष्ण कुमार, जो १६४७ में राजौरी शाखा के मुख्य शिक्षक भी थे, ने घटनाओं का विस्तृत ब्यौरा देते हुए कहा कि उन दिनों मैं २२ वर्ष का था। श्री देवेन्द्र शास्त्री रियासी जिला के प्रमुख थे। शास्त्री जी राजौरी की स्थितियों का अध्ययन करने के लिए यहाँ

आये हुए थे और उन्होंने यहाँ का संज्ञान लेते हुए कहा था कि यहाँ की स्थिति ठीक नहीं है। यहाँ सुरक्षा व्यवस्था के लिए बारीकी से सोचा जाना चाहिए, ताकि राजौरी सुरक्षित रह सके। हमने सनातन धर्म सभा, राजौरी में हिन्दू-मुस्लिम समुदाय की बैठक बुलायी और तय यही हुआ कि विपत्ति आने पर दोनों समुदाय एक-दूसरे की सहायता करेंगे। पावन कुरान और श्रीमद्भगवद्गीता जी पर हाथ रखे गये; पर हमला होने के बाद मुस्लिमों का रवैया नकारात्मक ही रहा। उस समय श्री दीनानाथ केला यहाँ के संघचालक थे। श्री ओमप्रकाश कार्यवाह थे। हमला होने से एक दिन पूर्व हम तहसीलदार से भी मिले, उन्होंने हमें विश्वास दिलाया था कि वह नहीं जायेंगे; पर हमला होने पर वह अपनी बात पर अडिग न रह सके। श्री कृष्ण कुमार ने कहा कि रात के समय कुछ स्वयंसेवक सचेत हो गये और अपने मोर्चों पर डट गये, सुबह पता चला कि राजौरी शहर को हमलावरों ने चारों ओर से घेर लिया है। उन दिनों स्व. बिहारी लाल और स्व. तोलाराम छुट्टी पर घर आये हुए थे, जो महाराजा की मिलीशिया (फौज) में नौकरी करते थे। इन दोनों ने अन्तिम साँस तक हमलावरों का मुकाबला किया।

बलिदानी लाला बिहारी मोदी

दीनानाथ केला व उनकी पत्नी इन्द्रादेवी
बलिदान– ११ नवम्बर, १६४७

बलिदानी शान्ता रानी

राजौरी के नगरवासी १२ नवम्बर को तहसील कार्यालय में एकत्र हो गये थे। गुज्जर मण्डी चौक के पास एक बहुत बड़े क्षेत्र को हमलावरों ने कत्लगाह के रूप में बदल दिया

था। इधर लोग तहसील कार्यालय में फँसे हुए थे, जिसे हमलावरों ने घेर लिया था और उधर शहर से भाग रहे लोगों को सरेआम मौत के घाट उतारा जा रहा था। तहसील कार्यालय परिसर में मातृशक्ति के अपूर्व बलिदान के बारे में जब श्रीमती विमला मोदी, जिन्हें आदरपूर्वक नगरवासी 'माता जी' के सम्बोधन से पुकारते हैं, अतीत के पलों को खोलती हैं, तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इस आक्रमण में उन्होंने अपने पति स्व. मुकन्दलाल मोदी को भी खो दिया। आक्रमणकारियों ने स्व. मोदी को मौत के घाट उतार दिया। उस भीषण दौर में माताजी की आयु २२ वर्ष थी, उन्हें भी दुश्मन की गोली लगी थी, पर वह बच निकलीं। मातृशक्ति के बलिदान की गाथा का वर्णन करते हुए वे कहती हैं कि **जब तहसील कार्यालय को दुश्मनों ने चारों ओर से घेर लिया और गोलियों की बौछार भी होने लगी, तो उस विपत्ति के दौर में माताओं-बहनों तथा बालाओं के पास इसके सिवाय कोई विकल्प शेष नहीं रहता था कि वह दुश्मनों के क्रूर हाथों से बचने के लिए अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दें। पहले से ही अपने पास रखे विषैले पदार्थ को निगलकर मातृशक्ति ने अपनी जान दी, कुछ ने काँच कूट-कूट कर खाया। जब विष कम पड़ गया, तो करुण स्वरों में पत्नियों ने पतियों से मौत माँगी। उन्होंने कहा कि जहाँ आज बलिदान भवन का स्मारक बना हुआ है, उसके तल में जो कुआँ था, उसी में छलाँग लगाकर राजौरी की माता-बहनों ने जान दी।** यह स्मारक १६७० में बनकर तैयार हुआ था। श्रीमती विमला मोदी इसी बलिदान भवन की सर्वेसर्वा हैं तथा यहाँ नित्य सत्संग पाठ होता है।

यह सभी को ज्ञात होगा कि **राजौरी, चिंगरा तथा आसपास के क्षेत्रों पर पाकिस्तानी हमलावरों ने पाँच महीने से अधिक समय तक कब्जा बनाये रखा। ११ नवम्बर, १६४७ की रात को इस क्षेत्र पर धावा बोलकर उन्होंने १२ अप्रैल १६४८ तक यहाँ उत्पात मचाया। इस बीच शेष बचे हुए ८ हजार हिन्दुओं और सिखों को दुश्मनों ने अपने अधिकार-क्षेत्र में रखा था। दुश्मन इनसे परिश्रम करवाते थे, मानसिक तथा शारीरिक यातनाएँ भी देते थे। राजौरी के सामूहिक हत्याकाण्ड में हमलावरों के द्वारा मारे गये तथा घायलों की संख्या तीस हजार बतायी जाती है। राजौरी से दुश्मनों के चंगुल से भागे हुए १५०० हिन्दुओं एवं सिखों को जिन्होंने लगभग २५ किलोमीटर दूर चिंगरा में शरण ली थी, का भी कत्ल किया गया था। वर्तमान में जहाँ सेना का एयर फील्ड स्थल है, इस स्थल को आक्रमणकारियों ने बूचड़खाने में परिवर्त्तित कर दिया था। यहाँ पर आक्रमणकारियों ने जल्लादों से भी बदतर कृत्य किया। महिलाओं और पुरुषों को अलग-अलग कतारों में खड़ाकर यहाँ नरसंहार का ऐसा क्रूर इतिहास रचा गया, जो आततायी औरंगजेब, डुलचू, बुतशिकन सिकन्दर, हैदरशाह, अलीशाह, जब्बार खाँ के अमानवीय एवं बर्बर इतिहास की याद दिलाता है। हिन्दुओं और सिखों को पंक्तिबद्ध रखकर बारी-बारी हमलावर भेड़-बकरियों की तरह उनका सिर धड़ से अलग करते रहे। इस दर्दनाक दृश्य को देखकर उस दिन राजौरी के पहाड़ भी पसीज गये होंगे। वह कर्णभेदी चीत्कार आज भी वायुमण्डल में कहीं न कहीं तैर रही होगी।**
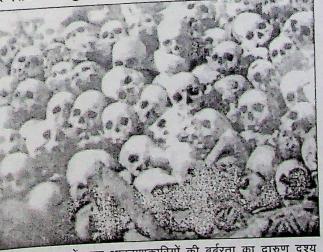
नवम्बर १६४७ में पाक आक्रमणकारियों की बर्बरता का दारुण दृश्य

राजौरी पर पाकिस्तानी आक्रमण के बारे में

माँ

– देवेश द्विवेदी 'देवेश'

माँ जन्म देती है सन्तान को
करती है भरण-पोषण
आचरण में ढालती है उत्तम संस्कार
चूमती है ललाट, देती है आशीष
घिस देती है माथा टेक-टेक
देवालयों की चौखट के पत्थर
करती है प्रार्थना उसके दीर्घायुष्य की
बाँधती है मन्त्रपूत यन्त्र भुजा पर
कुशलता के लिए
उसकी इस निसर्ग-ममता का ऋण
नहीं चुका सकती सन्तान
वह नहीं हो सकती उऋण
जीवन भर माँ से।

– द्विवेदी निवास, ई–१२२६, राजाजीपुरम्, लखनऊ– २२६०१७ (उ.प्र.)

भुक्तभोगी श्री ओंकार नाथ (जिला संघचालक, राजौरी) तथा भाजपा के वरिष्ठ नेता कुलदीप राज गुप्ता भी अपने दर्दनाक संस्मरण सुनाते हैं। श्री गुप्ता ने बलिदान भवन की घटना की महारानियों के जौहर से तुलना करते हुए कहा कि **हमने राजस्थान में रानियों के जौहर की गाथाएँ पढ़ी और सुनी थीं, पर १९४७ में राजौरी में हमने प्रत्यक्ष इस जौहर को देखा। जब राजौरी पर आक्रमणकारियों ने धावा बोला था, तो स्वयंसेवकों ने भी मोर्चे सँभाले थे। बीस घण्टे तक हमने दुश्मनों का मुकाबला किया, पर वह हजारों की संख्या में थे और हमारी संख्या नगण्य ही थी। उन दिनों हजारों हिन्दुओं को मौत के घाट उतार दिया गया। तीन-चार हजार महिलाओं ने विष के प्याले पिये। महिलाएँ अपने जेवर लुटेरों पर फेंकती रहीं, ताकि दुश्मन उनके शरीर को छू न सकें। सारा शहर जल रहा था।** श्री गुप्ता ने कुछ एक मुस्लिम परिवारों का नाम लिया, जिन्होंने उस समय हिन्दुओं की रक्षा की। उन्होंने कहा कि मुंशी जमालदीन ने (दरहाल गाँव) तथा चौधरी सलाम अहमद गुज्जर ने हिन्दुओं की लड़कियों को बचाया। श्री गुप्ता ने कहा उसे बच्चा समझकर हमलावरों ने जिन्दा छोड़ दिया, तब उसकी आयु १० वर्ष की थी, पर उसके पिता का कत्ल किया गया।

बलिदानी मुकुन्दलाल मोदी

जम्मू सम्भाग को आक्रमणकारियों से बचाने के लिए भारत सरकार को पाँच महीने लगे, तब तक पाकिस्तानी हमलावरों ने इस क्षेत्र में इतना उत्पात मचा रखा था कि परिन्दा भी पर नहीं मार सकता था। केन्द्र तब चेता, जब पुंछ भी हाथ से जाने वाला था। पण्डित जवाहरलाल नेहरू को उस समय सरदार पटेल तत्कालीन महाराजा हरिसिंह तथा शेख अब्दुल्ला ने यहाँ की स्थिति से अवगत कराया था। समय-समय पर मेहरचन्द महाजन भी केन्द्र से जम्मू सम्भाग को बचाने के लिए गुहार करते रहे। अन्ततः १३ अप्रैल, १९४८ के दिन भारतीय सेना ने पुनः राजौरी, चिंगरा तथा आसपास के क्षेत्रों को अपने कब्जे में लिया। अखनूर, राजौरी तथा पुंछ तक के मार्ग को दुश्मनों से मुक्त कराया गया। राजौरी के लोग दीवाली तो नहीं मना पाये थे, पर १३ अप्रैल, १९४८ को यानी बैसाखी के दिन उन्होंने राहत की साँस ली, जब प्रमुख स्थलों तथा मुख्य चौराहों में तिरंगे लहराये गये। मेजर जनरल कुलवंत सिंह के नेतृत्व में पाकिस्तानी आक्रमणकारियों के विरुद्ध भारतीय सेना ने सशक्त धावा

...शक्ति स्वरूपा नारी है

– शिवाकान्त मिश्र 'विद्रोही'

जो स्रष्टा की आधार–शिला जीवन–अंकुर की क्यारी है,
जिसका आँचल पीयूष–स्रोत जो जननी है, महतारी है;
नतमस्तक ब्रह्मा, विष्णु, महेश खड़े जिसके तप के सम्मुख,
जिसकी चुनौतियों से यम की संहार–शक्ति भी हारी है;
जिसकी ऊर्जा से अनुप्राणित नर जल थल क्या नभ तक जीता।
वह ही प्रेरणा–स्रोत हर युग की शक्तिस्वरूपा नारी है।।

जिसके आँचल के पाल्य सिंह–शावक के दाँत गिना करते,
जिसके आँचल के फूल शूल पर हँस चढ़ते न मना करते;
जो स्वामिभक्ति के पथ पर कोख निछावर ही करती आयी,
साहस ही नहीं शौर्य जिसके जग को दुष्कर सपना करते;
अन्धे पति को ही आँख मान जो आँखों पर पट्टी बाँधे।
वह भारत के स्वर्णाक्षर की गौरव अतीत गान्धारी है।।

जो याज्ञवल्क्य जैसों के विद्वत्ता के दर्प चूर करती,
जिसकी परिक्रमा से छोटी पड़ जाती है विशाल धरती;
जो भक्ति-शक्ति से कालकूट को सिद्ध करे हरि–चरणामृत,
जो सत्पथ पर चलती आयी अंगारों से न कभी डरती;
जो काली बनकर रक्तबीज को खप्पर में भर पी जाती।
जो शुम्भ–निशुम्भों पर भी भारी, जिसकी सिंह सवारी है।।

अकबर पर दुर्गावती कभी अँगरेजों पर लक्ष्मीबाई,
जो सदा निरंकुश सत्ता के सम्मुख लोहा लेती आयी;
जिसके जौहर के बलबूते चित्तौड़ बना है तीर्थराज,
जिसके बलिदान त्याग की कीर्त्ति नीर पर तेल सदृश छायी;
जिसके तिनके से चन्द्रहास का तेज क्षीण पड़ जाता है।
जिससे खिसिआये दशकन्धर की हार बनी लाचारी है।।

भारत की नारी से प्रेरित 'वन्दे मातरम्' बना नारा,
जिसके स्वर ने स्वातन्त्र्य–समर में अंग्रेजों को ललकारा;
बिस्मिल–अशफाकुल्ला खाँ ने समवेत स्वरों से गाया जो,
चूमा जब फाँसी का फन्दा, तो यह नारा ही उच्चारा;
वन्दे मातरम् विरोध परिधि में राष्ट्रद्रोह के इसीलिए।
अतएव राष्ट्र का द्रोही जो वह फाँसी का अधिकारी है।।

– डब्ल्यू–२५१, आवास विकास कालोनी, गोण्डा– २७१००२ (उ.प्र.)

बोला था।

सेना ने बलिदानियों की प्रतिस्मृति में राजौरी के मुख्य चौक गुज्जर मण्डी में एक 'युद्ध स्मारक' का निर्माण किया, जिसमें आक्रमणकारियों द्वारा युद्ध के दौरान मारे गये बलिदानियों के नाम उत्कीर्ण हैं। राजौरी के पुराने शहर में तहसील कार्यालय के साथ निर्मित बलिदान भवन यहाँ के नगरवासियों के बलिदान की स्मृति में बनाया गया है। यह भवन नदी किनारे से काफी ऊँचाई पर स्थित है, जहाँ से राजौरी के पूरे क्षेत्र को निहारा जा सकता है। यहाँ पर हुतात्माओं के कुछ चित्र भी टँगे हैं तथा उस समय के नगरवासियों का एक सामूहिक चित्र भी है। कहा जाता है, इस चित्र में दिख रहे अधिकांश लोग आक्रमणकारियों द्वारा मारे गये। आज इस भवन में केवल उनकी स्मृतियाँ ही शेष रह गयी हैं। यहाँ हुतात्मा दीनानाथ केला तथा उनकी पत्नी इन्द्रादेवी केला, बिहारी लाल मोदी, लाला नरसिंह दास केला, बिहारी लाल सर्राफ तथा शान्ता रानी के चित्र टँगे हैं। साथ ही खोपड़ियों का एक चित्र भी टँगा है। इस चित्र के बारे में पूछने पर पता चला कि यह उन महिलाओं व बहनों की खोपड़ियाँ हैं, जिन्होंने अपने सम्मान की रक्षा के लिए कुएँ में छलाँग लगा दी थी।

यही ऐतिहासिक कुआँ, 'बलिदानी कुएँ' के नाम से जाना गया, जिस पर आज इस भवन का निर्माण किया गया है। मातृशक्ति की खोपड़ियों के भयावह चित्र ही स्वयं उस बर्बरता की गाथा को बयान करने में सक्षम हैं। इस कुएँ से जो गहने मिले, उस पूँजी को भी बलिदान भवन के निर्माण में व्यय किया गया। यहाँ दानियों की सूची भी दीवारों पर उत्कीर्ण है। आज यह बलिदानी कुआँ पूरा पाटा गया है, केवल जलियाँवाला बाग की तरह इसकी स्मृतियाँ ही शेष हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि इस बलिदानी कुएँ तथा बलिदान भवन के बारे में अधिक से अधिक जनता को जानकारी दी जाये, ताकि इस स्थल के दर्शन करने तथा उन हुतात्माओं को श्रद्धाञ्जलि देने के लिए लोग आते रहें। यह केवल राजौरी का बलिदान भवन नहीं है, पूरे देश का बलिदान भवन है, जहाँ मातृशक्ति के अपूर्व बलिदान की लोमहर्षक गाथा समाहित है।

□

– शारदा कालोनी, पटोली ब्राह्मणा, मूठी, जम्मू– १८१२०५

इतिहास का एक अनूठा अध्याय

नारी अस्मिता के रक्षार्थ जौहर

– कृष्ण कुमार अष्ठाना

जौहर की गाथाओं से भरे हुए पृष्ठ भारतीय इतिहास की वह अमूल्य निधि हैं, जिसकी सानी विश्व के इतिहास में ढूँढने से भी नहीं मिलती। अपनी अस्मिता को सुरक्षित रखने के लिए भारतीय ललनाओं का अग्नि-प्रवेश जितना लोमहर्षक है, उतना ही अद्भुत भी। फिर हजारों की एक साथ चिताएँ सजाने का दृश्य किसके रोंगटे नहीं खड़े कर देता ?

जौहर का इतिहास कितना पुराना है– इसका उत्तर यद्यपि कठिन है, फिर भी सैकड़ों वर्ष पूर्व से हमें भारतीय इतिहास में जौहर के प्रसंग मिलते हैं। ऐसा भी नहीं है कि जौहर केवल राजस्थान की भूमि पर ही हुए हों। ज्ञात इतिहास में पहला जौहर तो सिन्ध में सन् ७१२ में मोहम्मद बिन कासिम द्वारा सम्राट् दाहिरसेन पर आक्रमण के समय उनकी रानी के द्वारा किया गया मिलता है।

आत्मोत्सर्ग, जो इतिहास प्रसिद्ध बने, वे यदि सामूहिक रूप से पुरुषों के द्वारा हुए, तो उन्हें 'साका' कहा गया और महिलाओं के द्वारा हुए, तो उन्हें 'जौहर' की संज्ञा मिली; परन्तु वे आत्मोसर्ग, जो किसी भय, निन्दा या ग्लानि के कारण अग्नि में कूदकर किये गये, उन्हें इतिहास में कोई स्थान नहीं मिला। मिलने का कोई कारण भी नहीं।

सामान्यतः जौहर की घटनाएँ हमें इतिहास में उस समय से दिखती हैं, जब दुर्दान्त आक्रमणकारियों ने देश पर आक्रमण प्रारम्भ किये। हमारे स्वाभिमानी रणबाँकुरों ने उनका शक्ति भर प्रतिकार किया, अनेक बार खदेड़कर उन्हें अपने राज्य से/देश से बाहर किया; किन्तु कई बार आक्रमणकारियों की कूटनीति, साधन और सामग्री के कारण हमारे शासकों को हार के दुर्दिन भी देखने पड़े और जब हार सुनिश्चित हो गयी, तो राजमहलों में निवास करनेवाली रानियों, राजकुमारियों, सेविकाओं और दासियों ने अपने आपको अग्नि को समर्पित करके अपने से सम्बन्धित पुरुषों को मोह-माया से निवृत्त कर युद्ध में कूद पड़ने को प्रेरित किया और वे यमदूत बनकर शत्रुओं पर टूट पड़े। अस्मिता के लिए यह सामूहिक हौतात्म्य ही 'जौहर' कहलाया। जीते जी किसी म्लेच्छ का स्पर्श भी अपने शरीर को नहीं हो सके, यह भाव था जौहर-व्रत का और इसे पूरा करने के लिए आवश्यकता रहती थी दृढ़-संकल्प की। सतीत्व के रक्षार्थ भारतीय नारियों का सामूहिक अग्नि-स्नान विश्व-इतिहास की अनूठी घटनाएँ हैं।

जौहर का उल्लेख आते ही सामान्य पाठक के सामने 'पद्मिनी का जौहर' या 'चित्तौड़ का जौहर' ही आता है; क्योंकि उसमें अग्निदाह करनेवाली नारियों की संख्या बहुत अधिक थी; परन्तु यह बहुत कम लोग जानते हैं कि भारतीय नारी अपनी सुरक्षा के लिए इस शस्त्र का प्रयोग बहुत पहले से करती रही है। इतिहास के पृष्ठ खँगालने से पता लगता है कि म्लेच्छों के आक्रमण के समय से प्रारम्भ हुआ आत्म-सुरक्षा का यह प्रयोग किसी न किसी प्रकार से भारत की आजादी (१९४७) तक चलता रहा। पाकिस्तान के निर्माण के बाद वहाँ मुसलमानों द्वारा हिन्दू परिवारों की हत्या, आगजनी, व्यभिचार के जो भीषण प्रसंग हुए, उस समय भी वहाँ कुछ हिन्दू महिलाओं ने अपने आपको अग्नि को समर्पित किया था और अनेक ने अपने पति, पिता या भाई से प्रार्थना करके अपने को गोली या तलवार मारकर मौत के घाट उतारने का निवेदन किया था।

इतिहास के पृष्ठ पलटने से ज्ञात होता है कि पहला जौहर सिन्ध की रानी सामीबाई के द्वारा हुआ था। सन् ७१२ में जब मोहम्मद बिन कासिम के आक्रमण के समय सिन्ध के सम्राट् दाहिरसेन का हाथी घायल होकर भाग खड़ा हुआ, तो दाहिरसेन को पकड़कर उसका सिर काटकर हत्या कर दी गयी। बेटा जयसिंह काफी समय तक अरब सेनाओं का मुकाबला करता रहा; किन्तु अन्त में वह भी रावेर के दुर्ग को छोड़कर दूसरे स्थान को चला गया। तब रानी सामीबाई ने स्वयं शस्त्र सम्हाले और उनके नेतृत्व में दुर्गवासियों ने अपनी सामर्थ्य भर संघर्ष किया; किन्तु जब विजय की कोई आशा शेष नहीं बची, तो रानी ने दुर्ग की सारी महिलाओं को एकत्र करके सम्बोधित करते हुए कहा कि 'गोभक्षक चाण्डालों से अपनी इज्जत बचाने का यही तरीका है कि हम काष्ठ, रुई और तेल का संग्रह करके अग्नि प्रज्वलित

करें और उसमें अपने को समर्पित कर दें। जो यहाँ से निकलकर अपनी सुरक्षा कर सकती हैं, वे यहाँ से जाने को स्वतन्त्र हैं।' रानी के इस सम्बोधन के बाद किसी ने भी दुर्ग नहीं छोड़ा और सबने दुर्ग में सामूहिक अग्निदाह किया। यह लगभग जुलाई, ७१२ की घटना है और यही है पहला ज्ञात जौहर।

दूसरा जौहर इसके लगभग ३०० वर्ष बाद राजस्थान के वर्त्तमान हनुमानगढ़ जिले के भटनेर नामक स्थान पर सन् १००५ में हुआ। महमूद गजनवी का मुकाबला करते-करते जब विजयराव नामक ठिकानेदार जीत की आशा छोड़ बैठा, तो वहाँ की क्षत्राणियों ने जौहर किया और फिर दूसरे दिन प्रातः ही विजयराव अपने साथियों के साथ गजनवी की सेना पर अन्तिम युद्ध के लिए टूट पड़े। इसके लगभग २० वर्ष बाद जब गजनवी ने भारत पर १६वाँ आक्रमण किया, तब वर्त्तमान हरियाणा के निकट गोवलकुण्ड और हाँसी के शासकों की हार हुई। गोवलकुण्ड के शासक के मारे जाने के बाद उसकी बेटी सुराबाई बचकर सुरक्षित स्थान पर चली गयी। तब हाँसी की शेष महिलाओं ने 'जौहर' और पुरुषों ने 'साका' कर लिया।

महमूद गजनवी को यह समझ में आ गया था कि वह जिस रास्ते से भारत की ओर बढ़ रहा है– वह आसान नहीं है। अतः उसने राजस्थान के रेगिस्तान वाले क्षेत्र से दिल्ली की ओर बढ़ने की योजना बनायी। यहाँ भी उसे ददेरवा (चुरू) के शासक गोगा चौहान से कड़ा संघर्ष करना पड़ा और उनकी रानियों तथा अन्य क्षत्राणियों ने भी इसी वर्ष सन् १०२५ में जौहर कर अपना शरीर त्याग दिया।

सन् १२३२ में ग्वालियर पर इल्तुतमिश के आक्रमण में मारे गये परिहार राजा कर्णदेव की रानियों के जौहर और सन् १२६६ से १३०० के बीच बड़सर (कच्छ) के जौहर की जानकारी इतिहास में मिलती है; किन्तु इतिहास-प्रसिद्ध जौहर है इस समय का 'चित्तौड़ जौहर', जिसकी महानायिका हैं महारानी पद्मिनी। उन्होंने अपने पति रावल रतनसिंह को अलाउद्दीन खिलजी के चंगुल से छुड़ाकर जहाँ अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया, वहीं ८०० वीर सैनिकों को ८-८ कहारवाली पालकी में खिलजी के डेरे तक ले जाकर और उसके सैनिकों के छक्के छुड़ाकर अपूर्व साहस का प्रदर्शन भी किया।

सिंहल की इस अपूर्व सुन्दरी राजकुमारी को अलाउद्दीन खिलजी कैसे भी पाना चाहता था। जब पद्मिनी चित्तौड़ में राज वधू बनकर आ गयी, तो खिलजी ने चित्तौड़-विजय करके उसको प्राप्त करने का प्रयत्न किया। पहले उसने राजपूतों से युद्ध टालकर पद्मिनी उसे सौंपने की माँग की; किन्तु जब स्वाभिमानी राजपूतों ने इसे स्वीकार नहीं किया, तो उसने पद्मिनी की एक झलक पाकर लौट जाने का प्रस्ताव रख दिया। खून-खराबे से बचने के लिए जब इस प्रस्ताव को मानकर दर्पण में पद्मिनी का प्रतिबिम्ब दिखा

दिया गया, तो वह इस रूप को देखकर बेहोश-सा हो गया। होश आने पर वापस लौटते समय उसने छल से पद्मिनी के पति रावल रतनसिंह को बन्दी बना लिया और उनकी मुक्ति के बदले पद्मिनी की माँग की। पद्मिनी ने भी काँटे से काँटा निकाला। वह पालकी में बैठकर और ८०० योद्धाओं को दूसरी पालकियों में अपनी सहेली और सेविका के रूप में लेकर खिलजी के डेरे तक पहुँची। डेरे में प्रवेश करते ही ये योद्धा और प्रशिक्षित कहार टूट पड़े खिलजी सैनिकों पर। भयंकर मारकाट से क्रोधित अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर अपनी सम्पूर्ण शक्ति से आक्रमण किया। रतनसिंह युद्ध में मारे गये। अन्य सैकड़ों योद्धाओं के भी मारे जाने पर विजय की आशा जाती रही। तब पद्मिनी ने १६ हजार क्षत्राणियों के साथ चिताएँ सजायीं और अपना-अपना सम्पूर्ण शृंगार कर सबने अग्नि-प्रवेश कर लिया। इतना बड़ा हौतात्म्य विश्व के इतिहास में कहीं देखने को नहीं मिलता। २६ अगस्त, १३०३ का यह दिन अमर हो गया इतिहास के पन्नों में। चित्तौड़ में दूसरा जौहर ८ मार्च, १५३५ को रानी कर्मवती देवी ने २३ हजार क्षत्राणियों के साथ, गुजरात के शासक बहादुरशाह के आक्रमण के समय किया और तीसरा जौहर हुआ सन् १५६८ में अकबर के द्वारा महाराणा उदयसिंह पर आक्रमण के समय। इस समय महाराणा और उनके परिवार को तो बचाकर पहाड़ियों में छिपा दिया गया और अन्य प्रमुख सरदारों ने अकबर की सेना से लोहा लिया। विजय की आशा समाप्त हो जाने पर महिलाओं ने जौहर और पुरुषों ने साका किया।

श्री रणजीत सिंह पँवार मध्यकालीन इतिहास के अत्यन्त विद्वान् शिक्षक रहे हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक 'जौहर : हिन्दु अस्मिता के लिए आत्मोत्सर्ग' में ऐसे ही अन्य जौहरों का वर्णन किया है। उन्होंने अनेक स्रोतों से एकत्र अपनी सामग्री में यह निरूपित किया है कि ऐसी कितनी ही जौहर कथाएँ हैं, जिनको इतिहास में स्थान नहीं मिल पाया है– परन्तु आत्मोत्सर्ग के वे ऐसे उदाहरण हैं– जिनको जानकर रोमाञ्च हो उठता है।

चित्तौड़ का जौहर तो एक जगजाहिर घटना है; किन्तु कितनों को मालूम है कि राजस्थान में भाटियों की राजधानी रहे भटनेर (जिला चुरू) में तीन-तीन बार जौहर हुए। जैसलमेर के पहाड़ी क्षेत्रों ने दो-दो बार जौहर देखे। म.प्र. का ग्वालियर, चन्देरी, माण्डू, रायसेन और हाट पीपल्या में भी जौहर की ज्वालाएँ चमकीं। गुजरात के कुवा, चापानेर और पावागढ़ भी इन ज्वालाओं से अछूते नहीं रहे।

प्रणम्य है हमारी यह भरतभूमि, जहाँ की बेटियों ने अपने शील और सतीत्व की रक्षा के लिए अनेक बार ऐसे जौहर-व्रत करके अग्नि-स्नान किये। □

– १५, संवाद नगर, इन्दौर– ४५२००१ (म.प्र.)
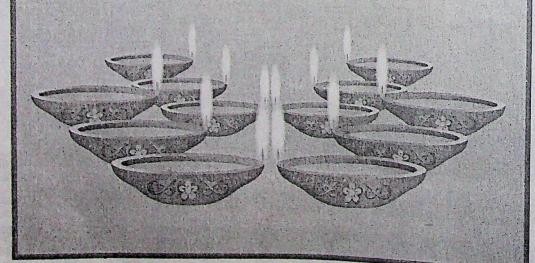
सन्त कवयित्री लल्लेश्वरी (ललद्यद)

– प्रो. चमनलाल सप्रू

भारतीय इतिहास का मध्य युग कई कारणों से महत्त्वपूर्ण है। भारत में इस्लाम के आगमन के पश्चात् चिन्तन में समन्वय की प्रक्रिया ने यहाँ के मनीषियों, सन्तों और कवियों को प्रेरित किया।

वास्तव में कश्मीर में इस्लाम के आगमन से पूर्व नवीं सदी में स्थानीय विचारकों और दार्शनिकों ने एक नयी धार्मिक दर्शन की विचारधारा को जन्म दिया और वह कश्मीर का अद्वैत शैव-दर्शन है। नौवीं सदी से लेकर बारहवीं सदी तक वसुगुप्त से लेकर अभिनवगुप्त तक सभी शैवांचार्यो ने इस दर्शन का प्रतिपादन और प्रचार किया। लल्लेश्वरी के समय तक इस नवीन दर्शन-सम्प्रदाय ने कश्मीर में बहुत सफलता और लोकप्रियता प्राप्त की। स्मरण रहे कि कश्मीर शैव-दर्शन दक्षिण के लकुलीश और वीर शैव मत से सर्वथा भिन्न है। अमीर अली हमदानी (जिसे कश्मीरी शाह हमदान नाम से सम्बोधित करते हैं) और अन्य मुस्लिम सूफी इन दिनों कश्मीर में इस्लाम का प्रचार करने मध्य-एशिया से आये थे। बुलबुल शाह ने छल से रिङ्चेन को इस्लाम ग्रहण कराकर बाद में शाहमीर के षड्यन्त्र द्वारा कश्मीर पर मुस्लिम सत्ता स्थापित की थी।

जन्म और विवाह

लल्लेश्वरी का जन्म चौदहवीं शताब्दी के मध्य में हुआ। केसर उपजाने के लिए प्रसिद्ध क्षेत्र पाम्पोर (पद्मपुर) के पास द्रंगबल नामक मुहल्ले में एक सुसंस्कृत ब्राह्मण परिवार में उनका जन्म हुआ। १२ वर्ष की अल्पायु में उनका विवाह हुआ। लल्लेश्वरी का वैवाहिक जीवन मीरा की भाँति कष्ट और कटुता की कहानी है। सौतेली सास के दुर्व्यवहार की अनेक कहानियाँ कश्मीर के जन-जन की जबान पर मौजूद हैं। सास की यातनाएँ सहनेवाली कश्मीरी बहुएँ इन कथाओं का खूब प्रयोग करती हैं। सास दिन भर लल्ला से घर का सारा काम करवाती और भरपेट भोजन नहीं देती थी। भोजन परोसने के समय वह लल्लेश्वरी की थाली में सिल-बटा रखती और ऊपर से थोड़े से चावल फैला देती। देखनेवाला समझता कि बहू को भरपूर थाली खाने को मिलती है। वास्तव में उसे अधभूखा ही रहना पड़ता था। कई वर्षों तक यही क्रम चलता रहा; किन्तु लल्ला ने कोई शिकायत न की। नाममात्र का भोजन कर लेने के बाद वह चुपचाप वही पत्थर धो-धाकर सास को लौटा देती।

लेकिन एक दिन उसके ससुराल में एक विशेष भोज का आयोजन हुआ। लल्लेश्वरी घड़ा लिये नदी पर पानी लेने गयी। किसी पड़ोसिन ने कहा– लल्ला ! तुम्हारे घर में आज खूब व्यञ्जन बन रहे हैं। इसे सुनकर लल्ला ने कहा–

हांड मॉर्यतन या कठ,
ललि नील वठ, चलि न जाँह।।

अर्थात् बड़े भेड़ या छोटे बकरे का मांस पकाया जाये। लल्ला के भाग्य से थाली का पत्थर नहीं जायेगा।

अन्तःसाक्ष्य के आधार पर मालूम होता है लल्ला शाकाहारी थी। उनके गाँव के पास ही खिव गाँव में पहाड़ी पर ज्वालामाई का सुविख्यात मन्दिर है। यहाँ श्रद्धालु बकरा लेकर बलि चढ़ाने जाते हैं। लल्ला ने रस्सी से बाँधकर एक भेड़ को वहाँ ले जाते हुए एक श्रद्धालु को देखकर कहा–

लज़ कासिय, शीत निवारिय
तृनु ज़ल करि आहार।
पूज़ कस करख हट भटा।
पज़्या शिलायि ज़ीव आहार।।

तुम्हारी लज्जा को छिपायेगा ऊन देकर वस्त्र बनाने हेतु। फिर ठण्ड से बचायेगा। बेचारा तिनके और जल से पेट भरता है। तू हठी भट्ट ! पूजा किसकी करेगा (भेड़ का बलिदान देकर) क्या पत्थर (की मूर्त्ति) का एक प्राणी आहार बन सकता है ?

सास निरन्तर बहू लल्ला पर अत्याचार करती रही। उसके पति को भी अनाप-शनाप बातें कहकर उसके विरुद्ध कर दिया।

पति उसकी दैनिक जीवन-शैली पर कड़ी नजर रखने लगा। ब्राह्म-मुहूर्त्त में घर से निकल कर नदी किनारे नहा-धोकर पानी का घड़ा भरकर लाने जाती। नदी के पार तट पर एक सुप्रसिद्ध भैरव मन्दिर है। वहाँ जाकर शिवजी पर जल चढ़ाती और ध्यान-जप करके लौटती। नदी में विना पैर भिगोये वह आर-पार हो जाती थी। एक दिन उसका पति विना बताये उसके पीछे-पीछे चला गया। उसकी अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति को देखकर वह उसे पागल समझने लगा।

लौटती बार उसने एक लाठी से उसके घड़े पर प्रहार किया। घड़ा फूट गया; परन्तु फूटे घड़े से पानी की बूँद तक न गिरी। लल्ला ने उस पानी से घर के सभी बर्त्तन भर दिये। तब भी वह समाप्त नहीं हुआ। अन्त में शेष जल पास ही एक खुले मैदान में फेंक दिया और वहाँ एक सुन्दर सरोवर बन गया। इस सरोवर का नाम ललत्राग (लल्ल तडाग) है और आज भी विद्यमान है।

लल्ला बड़ा ही सूक्ष्म तारवाला सूत और पशमीना कातती थी। फिर भी सास उस पर खुश न थी और उसका काता हुआ सारा सूत-पशमीना नवनिर्मित सरोवर में फेंक देती। उसमें कालान्तर में कमल उगने लगे।

वह अब घर के अपमानजनक व्यवहार से तंग आकर साधु-सन्तों के पास जाकर अपने आध्यात्मिक अनुभवों का विस्तार पाने लगी। किम्वदन्ती है कि वह नग्न-अर्द्धनग्न अवस्था में खुले बाल छोड़कर घूमती थी।

तभी तो कहा–

हासा बोल पॅर्यनम सासा
म्ये मनि वासा खेद नो हेये।
योदवय शंकर बखत्य आसा
मुकतिरस स्वासा मल क्याह प्येये।।

अर्थात्– कोई मेरी कितनी ही खिल्ली क्यों न उड़ाये, मुझे हजार गालियाँ ही क्यों न सुनाये; पर उससे मेरे मन में तनिक भी खेद नहीं होगा। मैं शंकर की भक्त हूँ। दर्पण पर पड़ी राख से भला दर्पण मैला होता है क्या ?

आध्यात्मिक डगर पर

यदि हिन्दी साहित्य में लल्लेश्वरी की किसी से तुलना की जा सकती है, तो वह हैं कबीर; किन्तु मीरा के साथ उनकी तुलना इस सन्दर्भ में की जा सकती है कि दोनों को ससुराल से मिलीं मानसिक एवं व्यावहारिक यातनाएँ; किन्तु प्रभु प्रेम में मग्न दोनों कवयित्रियों ने 'सन्तन ढिग बैठि-बैठि लोक लाज खोई'।

कबीर के साथ लल्लेश्वरी की समानता का मूल कारण है दोनों का ज्ञान-मार्ग के पथ का अनुसरण। कबीर की भाँति तथाकथित पण्डितों की मूर्खता और अज्ञान पर इन्होंने खूब चोट की। अपने एक 'वाख' (पद) में कहती हैं– 'यह पण्डित हैं कि पानी बिलोते हैं/भला इनसे कोई कहे, पानी से मक्खन निकलेगा क्या ? इन पण्डितों का पढ़ना बिल्कुल निरर्थक है। बस, पढ़-पढ़कर निरे अहंकारी बनते जा रहे हैं। गीता पढ़ना अच्छा बहाना है इनके लिए/पढ़-पढ़कर भी ये हैं कोरे के कोरे/कबीर की निम्न साखी से इनकी समानता देखिए–

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय।।

कबीर की 'झीनी-झीनी चदरिया' के भाव से समानता देखिए लल्लेश्वरी के इस 'वाख' में–
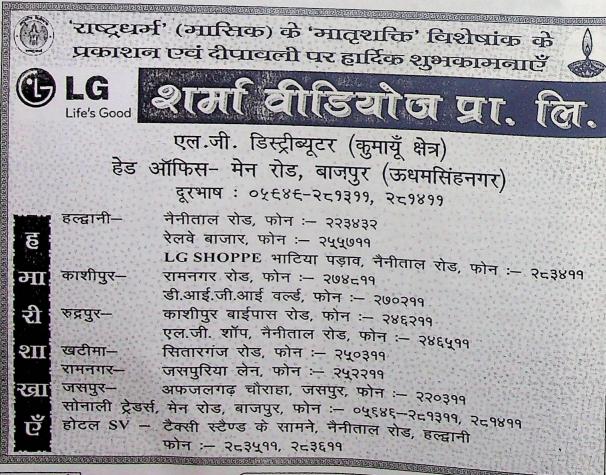
मैं आई कि कपास के सफेद फूल-सी खिली
पर धुनिए और जुलाहे के प्रहार ने
मुझे बस धुनकर ही रख डाला।
तार-तार, रेशा-रेशा कर डाला गया मुझे।
लटका दिया गया जुलाहे के करघे पर।
लल्लेश्वरी के परमात्मा का रूप इस प्रकार है—

गगन चॅय, भू तल चॅय,
चॅय द्यन, पवन त राथ।
अर्ध चन्दुन, पोश, पोन्य चॅय
चॅय सकल तय, लॉग्यज़िय क्याह।।

(देव फिर पूजा कैसी आज ?
तू ही गगन-पवन भूतल, तू ही दिन तू रात।
तू ही अर्ध्य-पुष्प, जल, चन्दन, तू ही सब कुछ तात
व्यर्थ ये पूजा के सब साज,
देव फिर पूजा कैसी आज।)
(अनु. शशि शेखर तोशखानी)

निःसन्देह कबीर और लल्लेश्वरी एक ही युग के दो स्वर हैं। एक गंगा का स्वर और दूसरी वितस्ता की वाणी। दोनों भारतीय आत्मा की अजर-अमर एकता की वाणी के अमर गायक-गायिका हैं।

□

— १३–बी, ई–३, शताब्दी विहार, सेक्टर– ५२,
नोएडा– २०१३०१ (उ.प्र.)

माँ ! तुम केवल श्रद्धा हो

— शैवाल सत्यार्थी

तुम दुर्गा हो, भवानी हो तुम;
ब्रिटिश सल्तनत को धूल चटाती
झाँसी की रानी हो तुम;
सनातन कल्याणी हो तुम,
माता जीजाबाई हो तुम;
हिन्दूपद-पातशाही के स्वप्न-द्रष्टा
वीर शिवा की जन्मदात्री हो तुम,
मुगलिया-इरादों की काल-रात्रि हो तुम;
तुम किरण देवी हो,
अधम अकबर की छाती पर चरण धरे
रणचण्डी हो, महाकाल हो तुम,
हल्दीघाटी के महासमर में
प्रताप का भाला, ढाल-तलवार हो तुम;
तुम अहल्या, दुर्गावती हो तुम,
तुम सत्य सनातन, महासती हो तुम;
भारतमाता हो तुम, जगन्माता हो तुम;
तुम केवल श्रद्धा हो—
माँ ! तुम केवल श्रद्धा हो !!

— शारदा प्रेस, लोहिया बाजार, ग्वालियर– ४७४००६ (म.प्र.)

श्रीमती लक्ष्मीबाई केलकर

राष्ट्रसेविका समिति की संस्थापिका

राष्ट्रसेविका समिति की आद्य संस्थापिका श्रीमती लक्ष्मीबाई केलकर, जिन्हें 'वन्दनीया मौसी जी' कहा जाता है, मातृशक्ति के चमत्कार का मूर्त्तिमान् प्रतीक हैं। आषाढ़ शुक्ल दशमी (५ जुलाई, १९०५) को नागपुर के दाते परिवार में जन्म लेनेवाली बालिका कमल (मौसी जी) बाल्यकाल से ही भारतीय संस्कृति एवं दर्शन से प्रेरित थीं। समाज को खोखला करनेवाली बुराइयों से संघर्ष करने का संकल्प उनके जीवन में प्रारम्भ से ही दिखायी देता है।

लौकिक वर्चस्व से भले ही सम्पन्न न रहा हो; परन्तु ब्रह्म वर्चस्व से सम्पन्न दाते परिवार में पली-बढ़ी मौसी जी को बचपन में एक बार परिस्थितिवश एक मिशनरी स्कूल में प्रवेश लेना पड़ा था। उनके बचपन का नाम कमल था। बालिका कमल के मन पर भारतीय संस्कृति के संस्कारों का प्रभाव पहले से ही था, जिनका विरोध मिशनरी विदेशी संस्कृति को विचारों से होना स्वाभाविक था। कुछ ही काल बाद वह विरोध अचानक फूट पड़ा।

स्कूल में प्रार्थना चल रही थी। प्रार्थना के समय नियम था कि जब तक प्रार्थना चलेगी, सभी प्रार्थना में सम्मिलित लोग आँखें बन्द रखेंगे। बालिका कमल के मन का अन्तर्द्वन्द्व जाग उठा और अचानक उसकी आँखें खुल गयीं। तुरन्त एक अध्यापिका ने डाँटा। इस पर कमल ने निर्भीकता से प्रतिप्रश्न किया कि आँखें आप खोले थीं अन्यथा आपको कैसे पता लगा कि मेरी आँखें खुली हैं।

मौसी जी ने इस घटना के दूसरे दिन से ही वह स्कूल छोड़ दिया और 'हिन्दु मुलींची शाला' नामक स्कूल में प्रवेश ले लिया। कमल ने अपनी ताई जी से शुश्रूषा, पिताजी से सामाजिक कार्य तथा माता जी से निर्भयतापूर्वक राष्ट्रकार्य करने के गुण बाल्यकाल में ही विरासत में प्राप्त कर लिये थे। उनकी माता जी घर में महिलाओं को एकत्र कर 'केसरी' समाचारपत्र का वाचन करती थीं तथा तिलक जी की प्रतिमा स्थापित कर उनके विचारों का प्रसार करती थीं। यह साहसिक राष्ट्र कार्य वे उस समय करती थीं, जब तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने घर में तिलक का चित्र रखना भी अपराध घोषित कर दिया था। ऐसे तपोधनी परिवार के संस्कारों से ओतप्रोत मौसी जी को गार्हस्थ्य सुख दीर्घ काल तक नहीं मिल सका। राजयक्ष्मा से उनके पति पुरुषोत्तम राव केलकर का निधन हो गया और दो बेटियों तथा छह बेटों के निर्वाह का दायित्व भी पति–निधन के वज्राघात के साथ उन पर आ पड़ा; परन्तु परीक्षा की इन कठिन घड़ियों में वे कुन्दन बनकर निखरीं। उनके राष्ट्रकार्य का प्रवाह अनवरत चलता रहा।

मौसी जी को गान्धी जी के इस कथन से बड़ी प्रेरणा मिली थी कि सीता के जीवन से ही राम की निर्मिति होती है। अतः उन्होंने महिलाओं के समक्ष सीता का आदर्श रखा। स्त्री को अत्याचारों के विरुद्ध डटकर खड़ा होना चाहिए; इसकी आवश्यकता उनको अनुभव हो रही थी। ईश्वरीय प्रेरणा से उनके पुत्र मनोहर और दिनकर ने उनका परिचय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से करा दिया। उन्होंने संघ के समान ही महिलाओं का भी एक विश्वव्यापी संगठन संस्थापित करने का निश्चय किया। इस उद्देश्य को लेकर उन्होंने डॉ. हेडगेवार जी से भेंट की।

मौसी जी का दृढ़निश्चय देखकर डाक्टर जी ने उन्हें इस कार्य में पूरा सहयोग देने का आश्वासन दिया। इसके फलस्वरूप राष्ट्रसेविका समिति का जन्म हुआ, जिसके अन्तर्गत नित्य महिलाओं का एकत्रीकरण एवं उनका सैनिक प्रशिक्षण होने लगा। बाल्यकाल से ही प्राप्त राष्ट्रीय संस्कार, बुद्धिमत्ता और तेजस्विता के साथ-साथ राष्ट्रकार्य के प्रति आत्यन्तिक आस्था के कारण ही उन्होंने यह अद्वितीय कार्य कर दिखाया।

यह शान्त, पवित्र तेजस्वी जीवन २७ नवम्बर, १९७८ (कार्तिक कृष्ण द्वादशी) को पञ्चतत्त्वों में विलीन हो गया। उनकी कीर्त्ति अमर है। □

– प्रस्तुति : डॉ. सर्वेशचन्द्र शर्मा

पूजनीया लक्ष्मीबाई केलकर
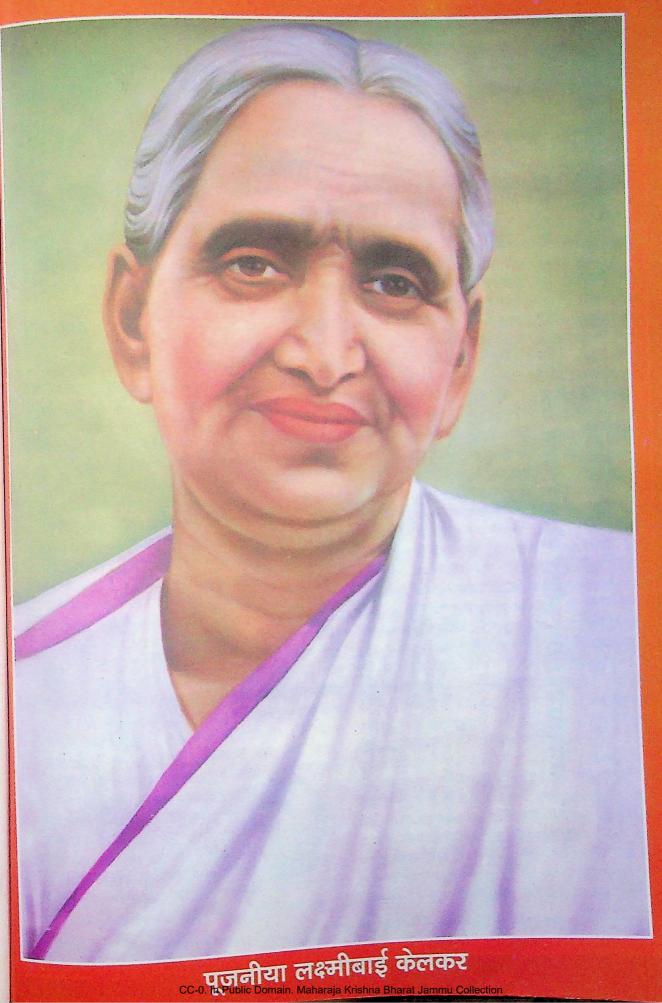
देश में सुशासन की नयी परिभाषा

मध्यप्रदेश का लोक सेवा प्रदान की गारंटी का कानून

|| प्रजा सुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्
नात्मप्रियं हित राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम् ||

(अपने नागरिकों की खुशी में ही उसकी खुशी है, लोगों के कल्याण में ही उसका कल्याण। जो कुछ भी उसे संतुष्ट करता है उसे वह अच्छा नहीं मानेगा लेकिन जो कुछ उसके लोगों को संतुष्ट करे, उसे ही वह श्रेष्ठ मानेगा।)

(कौटिल्य रचित अर्थशास्त्र में कल्याणकारी राज्य की धारणा)

शिवराज सिंह चौहान
मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश

✓ राज्य की विधानसभा ने इसी मानसूत्र सत्र में सर्वसम्मति से पारित किया मध्यप्रदेश लोक सेवाओं के प्रदान की गारंटी विधेयक 2010. जनाधिकार को मान्यता देते हुये सुराज के पथ पर देश के किसी राज्य में पहली बार उठा यह अभिनव कदम।

✓ लोक प्रशासन में प्रारंभिक रूप से चिंहित 25 सेवाओं जैसे आय, जाति, स्थायी निवासी के प्रमाण पत्र, खसरे-खतौनी की नकल, राशन कार्ड, बिजली और नल के नए कनेक्शन, सामाजिक सुरक्षा पेंशन और इसी प्रकार की अन्य सेवाओं की समय सीमा की जवाबदेही।

✓ सेवा प्रदान करने में चूक या देरी करने वाले कर्मचारियों या अधिकारियों के खिलाफ अपील करने का प्रावधान। अपील मान्य होने पर 5 हजार रुपये तक का जुर्माना। जुर्माने की राशि संबंधित नागरिक को।

✓ सुराज की धारणा को नई ऊंचाई देने वाले इस कानून को लागू करने के लिये नये लोक सेवा प्रबंधन विभाग का गठन।

जनाधिकार में जनता के साथ, **मध्यप्रदेश सरकार**

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

अकल्पन : म.प्र. माध्यम/2010

भद्रकाली महारानी
ताराबाई

– दीपक हनुमंत जेवणे

दिल्ली झाली दीनवाणी। दिल्लीशाचे गेले पाणी।
ताराबाई रामराणी। भद्रकाली कोपली।।
रामराणी भद्रकाली। रणरंगी क्रुद्ध झाली।।
प्रलयाची वेळ हो आली। मुगल हो सांभाळा।।

इन शब्दों में कवि परमानन्दपुत्र देवदत्त ने महारानी ताराबाई का यथार्थ वर्णन किया है। कवि कहता है कि– 'रामरानी ताराबाई ने क्रोधित होकर भद्रकाली का रूप धारण किया है। उसने युद्ध छेड़ दिया है। दिल्ली और दिल्लीश्वर की दुर्दशा हो गयी। मुगलो ! हो सके, तो अपने आप को सँभालो।'

महारानी ताराबाई यह छत्रपति शिवाजी महाराज की बहूरानी थी। छत्रपति शिवाजी महाराज के पुत्र राजाराम की वह पत्नी थी और शिवाजी महाराज के सेनापति हम्मीरराव मोहिते की सुपुत्री थी। शिवपूर्व काल में ताराबाई के पूर्वज आदिलशाह के दरबार के पराक्रमी पुरुष थे। शिव-काल में स्वराज्य का सेनानी पद इस घराने के पुरुष को मिला और शिव-काल के पश्चात् इस मोहिते घराने में जन्मी ताराबाई हिन्दवी स्वराज्य की महारानी बनी। हम्मीरराव ने निःस्वार्थ भाव से स्वराज्य की सेवा की। मुगलों से लड़ते-लड़ते रणभूमि पर ही उन्होंने आत्मबलिदान किया। महारानी ताराबाई ऐसे स्वतन्त्रता सेनानी पिता की विरासत आगे चलानेवाली एक अनुपम अग्निशिखा थीं। उनका जन्म ई. १६७५ में हुआ था। सन् १६८४-८५ के दौरान ताराबाई का राजाराम महाराज के साथ विवाह हो गया। ससुराल में उनका नाम सीताबाई रखा गया था; लेकिन वह दिखने में नक्षत्र के समान तेजस्विनी थीं और पराक्रम के कारण एक तारा बनकर ही चमकीं। कारण कुछ भी हो; लेकिन ससुराल के दिये सीताबाई इस नाम के बजाय ताराबाई के नाम से ही वह इतिहास में जानी जाती हैं।

जिस काल में ताराबाई ने राज्यशकट अपने हाथ में लिया था, वह अभूतपूर्व काल था। प्रबल मुगलों के विरोध में जाकर शिवाजी महाराज ने हिन्दुपदपातशाही अर्थात् हिन्दवी स्वराज्य की स्थापना की थी। उनके पश्चात् सम्भाजी का शासन–काल अल्प रहा और उन्होंने देश एवं धर्म के लिए बलिदान किया। औरंगजेब ने ११ मार्च, १६८९ को उनकी बर्बरतापूर्वक हत्या की। इसके पश्चात् मुगल-मराठा युद्ध को लोकयुद्ध का स्वरूप प्राप्त हो गया था। हिन्दवी स्वराज्य को मिट्टी में मिलाने के लिए खुद औरंगजेब दक्षिण में आकर ठहरा था। सम्भाजी की हत्या करने के बाद हिन्दवी स्वराज्य का स्वामी बनने की औरंगजेब की आकांक्षा मराठों के कड़े प्रतिकार के कारण साकार न हो पायी। महारानी ताराबाई ने जिस काल में अपनी तलवार चमकायी, उसकी पृष्ठभूमि देखना अत्यावश्यक है।

छत्रपति सम्भाजी के पश्चात् राजाराम स्वराज्य के छत्रपति बने थे। तब उनकी आयु केवल १९ वर्ष थी। तब स्वराज्य की राजधानी थी रायगढ़। उस पर आक्रमण करने हेतु औरंगजेब ने मुगल सरदार जुल्फिकार खाँ को रवाना किया था। तब छत्रपति राजाराम ने अपने सहयोगियों के साथ रायगढ़ छोड़ दिया। छत्रपति सम्भाजी की पत्नी रानी येसूबाई और बाल शाहू को मुगलों ने कैदी बना लिया।

छत्रपति राजाराम ने कर्नाटक में जिंजी नामक किले का आश्रय लिया। जब राजाराम का जिंजी प्रयाण हो गया था, तब रानी ताराबाई का विशालगढ़ और अन्य किले पर निवास था। उसके दौरान रामचन्द्र पन्त अमात्य तथा शंकराजी नारायण के निकट परिचय के कारण ताराबाई को नागरी प्रशासन और लश्करी दाँवपेंच की जानकारी प्राप्त हुई; मगर जुल्फिकार खाँ पीछे ही पड़ गया था। २ जनवरी, १६९८ को खाँ ने जिंजी का किला जीत लिया; मगर राजाराम वहाँ से पहले से ही निकल गये थे। छत्रपति राजाराम बाद में महाराष्ट्र में पहुँच गये। १६९८ से १७०० ई. तक उन्होंने मुगलों के विरोध में युद्ध का नेतृत्व किया; लेकिन प्रकृति अस्वास्थ्य के कारण २ मार्च, १७०० को सिंहगढ़ किले पर उनकी मृत्यु हो गयी और उनके पश्चात् इस स्वतन्त्रता संग्राम के सूत्र उनकी पत्नी रानी ताराबाई के हाथ में आ गये। छत्रपति राजाराम के महाराष्ट्र से बाहर होने के कारण ताराबाई पहले से ही राजमण्डल की प्रमुख थीं।

उस समय परिस्थिति अत्यन्त विकट थी। मुगलों के हाथ में बहुत से किले चले गये थे और खजाना भी खाली था। १७०० से १७०७ ई. तक इस युद्ध का नेतृत्व रानी ताराबाई ने किया। पति का निधन हो चुका है और कुछ भी पूर्वानुभव नहीं है, ऐसी अवस्था में औरंगजेब जैसे बड़े शत्रु के साथ उन्होंने युद्ध किया, यह उनकी कर्तृत्व की विशेषता है। छत्रपति राजाराम की मृत्यु के बाद स्वराज्य

पर अपना कब्जा हो जायेगा, यह औरंगजेब की अपेक्षा धूमिल हो गयी। सात साल तक उसको रानी ताराबाई के साथ युद्ध लड़ते रहना पड़ा और ताराबाई ने बड़ी चतुराई से इस सेनानी को नाकों चने चबवाये। ताराबाई ने मुगलों के विरोध में सभी ओर से मोर्चे खोले और खानदेश, वन्हाड, माळवा आदि प्रान्तों में सेना भिजवायी। औरंगजेब को घोर निराशा हुई। ताराबाई हर एक किले पर खुद जाती थीं। वहाँ लोगों से मिलकर बातचीत करती थीं और अपने सरदारों को उचित सलाह देती थीं। दक्षिण में मुगल सेना का ध्यान बँट जाये, इस हेतु ताराबाई ने उत्तर एवं पश्चिम की ओर सेना भेज दी।

परली, पन्हाला, विशालगढ़, वाकिनखेड़ा आदि स्थानों पर संघर्ष करके किले अपने कब्जे में करना मुगल फौज के लिए आसान नहीं था। उनकी जीत तो हो रही थी; लेकिन पूरी फौज साथ में परेशान भी हो रही थी।

मुगल बादशाह की उम्र तो हो ही गयी थी। उसे कब्र में पहुँचने तक इन्तजार करवाने की ताराबाई ने युद्धनीति अपनायी थी। बादशाह को जीत का मजा चखने का मौका न मिल पाये, ऐसा ताराबाई ने मन में ठान लिया था। ताराबाई की युद्धनीति ऐसी थी कि अगर बादशाह ने अक्तूबर-नवम्बर मास में किले का घेरा डाला होगा, तो फिर वह किला पूरी सामर्थ्य लगाकर सात-सात महीने तक लड़ाते रहना और जब बरसात का मौसम आ गया, तब मुगलों से बहुत-सा पैसा लेकर वह किला उनके हवाले कर देना। विजयी होकर जब बादशाह की फौज वापस लौटने लगती थी और बरसात शुरू हो जाती थी, तब तूफानी बारिश के कारण और बाढ़ आने के कारण बादशाह की सेना बेहाल हो जाती थी और सेना की बड़ी हानि भी होती थी।

इस बूढ़े बादशाह के अब दिन ही कितने रह गये हैं; अगर साल भर में एक ही किला वह जीत पायेगा, तो यह लड़ाई जीतने के पहले ही उसकी आयु समाप्त हो जायेगी, ऐसी ताराबाई की सोच थी। ताराबाई की युद्धनीति मुगल बादशाह को विजय की ओर नहीं; बल्कि धीरे-धीरे उसकी कब्र की ओर ही धकेल रही थी। जैसा ताराबाई ने सोचा था, वैसा ही हुआ। वाकिनखेड़ा की लड़ाई के बाद ई. १७०७ में बादशाह बीमार पड़ गया।

वाकिनखेड़ा यह बेरड जनजाति का प्रमुख स्थान था। वह मुगलों के खिलाफ लड़ रहे थे। उनके प्रमुख पिड नायक ने ताराबाई से हाथ मिलाया। बेरड लोगों की सहायता करने से बादशाह के साथ उनकी लड़ाई लम्बी खींची जा सकती है, यह ताराबाई ने जान लिया। इसलिए धनाजी जाधव और हिन्दूराव घोरपड़े के साथ मराठी लश्कर ताराबाई ने वाकिनखेड़ा रवाना किया। ताराबाई का एक अन्य हेतु भी था। जिन मराठी परिवारों ने संघर्ष के कालखण्ड में

वाकिनखेड़ा में आश्रय लिया था, उनकी वह सहीसलामत महाराष्ट्र में वापसी चाहती थी। ताराबाई ने सलाह दी थी, लड़ते रहो और जब शत्रु का पलड़ा भारी हो जाये, तब सर्वनाश टालने के लिए सुलह करो। जब मुगलों का बल बढ़ गया, तब पिड नायक ने अपने लोगों को लेकर ताराबाई की सहायता से वाकिनखेड़ा किले से गुप्तरूप से पलायन किया। इस तरह बादशाह ने किला हासिल तो कर लिया; लेकिन मराठा और बेरड से संघर्ष में वह जीत न पाया। यह दोनों मिलकर मुगल फौज को परेशान करते रहे।

मुगलों से मराठों का संघर्ष जारी ही था। अब तो नर्मदा को पार करके मराठी सेना उत्तर में घुस गयी थी। यह फौज बड़े क्षेत्र में फैली हुई थी और इसका सामना करना आसान नहीं था।

बादशाह की फौज जब एक स्थान से दूसरे स्थान पर कूच करना शुरू का देती, तब अचानक मराठा सेना उन् पर धावा बोल देती थी। कूच में अनुशासनहीनता के कारण तब जो अफरातफरी का माहौल बन जाता था, उसका पूरा लाभ मराठा सेना उठाती थी। बादशाह की फौज परेशान होकर बादशाह के खिलाफ बोलने लगी। तब बादशाह ने बकवास करनेवालों की जुबान खींचने का फरमान निकाला। इससे कूच के समय सेना चुपचाप रहने लगी और उन्होंने कूच के बाजे बजाना भी बन्द कर दिया। बादशाह की फौज से कूच की रौनक निकल गयी।

जब बादशाह वाकिनखेड़ा के मुहिम पर निकल गया, तब से ही मुगलों ने जो किले एवं गढ़ छीन लिए थे, वह वापस स्वराज्य में लाने का बड़ा कार्य ताराबाई के नेतृत्व में होने लगा। इधर बादशाह की पीठ थोड़ी-सी फिरती, उधर मराठे अपने किले मुगलों से तुरन्त छीन लेते, उसकी मृत्यु के बाद उसका जीता हुआ मुल्क कितने समय तक मुगलों के कब्जे में रहेगा, यह भविष्य ही ताराबाई ने दिखा दिया था। ताराबाई ने कोपल, लोहगढ़ और राजमाची काबिज कर लीं। इतना ही नहीं, उन्होंने जब बादशाह अहमदनगर आया, तब उसकी छावनी पर हमला करने के लिए मराठा सेना रवाना की थी। मराठा सेना से मुकाबला करने के लिए खाने आलम ने जब बादशाह से सेना की टुकड़ियाँ मँगायीं, तब बादशाह ने मतलबखान के साथ हमीदुद्दीन को भिजवाया और मराठों से अपनी फौज की रक्षा करने के लिए ताबीज भिजवाये। महारानी ताराबाई के लश्कर से अपने लश्कर की रक्षा करने के लिए अखिल हिन्दुस्थान का पातशाह कहलानेवाला औरंगजेब जब मन्तर मार कर ताबीज भेजता है, तो इस दुर्भाग्य को क्या कहना चाहिए ! मराठे अपनी योजना की तहत ही उस समय पीछे हट गये; क्योंकि बादशाह को परेशान करना ही उस समय उनका हेतु था।

मनूची अपने इतिहास वर्णन में कहता है, "मराठों से युद्ध छेड़ने में अपनी गलती हुई, ऐसा मानकर औरंगजेब पछता रहा है... दक्षिण में जो मुल्क उसने जीत लिया है, उस पर कब्जा रखने के लिए उसे दक्षिण में ही रुकना आवश्यक बन गया है। अब वह अहमदनगर में छावनी बनाकर ठहरा है... अब मराठी फौज ने बादशाह के साम्राज्य पर सभी ओर से धावा बोल दिया है और वहाँ लूटपाट कर रहे हैं। मराठों का साहस और सामर्थ्य इतना बढ़ गया है कि उनका लश्कर अब दिल्ली तक आ धमका है।"

बादशाह की बीमारी के कारण उसकी मृत्यु की अफवाहें भी फैलने लगीं और आखिर **२० फरवरी, १७०७ को बादशाह औरंगजेब ने अन्तिम साँस ली। उसकी मृत्यु हो जाने से जो स्वतन्त्रता-संग्राम मराठों द्वारा ई. १६८९ में आरम्भ हुआ था, उस की भी समाप्ति हो गयी। हिन्दवी स्वराज्य मिटाने के लिए औरंगजेब ने सत्ताईस साल तक लड़ाई की थी; मगर उसका सपना बस सपना ही रहा और यहीं दक्षिण में उसकी कब्र बन गयी। बादशाह की मृत्यु के बाद दो-तीन महीनों में ही ताराबाई ने मुगल किलेदारों से सिंहगढ़, पुरन्दर, पन्हालगढ़, विशालगढ़, सातारा और परली ये महत्त्वपूर्ण किले जीत लिये।**

औरंगजेब से यशस्वी संघर्ष करना इतना ही ताराबाई का योगदान नहीं है। वे राजनीति में धुरन्धर थी। सागर किनारों पर अपने मित्र कौन हैं और शत्रु कौन हैं, यह वह भली भाँति जानती थीं। कान्होजी आंग्रे को ताराबाई ने नौ-दल का अधिपति बनाये रखा था और उसको पूरी तरह से कृति-स्वतन्त्रता दे रखी थी। मुगल, सिद्दी, पोर्तुगाली और अंग्रेज आदि पर दहशत जमाने का और सागरी मुल्क की रक्षा करने का दायित्व ताराबाई ने कान्होजी को दिया था। अंग्रेजों की कूटनीति वह जानती थीं। अंग्रेजों ने कान्होजी के खिलाफ अनेक खत ताराबाई को भेजे थे, जिनका उनको कोई भी जवाब नहीं मिल पाया।

ताराबाई को बाहरी शत्रुओं के साथ-साथ अन्तर्गत शत्रुओं से भी लड़ना पड़ा। खटाव के कुलकर्णी खण्डो लिंगो और मराठी लश्कर के अधिकारी जावजी बलकवडे ने विद्रोह किया था। तब अमात्य मण्डल भी फूट की कगार पर जा पहुँचा था; लेकिन धैर्य और संयम से काम लेकर ताराबाई ने अमात्य मण्डल बनाये रखा और फूट टाल दी। मराठा साम्राज्य की रक्षा करना और प्रशासन का कामकाज चलाना यह महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य ताराबाई ने मुस्तैदी से निभाये थे। उनके कर्तृत्व के बारे में खफी खाँ, साकी मुस्तैद खाँ एवं भीमसेन सक्सेना ये मुगलों के इतिहासकार भी अच्छा लिखते है। बादशाही मुल्क पर होनेवाली आक्रमणों का संयोजन ताराबाई करती थीं, ऐसा तत्कालीन इतिहासकारों ने लिखा

है। रोजमर्रा के राज्य-कार्यभार पर भी ताराबाई की बारीकी से नजर थी। मठाधिपति, वतनदार जैसे प्रतिष्ठित लोगों से लेकर आम आदमी तक कोई भी उन तक फरियाद लाकर न्याय की गुहार लगा सकते थे। ताराबाई ने कुछ धार्मिक स्थानों का जीर्णोद्धार भी किया था। राजाराम के काल में महाराष्ट्र में वतनपद्धति का पुनरुज्जीवन हो गया था। अमात्य से लेकर देशमुख-कुलकर्णी तक सभी इनाम-वतन के पीछे पड़ गये थे। ऐसे मराठा वीरों को अपने काबू में रखकर उनका नेतृत्व करते हुए मुगल आक्रमण का प्रतिकार करना यह कठिन कार्य ताराबाई ने किया।

बादशाह औरंगजेब की मृत्यु हो जाने से मुगल साम्राज्य के इतिहास की एक बड़ी मुहिम समाप्त हो गयी। अपनी मृत्यु के पूर्व शाहजादा मोहम्मद आजम को बादशाह ने मालवा रवाना किया था। मगर जब यह खबर उसको मालूम हुई, वह तुरन्त अहमदनगर आ गया और उसने खुद को बादशाह घोषित कर डाला। शाहजादा कामबख्श ने बीजापुर किले में आश्रय लिया। शाहजादा मुअज्जम पेशावर में था। वह बादशाह का सिंहासन हथियाने फौज लेकर निकल पड़ा। तब उससे निपटने के लिए शाहजादा आजम उत्तर की दिशा में कूच करने लगा। शाहू राजा और येसूबाई उसके ही साथ थे। मालवा पहुँचने पर जुल्फिकार खाँ की सलाह मानकर उसने इन दोनों को छोड़ दिया। इसके पीछे मराठा सत्ता में भी विरासत को लेकर विवाद पैदा करने की ही साजिश थी, जिसके कटु परिणाम आगे दिखायी दिये। छत्रपति सम्भाजी की हत्या के बाद छत्रपति राजाराम एवं रानी ताराबाई ने ही स्वराज्य का रक्षण किया था और इन अठारह सालों में शाहू महाराज मुगलों की कैद में ही थे; इसलिए उनका यह दावा करना व्यर्थ है, ऐसा रानी ताराबाई का कहना था। १२ अक्तूबर, १७०७ को खेड-कडूस इस स्थान पर निर्णायक संघर्ष हुआ, जिसमें शाहू महाराज की जीत हुई। इसके बाद का ताराबाई का जीवन भले ही कुछ शोकग्रस्त रहा हो; मगर वह तो मराठा स्वातन्त्र्ययुद्ध के लिए जीती-जागती प्रेरणा बनी थीं, यही इतिहास हमें बताता है।

आधुनिक इतिहास में अमेरिका के खिलाफ विएतनाम ने जो संघर्ष किया है, उसका आदर्श प्रस्तुत किया जाता है; लेकिन **हमारे देश के इतिहास में औरंगजेब भी महासत्ता अमेरिका के समान ताकतवर था और उसके खिलाफ जो मराठा समाज ने संघर्ष किया, वह अपने आप में एक कीर्तिमान है। इतिहास में वह सचमुच बेजोड़ है। शिवाजी महाराज ने स्थापन किया, स्वराज्य केवल भोसले कुल का राज्य नहीं था। वह मराठा सत्ता थी। इसलिए उनकी मृत्यु के बाद २६ सालों तक इस स्वातन्त्र्ययुद्ध में औरंगजेब के खिलाफ मराठा समाज के सभी स्तर के लोगों ने सहभाग लिया था, महाराष्ट्र का हरएक घर इसमें शामिल था, यह हमें दिखता है। औरंगजेब का साम्राज्य काबुल से कावेरी तक फैला हुआ था। उसका पूरा लश्कर पाँच लाख के करीब था। लेकिन मराठा लश्कर लाख-डेढ़ लाख के करीब ही था। छत्रपति सम्भाजी महाराज की बर्बरता से हत्या हुई है। रानी येसूबाई और शाहू राजा मुगलों के कैद में हैं। विद्यमान छत्रपति राजाराम महाराष्ट्र में नहीं हैं। ऐसी अवस्था में ताराबाई के नेतृत्व में मराठा सेना ने जो संघर्ष किया, वह मराठा-इतिहास में एक तेजस्वी-पर्व बनकर उभरा है।** ताराबाई की युद्धनीति शिवाजी महाराज के नीति का ही परिपाक थी।

ताराबाई के काल में महाराष्ट्र से दूर के प्रदेश में मराठी सेना ने पराक्रम करना आरम्भ कर दिया था। इससे मुगल फौजों का आत्मविश्वास डाँवाडोल होने लगा था। मराठों के मन से दुश्मन का भय निकल गया था। आगे चलकर आधे **शतक के कालखण्ड में हिन्दुस्थान पर मराठों की जो अधिसत्ता निर्माण हो गयी थी, उनके बीज ताराबाई के आक्रामक लश्करी मुहिमों में पाये जाते हैं। केवल पच्चीस-छब्बीस साल की तरुण विधवा रानी ने भद्रकाली बनकर एक महासत्ता से जो संघर्ष करके उस पर जीत हासिल की, यह तो अखिल हिन्दुस्थान के इतिहास में स्वर्णिम पृष्ठ है।** यह प्रेरणा हमें आज भी मिलती है। महारानी ताराबाई की अश्वारूढ़ प्रतिमा सातारा में स्थापित की गयी है। उसका दर्शन इस स्वतन्त्र्य गाथा को जीवन्त करता है। □

– ३०२, तीसरी मंजिल, महाकाय बिल्डिंग, मैत्री पार्क, यशोधन नगर, ठाणे (पश्चिम)– ४००६०६

मातृत्व
प्रकृति प्रदत्त संस्कार

– मृदुला सिन्हा

बिहार में एक कहावत है– ''अम्मा जे मिलिहें, खुल के बतिआऊँ ! गंगा जे मिलिहें, डूब के नहाऊँ।''

हमारे सनातन ऋषियों ने तो गंगा को भी अम्मा की श्रेणी में ला दिया। गंगा, अम्मा है और अम्मा गंगा है। दोनों निःस्वार्थ। सान्निध्य में जाने पर अपने आँचल में छिपाकर शीतलता देती हैं, शक्ति देती हैं; क्योंकि दोनों के पास अकूत शक्ति है।

एक दूसरी कहावत है–' 'माता बिनु आदर कौन करे, वर्षा बिनु सागर कौन भरे।'' अर्थात् अम्मा और वर्षा भी बराबर हैं। वर्षा के विना जीवन ही नहीं है, तो माँ के विना भी कहाँ है सृष्टि ! मातृत्व, स्त्री का प्राकृतिक संस्कार है। मनुष्य जीवन को उत्कृष्ट बनाने के लिए सोलह संस्कार तो समाज ने बनाये हैं; परन्तु माँ के पेट से माँ बनने का संस्कार लेकर सभी मादाएँ आती हैं– पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, कीड़े-मकोड़े सब। प्राणिमात्र में मादा है, उसके अन्दर माँ बनने का प्राकृतिक संस्कार है। यौवनावस्था आते-आते उसके शरीर में रासायनिक परिवर्त्तन होते हैं, जो उसे माँ बनने के लिए प्रेरित करते हैं, शक्ति देते हैं।

'माँ' सम्बोधन के उच्चरित होते ही हृदय में एक हुलास की लहर उठकर सम्पूर्ण शरीर को स्पन्दित कर जाती है। उम्र की परवाह किये वगैर यह लहर शिशु से लेकर अस्सी-नब्बे वर्ष के मानव-मानवियों के मन में शीतलता घोल जाती है। माँ के सान्निध्य में रहकर सत्तर वर्षीय व्यक्ति भी बच्चा ही रहता है। माँ के आँचल की छत्रच्छाया उसे बचपन भुलाने नहीं देती। उसे साहस और शक्ति मिलती है।

माँ का यह प्रभाव मात्र शिशु को जन्म देने से नहीं बनता। शिशु के लालन-पालन में अपनी ममता लुटाती माँ, उसके अन्दर विश्वास बीज डालती है। नैसर्गिक रूप से बच्चे को जन्म देनेवाली ही माँ होती है; परन्तु हमारे मिथकों से लेकर समाज जीवन में भी सौतेली माँएँ, पालनेवाली माँएँ, धाएँ दिखती रही हैं। सबसे बड़ा उदाहरण तो यशोदा मैया का ही है। कृष्ण को कभी लगा नहीं कि यशोदा उनकी जन्म देनेवाली माँ नहीं थीं। सदियों से उनकी कथा सुननेवाले भी यशोदा के वात्सल्य प्रेम में डुबकी लगाते रहे हैं।

समाज का रूप बदलता रहता है। हर समय की अपनी आवश्यकता होती है। इन दिनों पूरा विश्व एक गाँव और विश्व बाजार में तब्दील हो रहा है। इसलिए नैसर्गिक गुणों के भी खरीदार हो गये हैं। स्त्री-पुरुष अपने द्वारा उत्पादित सामान ही नहीं, अपना नैसर्गिक गुण और काम भी बेचने लगे हैं। अंगों के बेचने की खबरें आती ही रहती हैं।

स्त्री के शरीर में स्थापित उसकी कुक्षि (कोख) उसे ब्रह्मा की श्रेणी में ला खड़ा करती है। किम्वदन्ती है कि संसार की रचना करने के बाद ब्रह्मा चिन्तित थे कि उसकी रक्षा कौन करेगा। और माँ का सृजन कर वे निश्चिन्त हो गये। उसके शरीर में विशेष अंग का सृजन सृष्टि को अक्षुण्ण रखने के लिए किया गया। वही अंग उसे पुरुष से विशेष बना गया। उसी अंग के कारण वह पूजनीया भी बनी। सच बात है कि विवाह के बाद स्त्री शरीर में ऐसे रासायनिक परिवर्त्तन आते हैं कि वह माँ बनना चाहती है। माँ बनने की खबर सुनकर उसके सम्पूर्ण शरीर में खुशी की एक लहर दौड़ जाती है। अपने पेट पर हाथ फेरते हुए वह ब्रह्मा को लाख-लाख धन्यवाद देती है।

परन्तु माँ का यह रंग भी समय-समय पर बदरंग होता रहा है। पारिवारिक, सामाजिक कारणों से गर्भपात कराना, माँ के रंग को बिगाड़ता ही रहा है। इन दिनों तो अजन्मी माँओं की भ्रूणहत्याएँ हो रही हैं। जननी को जन्मने नहीं दिया जा रहा।

समाज में अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जब स्त्रियों को अपनी जेठानी, देवरानी या और किसी रिश्तेदार के लिए बच्चा पैदा करना पड़ा है। इन दिनों बाजारवाद ने 'सरोगेट मदर' और 'किराये की कोख' नामक शब्दों का ईजाद कर एक नया अर्थ दे दिया है। भारत में कोई भी फैशन आहिस्ते-आहिस्ते विस्तार नहीं लेता है। ''आया सावन झूम के'' की तर्ज पर ही नये व्यवहार और व्यापार पनपते हैं। 'सरोगेट मदर' की स्थिति भी तेजी से फैल रही है।

सच तो यह है कि 'सरोगेट मदर' सीधा-सीधा व्यापार है, सामाजिक व्यवहार नहीं। माँ के पूर्व लगे इस विशेषण (सरोगेट) को ही रहना चाहिए। 'माँ' शब्द को हटा देना

चाहिए। माँ शब्द के रहने से ही कई भ्रान्तियाँ फैलती हैं। माँ पर अपना नैसर्गिक गुण और अंग (कोख) बेचने का लाञ्छन लगता है। 'माँ' सम्बोधन बदनाम होता है। यह एक ऐसा रिश्ता माना जाता है, जो स्वार्थ से ऊपर है।

उस दिन सुबह-सुबह समाचारपत्रों में एक खबर पढ़कर मन प्रसन्न हो गया। खबर के अनुसार न्यायालय ने अपनी सकारात्क भूमिका निभाते हुए फैसला सुनाया कि गर्भवती औरत के द्वारा परीक्षा के फार्म भरते हुए यदि उसकी उपस्थिति कम रही है, तो उसका संज्ञान नहीं लेना चाहिए।

न्यायमूर्त्ति कैलाश गम्भीर ने अपने एक फैसले में दिल्ली विश्वविद्यालय को निर्देश दिया कि वह उन दोनों छात्राओं के परीक्षा परिणाम घोषित करे, जिनका चौथे और पाँचवें सेमिस्टर में अनिवार्य ६६ प्रतिशत उपस्थिति नहीं होने के कारण परिणाम रोक दिया गया था। अदालत ने कहा कि महिला अभ्यर्थी को अगर इस आधार पर किसी सेमेस्टर की परीक्षा से रोका या वञ्चित किया जाता है कि वह गर्भवती होने या प्रसूता होने के कारण कक्षा में हाजिर नहीं हो सकी, तो किसी विश्वविद्यालय या कॉलेज का यह कृत्य न केवल भारत के संविधान की अन्तरात्मा का, बल्कि महिला अधिकारों और लैंगिक समानता का भी पूरी तरह हनन होगा।

न्यायमूर्त्ति गम्भीर ने कहा कि इन छात्राओं को राहत न देकर हम मातृत्व को एक अपराध बनायेंगे, जो कि इतिहास में किसी सभ्य लोकतन्त्र ने न तो किया है, न करेगा।

ऐसे निर्णय न्यायालय, सरकार या परिवार के क्यों न हो, समाज को अपनी जड़ों को लौटानेवाले निर्णय होते हैं। व्यक्ति और समाज द्वारा मानव-मानवी के प्राकृतिक दायित्वों का सम्मान होता है। यह सत्य है कि बच्चा पैदा करना स्त्री का नैसर्गिक दायित्व है। हमारे समाज में अनपढ़ लोग भी इसे जानते थे। बच्चों को पढ़ा-लिखा कर सुयोग्य नागरिक बनाना माता-पिता का सामाजिक दायित्व है। हमारे समाज ने इसलिए गर्भवती स्त्री को विशेष दर्जा दे रखा है। लोकसंस्कृति में गोदभराई से लेकर और भी रस्में गर्भवती को समाज में ऊँचा दर्जा दिलाती रही हैं। गर्भवती स्त्री को अच्छा भोजन मिले, इसकी पूरी व्यवस्था होती थी। उसके लिए 'सधोर' (बिहार में प्रयोग होनेवाले शब्द) भेजा जाता था यानी वह खीर-पूड़ी-फल खायेगी। सभी नाते-रिश्तेदार यह व्यवस्था करते रहे हैं। कर्कशा सासें भी गर्भवती बहू से मीठा-मीठा बोलने लगती हैं। उसका मन प्रसन्न होना चाहिए। उसे धार्मिक पुस्तकें पढ़ने के लिए दी जाती हैं। हर परिवार चाहता है कि उसके घर में सुन्दर, स्वस्थ और सुयोग्य बनने की क्षमता रखनेवाली सन्तान पैदा हो। गर्भवती स्त्री को समाज और सरकार ने भी विशेष दर्जा दे रखा है। तभी तो सरकार की ओर से विशेष आहार, 'आशा' नाम की

मीनल देवी (मायानल्ला)

– प्रवीणराय एस. शाह

मीनल देवी कर्नाटक के कदम्ब वंश के राजा जयकेशी की पुत्री थीं और सिद्धराज जयसिंह (१०९४-११४३ ई.स.) की माता थी। वह चौलुक्य वंश का महान् राजा था। अणहिलवाड़ (पाटन) उसकी राजधानी थी। जब सिद्धराज के पिता कर्णदेव प्रथम (१०६४-९४ ई.स.) की मृत्यु हुई, तब वह बहुत छोटा था। बाल सिद्धराज के स्थान पर मीनल देवी ने अपने बुद्धि, कौशल और पुराने प्रशासकों की सहायता से राज सुचारु रूप से चलाया। सिद्धराज के वयस्क होने पर जब उसने राज्य की धुरी अपने हाथों में ली, तब मीनल देवी ने प्रशासनिक कुशलता द्वारा परोपकार के कार्य किये। उसे प्रजा के प्रति असीम प्रेम था। उसने कई स्मारक बनवाये। सिद्धराज प्रसिद्ध राजा था। आज कथाओं, लोकनाटकों, लोक साहित्य में उसका प्रथम स्थान है। उसने विद्वानों, कलाकारों, साहित्यकारों को राज्याश्रय दिया। जब मालवा विजय से सिद्धराज वापस आया, तब दरबारी, कवियों, भाट, चारणों ने मुक्त-कण्ठ से उसकी प्रशंसा की। तब राजा ने कहा कि मुझे यह विजय मेरी माता की मृत्यु के बाद मिली है, यही दुःख है।

मीनल देवी ने विरभगाम के पास मीनल सरोवर बँधवाया। दूसरा तालाब धोलका में बँधवाया। लोक कथन है कि तालाब को गोलाकार बनवाया जानेवाला था; मगर बीच में एक वृद्धा का मकान था। मीनल देवी ने जमीन के ऐवज में बहुत बड़ी राशि देने की बात कही; मगर वृद्धा ने अस्वीकार कर दी। मीनल देवी ने किसी भी प्रकार का दबाव न डाला। जब भी मलाव तालाब का जिक्र होता है, तब मीनल देवी की न्यायप्रियता का उदाहरण दिया जाता है। मध्ययुग में सोमनाथ का मन्दिर खूब प्रख्यात था। प्रतिवर्ष हजारों यात्री देश भर से यहाँ आते थे। राज्य को उससे कर में ७२ लाख रु. आमद प्रतिवर्ष होती थी। मीनल देवी ने यह यात्रा-कर हटवा दिया। 'प्रबन्ध चिन्तामणि' में उल्लेख है कि एक बार मीनल देवी सोमनाथ की यात्रा पर थीं। तब वह बहुलोद ग्राम पहुँचीं। चुंगी अधिकारियों द्वारा साधुओं से जबर्दस्ती कर वसूला जाता था। उन्होंने साधुओं की आँखें छलकती देखीं। साधु विना दर्शन के लौट रहे थे। यह दृश्य देख मीनल भी विना दर्शन किये लौट पड़ीं। राह में सिद्धराज मिले। माता से सोमनाथ आने का आग्रह किया। मीनल ने कहा, "यात्रा-कर हटा दो, बाद में मैं आऊँगी। सिद्धराज ने फौरन् ही महसूल अधिकारी को यात्रा-कर हटाने का आदेश दिया।

मीनल देवी का स्थान समकालीन साहित्य में भी था। उन्होंने पराशचन्द्र संस्कृत नाटक लिखा। स्त्री-मुक्ति और नारी चेतना के कार्य किये। अक्सर देवसूरिजी मीनल देवी जैसी गुणी माता के उदाहरण देते रहे हैं। मीनल देवी को गुजरात के इतिहास में खूब प्रसिद्धि मिली। □

– बी३६, ऋतुराज सोसाइटी, स्टेशन रोड, व्यारा (तापी)– ३९४६५०

व्यवस्था और विशेष छुट्टियों का प्रावधान है। छठे वेतन आयोग ने बच्चा के लालन-पालन के लिए लम्बी छुट्टी के प्रावधान की अनुशंसा की है। पाँच वर्षों के अवकाश के बाद भी महिला सरकारी कर्मचारी की नौकरी बरकरार रहे। हाल ही में महाराष्ट्र सरकार द्वारा ९० दिनों के प्रसूति अवकाश की अवधि बढ़ाकर १८० दिन किया गया है।

अनपढ़ समाज ने लोकगीतों के माध्यम से गर्भवती स्त्री को शिक्षा देने की व्यवस्था कर रखी थी। घर में सास, ननदें होती हैं। आनेवाली सन्तान तो परिवार की होती है– "बबुआ बाबा के वंश बढ़ावन अइले ना।" इसलिए परिवार, समाज और सरकार का दायित्व होता है कि वह गर्भवती स्त्री की पूर्ण सुरक्षा, स्वास्थ्य और मन प्रसन्न रखने की व्यवस्था करे।

आज पढ़ी-लिखी और कामकाजी युवतियाँ माँ बनने से कतराने लगी हैं। कई कारण हैं। एकल परिवार में अकेले बच्चा सँभालना आसान नहीं। बच्चों के ऊपर शिक्षा का खर्च भी बहुत बढ़ गया है। बच्चा पैदा करने में दूसरा बड़ा बाधक उनकी पढ़ाई और नौकरी होती है। पढ़ी-लिखी महिला भी बच्चा पैदा करे (दो ही), देखना समाज और सरकार का भी दायित्व है। उसे विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ देनी ही होंगी। समय-समय पर न्यायालय द्वारा दिया फैसला तो मार्गदर्शक होता ही है। अनुपस्थिति के कारण गर्भवती को परीक्षा में बैठने या परीक्षा में उत्तीर्ण घोषित होने से नहीं रोकना एक दिशा-निर्देश है। समाज और सरकार को और बहुत कुछ करना है।

विवाह के समय की प्रार्थना का एक श्लोक है "दशास्याम् पुत्रानादेहि, पतिमेकादशं कृधि।" अर्थात् हे इन्द्रदेव, इस स्त्री को दस पुत्र दो, ग्यारहवाँ पुत्र इसका पति होवे।

सदियों से हमारे समाज में 'गौरी पूजन' के रूप में 'कन्या पूजन' के द्वारा स्त्री के अन्दर की मातृ–शक्ति की पूजा होती रही है अर्थात् कन्या के अन्दर जो सृजन की शक्ति है, समाज उसकी आराधना करता रहा है। मध्ययुगीन वर्जनाओं में भले ही नारी विरोधी परिस्थितियाँ निर्मित हुई थीं; पर शंकराचार्य ने इसी काल में प्रत्येक पूजा के अन्त में सुहासिनी की पूजा का विधान बनाया। यहाँ

चैतन्य-शक्ति, साहिका-शक्ति और प्रसव-शक्ति से भरपूर नारी की पूजा, खासकर उसकी मातृ-शक्ति की आराधना का नियम बनाया गया है। इसलिए शास्त्रों में स्त्री की अवमानना व निरादर बार-बार वर्जित किया गया है।

स्वर्गीय महादेवी वर्मा ने तीन दशक पूर्व दिल्ली की एक महिला संस्था द्वारा आयोजित समारोह में व्यक्तिगत, सामाजिक और सरकारी प्रयत्नों के बावजूद महिलाओं की स्थिति में आयी गिरावट पर दुःख प्रकट करते हुए कहा था- "रावण की अशोकवाटिका से लौटने पर सीता की अग्निपरीक्षा हुई थी; परन्तु दूसरी बार जब अग्निपरीक्षा की बारी आयी, तो सीता ने नहीं दी । तब सीता माँ बन चुकी थीं। भला माँ भी कहीं अपने शील की परीक्षा देती हैं ? माँ की पवित्रता और शील पर किसी की अँगुली नहीं उठ सकती। माँ, माँ है। वह भोग्या नहीं हो सकती। नारी पुरुष की भोग्या नहीं, उसकी निर्मात्री है।" उन्होंने महिलाओं का आह्वान किया... "आप माँ बनिये। अपने ओढ़े हुए भोग्या रूप का परित्याग कीजिए। तभी समाज में आपका उपभोग, क्रय-विक्रय, व्यापार, दमन और दहन बन्द होगा।"

सच है कि नारी जीवन की पूर्णता माँ बनने में ही है और उसका यही रूप उत्कृष्ट है। प्रकृति ने पुरुष से भिन्न और सर्वथा विशेष गुण उसके अन्दर निरूपित किये हैं। जिन गुणों का सार्थक प्रकटीकरण भी माँ बनने के कारण ही होता है। यह दायित्व निवर्हन निश्चित ही कष्टदायक है। तिल-तिल अपनी आहुति देना है; पर यह पीड़ा सृजन की पीड़ा है, इसलिए आनन्द देती है। अपनी आहुति से अपना पुनर्जन्म होते देखने का आनन्द प्राप्त होता है। यही नारी जीवन की सार्थकता है।

सवाल तो यह है कि प्रकृति प्रदत्त नारी के उन विशेष गुणों से समाज कितना लाभान्वित हो। अपने इन गुणों से नारी कैसे सिञ्चित करे समाज को। वह समाज निर्माण में स्नेह का बीज बो कर ममत्व से उसे सिञ्चित, पल्लवित, पुष्पित करे, यह सब समाज को विचार करना है। इसलिए जहाँ मातृत्व को गौरवान्वित करना है, वहीं उसकी सुरक्षा और सम्वर्द्धन के भी उपाय व योजनाएँ ढूँढनी हैं। मातृत्वविहीन नारी ठूँठ ही दिखेगी, उससे न समाज अलंकृत होगा, न स्वयं नारी।

भोगवादी प्रकृति मातृत्व भाव को भी कुचल रही है। समय रहते इससे मातृत्व को बचाना होगा; क्योंकि इस मातृशक्ति से केवल माँ और उनके बच्चे का सम्बन्ध नहीं है, सम्बन्ध सम्पूर्ण समाज के स्वास्थ्य और सम्वर्द्धन का है, इसमें मातृत्व को गौरव प्रदान कर समाज के गौरवान्वित होने का भाव सन्निहित है। "ममता जब विस्तार लेती है अपने आँचल में सागर भी समा लेती है।"□

– पी.टी ६२/२० कालकाजी, नयी दिल्ली– ११००१९

रमादेवी
उत्कल की महान् नारी

– डॉ. शंकरलाल पुरोहित

उन्नीसवीं सदी का समापन। बीसवीं सदी का आगमन, उत्कल के लिए अत्यन्त कठिन समय था। पराधीनता ही नहीं, दरिद्रता और बाढ़-सूखे से पिसता भूखण्ड! इसी में क्रान्ति, सेवा एवं मेधा जन्मती हैं; पनपती हैं। रमादेवी का जन्म १८९९ ई. में सत्यभामापुर (जि. कटक–ओडिशा) में हुआ। पिता श्री गोपाल बल्लभ दास अपने समय के सरकारी कर्मचारी, रईसों में गिने जाते थे। उनका रहन-सहन बड़े ठाठ-बाट व खुले विचार का था। रमा का पहनावा बेशकीमती कपड़ों के साथ, वे गहनों से लदी रहतीं। अतः स्वभाव में रईसी बनी रही।

परन्तु रमादेवी के विचार कुछ भिन्न थे। वे शुरू से ही सरलता, सादगी और जनसेवा की ओर आकृष्ट थीं; मगर संस्कारों का बड़ा भाग उन्हें पिता से विरासत में मिला जैसे जात–पाँत की बात न करना। नौकरों से भी मीठा समव्यवहार करना। बचपन में माँ से कहानी सुना करतीं। माँ का वह दयालु स्वभाव देखती, जो सब पर समान भाव से करुणामय रहता। उधर पिताजी की सेवा करने में बहुत खुशी मिलती। खेलते समय वे साथ रहते, खाना साथ खिलाते यानि उनकी निगाह बराबर रहती। माँ देखती कि किस तरह घर के काम में हाथ बँटा रही है। उसी तरह ननिहाल में कुछ समय रहना पड़ा, तो वहाँ भी नौकरों की देखरेख माँ ही करती। छोटे-बड़े का भेद-भाव न था। इन संस्कारों ने रमा को खूब प्रभावित किया। ननिहाल तो और भी समृद्ध था; परन्तु वहाँ समृद्ध विचारों ने प्रभावित किया। दास परिवार और चौधरी परिवार से मित्रता के नाते आना-जाना था। पन्द्रह वर्ष की छोटी उमर में ही उनका विवाह गोपबन्धु चौधरी से हो गया। ससुर गोकुलानन्द दास काफी प्रतिष्ठित व्यक्ति थे; पर सास कुछ कड़े व कट्टर स्वभाव की थी। अतः मन में सबके यह डर था कि इतनी लाडली बेटी वहाँ कैसे निर्वाह करती है। समस्या इससे भी बड़ी थी कि रमा के पीहर वाले ईसाई हो गये थे। वह हिन्दू घर में कैसे चलन करेगी ? सास के अधीन रहना कोई मामूली बात नहीं। वहाँ चन्दन घिसकर सबको देना होता है। रमा यह क्या जाने ? बड़ी ननद इन सब में मदद कर देती, चन्दन घिसकर बनाना आदि। छोटी-सी बहू। सब की तेज निगाहें उसके हर काम पर। व्यवहार परखा जा रहा। खैर मांस-मछली पकाना तो पीहर में सीख लिया था; मगर सिलाई वगैरह ससुराल में सीखनी पड़ी। नानी और माँ से उन्होंने त्याग सीखा था। वहाँ पर उन्हें परेशानी नहीं हुई। दूसरों को सुख दो, घर में सुख-चैन भर जायेगा।

लेकिन रमादेवी के तो जनसेवा खून में बसी थी। सरल स्वभाव, सबका आदर करना, अपने विचारों से सबकी स्नेही हो गयी। परोपकार और देश सेवा दो ही लक्ष्य थे। गोपबन्धु चौधरी इन बातों से परिचित थे। रमादेवी ने उन्हें घर के जञ्जाल में बाँधना नहीं चाहा। ससुराल के अदब-कायदे सीखने में देर नहीं लगी; परन्तु विवाह के कुछ ही दिनों में ससुर का देहावसान होने पर कुछ आर्थिक समस्याएँ जरूर आयीं। बड़े धीरज से सब का सामना किया।

खैर, गोपबन्धु चौधरी ने सरकारी नौकरी कर ली, वे सेकेण्ड आफिसर बने; परन्तु सरकारी नीति और रीति नें उन्हें खिन्न कर दिया। नौकरी में सच नहीं लिखा जा सकता। यह गुलामी की वृत्ति गोपबन्धु को असहनीय लगी। उन्हीं दिनों (१९२०) नागपुर कांग्रेस में भाग लेकर पं. गोपबन्धु दास ओड़िशा लौटे थे। ओड़िशा भी गान्धी और कांग्रेस से अछूता न रहा। कटक में नदी किनारे बालू शैया में सभा बुलायी गयी। मार्मिक शब्दों में स्थिति स्पष्ट हो गयी। लोग राष्ट्रसेवा के लिए कांग्रेस मञ्च पर आने को प्रस्तुत थे। सरकारी नौकरी छोड़ने की हिम्मत हो गयी। २१ फरवरी, १९२१ के दिन गोपबन्धु चौधरी ने डिप्टी कलेक्टर के पद से त्यागपत्र दिया। चारों ओर हड़कम्प। सारे वाक्यवाण रमादेवी पर बरसे। गोपबाबू कटक स्थित स्वराज्य आश्रम आने-जाने लगे।

साखीगोपाल में उन दिनों जातीय विद्यालय के रूप में सत्यावादी वनविद्यालय काम कर रहा था। जगतसिंहपुर में भी इसी स्तर पर जातीय विद्यालय की कल्पना जाग उठी।

अलका नदी वहीं सुन्दर वातावरण का निर्माण कर रही। अतः जमीन देने के लिए भागू बाबू तैयार हो गये। छोटी-सी अमराई में विद्यालयय की स्थापना की गयी। नाम उसी नदी के नामानुसार 'अलकाश्रम' रखा गया। पर रमादेवी के लिए अभी भी बाहर आकर काम करने के लिए समय नहीं हुआ। अतः पर्दे में ही चरखा कातना सीखा। वैसे गान्धीजी के आन्दोलन में चर्खा भी रचनात्मक कार्यों में एक माना जाता था।

इसी बीच असहयोग आन्दोलन शुरू हो गया। गान्धी जी कटक आये। पहली बार रमादेवी ने कटक में गान्धीजी के दर्शन किये। फिर वे सत्यभामापुर होते हुए पुरी जा रहे थे। रमादेवी ने वहाँ सूत के लच्छे उन्हें भेंट किये। सास ने मना किया, इस डर के कारण सोने के गहने वे भेंट नहीं कर सकीं; वरना गहरी इच्छा थी उनके चरणों में गहने भेंट चढ़ाने की।

१९३० तक तो पर्दा जारी रहा; पर अब बाहर निकलना ही था। नमक सत्याग्रह में गोपबन्धु चौधरी ने गिरफ्तारी दी। उसी दिन बेटे के मैट्रिक पास करने की खबर छपी। यद्यपि रमादेवी ने वैष्णव दीक्षा ली थी; परन्तु उसके अनुसार तिलक आदि कभी धारण नहीं किया। वे ईश्वर-स्मरण पर विश्वासी तो थीं; पर बाह्य आचार में कोई खास रुचि कभी नहीं रही।

कांग्रेस में रुचि लेने के कारण गया जाना पड़ा। वहाँ पर कड़ी ठण्ड सही; पर बच्चे सह न सके। बीमार पड़ गये। फिर भी मन कठोर था। लौटकर पुरी आयीं। यहाँ पति गम्भीर रूप से बीमार हो गये। अन्धविश्वास में सही चिकित्सा ठीक से हो न सकी। ज्यादा तबियत खराब हुई तब डाक्टर बुलाया। अन्त में होम्योपैथिक दवा भी दी, वह भी परीक्षा रूप में। भगवान् ने सुन ली। वे स्वस्थ हो गये।

टुक ने गैर जात में विवाह करने की इच्छा शान्तिनिकेतन से लिखकर भेजी। सास रूढ़िवादी थी अतः कड़े विरोध का सामना करना पड़ा। शादी में परिवारवाले प्रायः नहीं आये। अब नये घर के रीति-रिवाज के अनुसार बहू चले कैसे ? यह समायोजन भी कठिन समस्या थी। बहू तो मछली खाती। यहाँ घर में सब शाकाहारी थे, अतः जटिल समस्या हो गयी।

खैर, रमादेवी ने नमक सत्याग्रह में प्रत्यक्ष भाग लिया। अब अलकाश्रम में आकर वहीं रहने लगी। उधर नमक सत्याग्रह के लिए एंचुड़ी को चुना गया। पहले दस्ते का नेतृत्व लिया गोपबन्धु चौधरी ने। वे पकड़कर जेल भेज दिये गये। अब रमादेवी को बाहर संगठनात्मक काम में निकलना पड़ा। पारादीप की रानी को लेकर पूरा जत्था बनाकर वे नमक कानून तोड़ने निकलीं। श्रीजंग में महिला संगठन का काम किया। इतनी अवर्णनीय स्थितियों में काम किया। फिर जाजपुर जाकर सभा की। चन्दा इकट्ठा किया। इसी बीच

नगा रानी गाइडिंल्यू का शौर्य

मणिपुर के एक गाँव के नगाराज परिवार में २६ जनवरी, १९१५ को जन्मी गाइडिंल्यू बचपन से ही धार्मिक प्रवृत्ति की थी। पहली बार गाँव में एक विदेशी ईसाई पादरी ने पहुँचकर नगाओं को हिन्दूधर्म छोड़कर ईसाई बनने का लालच दिया, तो गाइडिंल्यू ने कहा, 'हम नगा भगवान् शिव व देवी के उपासक हैं। धर्म हमें प्राणों से प्यारा है। इसे कोई खरीद नहीं सकता। किशोर अवस्था में ही उसे यह पता चल गया कि अंग्रेज सरकार देश को पराधीन करने के बाद किस प्रकार हमारे धर्म पर भी डाका डालने का दुष्प्रयास कर रही है। गाइडिंल्यू के हृदय में धर्मान्तरण के प्रयास को देखकर विदेशी सत्ता के विरुद्ध विद्रोह पनपने लगा।

गाइडिंल्यू के चचेरे भाई जदोनांग ने नागाओं को संगठित कर अंग्रेजों की सत्ता को खुली चुनौती दी। नगाओं ने गोरो की पलटन से जबर्दस्त टक्कर ली। जदोनांग को गिरफ्तार कर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया तथा २६ अगस्त, १९३१ को उसे फाँसी दे दी गयी। नगाओं ने गाइडिंल्यू को अपनी रानी घोषित कर दिया।

सोलह वर्षीय गाइडिंल्यू फाँसी की घटना से उद्वेलित हो उठी। चार हजार सशस्त्र नगाओं का नेतृत्व करते हुए उसने गोरी पलटनों पर हमले किये। इन आक्रमणों में अनेक गोरे सैनिक मारे गये। इन गुरिल्ले हमलों से ब्रिटिश शासन काँप उठा। १७ अक्तूबर, १९३२ कोरानी गाइडिंल्यू अपने भाई सहित गिरफ्तार कर ली गयी। अंग्रेज गवर्नर ने रानी से कहा, 'नगाओं को शस्त्र त्यागकर ब्रिटिश सरकार का वफादार बनने की अपील जारी करने पर ही फाँसी से बच सकती हो। रानी ने निर्भीकतापूर्वक उत्तर दिया, 'मैं मातृभूमि को विदेशी शासन से मुक्त कराने के लिए प्राणोत्सर्ग करने का संकल्प ले चुकी हूँ। ऐसी अपील कैसे जारी कर सकती हूँ।'

रानी गाइडिंल्यू को आजीवन कारावास की सजा देकर जेल में बन्द कर दिया गया। देश के स्वाधीन होने के बाद ही जेल से उन्हें मुक्ति मिली।

जनवरी, १९८१ में नगा रानी को 'पद्मभूषण' से अलंकृत किया गया। रानी गाइडिंल्यू ने विश्व हिन्दू परिषद् के प्रयाग में आयोजित सम्मेलन में घोषणा की थी, 'हम नगा दृढ़ व निष्ठावान हिन्दू हैं। धर्मान्तरण को सहन नहीं किया जाना चाहिए।' □

१९३१ में पुरी में कांग्रेस अधिवेशन का निर्णय हुआ। इसके लिए स्वयंसेविकाओं को तालीम देने का काम किया। बाद में अधिवेशन स्थगित हो गया।

गाँवों में घूम-घूम कर नारी जागरण का अलख जगाने लगी। स्वाधीनता का शंखनाद इतने धीमे; पर इतने मर्म से चला कि पूरा इलाका आन्दोलन की रणभूमि बन गया। पुलिस के लिए सिर दर्द हो गया। अतः नवम्बर, १९३० को उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। जेल जाने का पहला अनुभव! उन्हें आठ महीने की सजा हुई। भागलपुर जेल भेज दिया गया, ताकि सुरक्षा और शान्ति बनी रहे। जेल में साधारण खूनी आसमियों के साथ रखा गया उन्हें। कुछ दिन बाद गान्धी-इरविन समझौता हुआ। उन्हें समय से पहले ही जेल से छोड़ दिया। वे जब लौटती हैं– बालेश्वर से स्वागत-संवर्द्धना शुरू हो गयी। पूर्ण-स्वराज का संकल्प कर वे फिर जेल गयी। इस प्रकार वह महलों की रानी क्रमशः जेल की अभ्यस्त हो गयी। देश को आजाद कराने हेतु इन लोगों के बलिदान को अतुलनीय कहा गया।

सात अक्तूबर को वे जेल से छूटीं, तो बाहर हरिजनों के साथ छूआछूत की जटिल समस्या थी। सास के कहने से वे घर में छूआछूत का पालन करती; पर गान्धी के आह्वान पर एक नयी चुनौती थी। हरिजन बस्तियों में काम शुरू हुआ। महिलाएँ इसमें आगे आयी। हरिजन सेवक संघ ने खूब जोरों से काम किया। इनके बच्चों की पढ़ाई, दवा-दारू करना, गो-मांस से परहेज कराना, कीर्त्तन-मण्डली बनाना चला। स्कूलों में हरिजनों को खुला प्रवेश मिला। १९३४ में गान्धी जी ने ओड़िशा में हरिजन पदयात्रा की। रमादेवी ने सारे बन्दोबस्त में सक्रिय भूमिका ली। गान्धी जी की दिनचर्या में जो कठिनाई आती, रमादेवी उसके समाधान में आगे होतीं। रास्ते में जो वस्तु उपलब्ध होती, उसका समायोजन किया जाता। भोजन में बर्बादी न हो, इसका वे विशेष ध्यान रखतीं। गान्धी इस व्यवस्था से अत्यन्त प्रसन्न हुए। बरी से विदा लेने लगे, तो गान्धीजी ने उन्हें बुलाकर कहा– "ओड़िशा में तालीम की कोई व्यवस्था नहीं। तुम कम पढ़ी हो; पर महिला तालीम तुम कर सकोगी। इससे बहुत बड़ा काम हो पायेगा। रमादेवी ने इसे जीवन का व्रत बना लिया।

बरी में रहकर खादी का काम, राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार के साथ नारी-जागरण जैसे काम हाथ में लिये। स्वावलम्बन मूल लक्ष्य था। उनकी कार्यशैली में स्नेह एवं समभाव प्रमुख था। 'सेवाघर' सामाजिक क्रान्ति का अग्रदूत बन गया। बरबाई (जिला पुरी) में आयोजित 'गान्धी सेवा संघ' सम्मेलन में भाग लिया और सक्रिय भूमिका निभायी।

इस दौरान 'सेवाघर' ने ख्याति प्राप्त कर ली। सरकार

की वक्र-दृष्टि उस पर पड़ी। असहयोग आन्दोलन के बाद सरकार ने इसे गैरकानूनी घोषित कर दिया। उन्हें फिर गिरफ्तार कर लिया। गोपबन्धु और रमादेवी दोनों बन्द; लेकिन बाद में छोड़ दिया गया। आजादी नजदीक आ रही थी। गान्धी अपनी कल्पना के सुराजी सपना थे। गान्धी जी का मूल था विकेन्द्रिय नीति !

कस्तूरबा के १६४४ में देहान्त के बाद कस्तूरबा-स्मृति ट्रस्ट बनाया गया। गान्धी के कहने पर रमादेवी भी इसकी एक ट्रस्टी बनीं। छोटे-छोटे गाँवों में महिला एवं शिशु उन्नति के लिए यह ट्रस्ट काम करेगा। तदनुसार बरी, सत्यभामापुर, डुंबुरगे में कस्तूरबा सेवा केन्द्रों की स्थापना हुई।

फिर चला भूदान-आन्दोलन। आजादी के बाद भी रमादेवी थककर बैठनेवाली न थीं। उन्हें लगा, आजादी अधूरी है। मात्र सत्ता बदली है। जन का भाग्य नहीं। विनोबा सक्रिय थे। आपने राज्य भर की पैदल यात्रा की। स्वतन्त्रता के बाद कुछ सकारात्मक काम किये। 'शिशु विहार' ऐसा ही एक कार्य था। इसके लिए प्रबन्ध करना पड़ा। आर्थिक सहायता के अभाव में गैर सरकारी सूत्रों से आर्थिक व्यवस्था भी करनी पड़ी।

इस बीच भारत-चीन युद्ध छिड़ गया। गुजरात के बेछड़ी में आयोजित सर्वोदय सम्मेलन में वे भाग लेने गयी। शान्ति सेना गठित की गयी। उसमें देश में कहीं भी सेवा-कार्य करने की सहमति प्रदान करना था। रमादेवी ने सहमति दी। जरूरत पड़ने पर असम (शरमिया आश्रम) गयी। तेजपुर गयी। चीनी सेना के अत्याचार और भारत सरकार की लापरवाही दोनों देखकर स्तब्ध थीं। आगे बोमडीला और डेरांग तक उस भयंकर स्थिति में भी गयीं। वहाँ की आम जनता से मिली। घायलों के उपचार का काम किया। इसके बाद कछार और मिजोरम गयीं। आइजोल में किसी तरह परमिशन लेकर गयीं। वहाँ पीने के पानी तक का घोर अभाव था। किसी की परवाह न की। सेवा-कार्य चलता रहा। लौटने के बाद भी विश्राम कहाँ ?

१६६५ में ओड़िशा के वन-पर्वत से भरा क्षेत्र कोरापुट का दौरा चला। अब की बार ग्रामदान-आन्दोलन था। लोग गलत खबरें फैलाकर गुमराह कर देते; पर रमादेवी के व्यक्तित्व से सारी परेशानी दूर हो जाती। इस प्रकार राज्य के दुर्गमतम क्षेत्रों में भी विनोबा का ग्राम-स्वराज का काम करती रहीं।

मार्च में इस बीच राउरकेला में साम्प्रदायिक दंगा छिड़ गया। लूट-मार, आगजनी, मार-काट खुलेआम चली। अतः शान्ति-सेना के कर्मी के रूप में तुरन्त राउरकेला पहुँचीं। लोग आतंकित थे। उनमें हिम्मत भरना पहला काम। सारे सुन्दरगढ़ जिले को सरकार सैन्य जो काम नहीं कर सका, रमादेवी के निहत्थे हाथों ने खूब भरोसा दिया। विभिन्न राष्ट्रीय संस्थाओं को खबर दे सहायता उपलब्ध करायी। बहुत बड़ी जान-माल की हानि रोकने में वे सफल हो सकीं।

उसी साल सितम्बर के आरम्भ में रेवेंशा कालेज में छात्र-अशान्ति हो गयी। एक दूकानदार की छात्र की छोटी-सी बात पर झड़प हो गयी। बात फैल पूरा कालेज चपेट में आ गया। फौरन् अन्नपूर्णा को लेकर कालेज पहुँची; पर समाधान नहीं मिला। सारे राज्य में आन्दोलन फैल गया। आखिर सितम्बर के अन्त में कुछ विशिष्ट लोगों की बैठक बुलायी गयी। इसमें छात्र-अभिभावक भी थे। डाक्टर हरेकृष्ण महताब के अनुरोध पर रमादेवी को हस्तक्षेप करना पड़ा। उन पर विश्वास व्यक्त किया। सारा आन्दोलन शीघ्र ही शान्त पड़ा।

उम्र का दबाव था। आजादी के बाद गैर सरकारी सहायता का दूसरा नाम था रमादेवी।

देश भर में कालाहांडी का अकाल मृत्यु के लिए सब को दुःखी कर रहा था। विराट् भूखण्ड सूखे से उबर ही नहीं पा रहा। १६६६ में मार्च में रमादेवी ने वहाँ जाकर क्षेत्र को अपनी आँखों से देखा। घर सूने। खेत दरके हुए और गाँव के गाँव खाद्याभाव से पीड़ित ! बच्चे सूखकर हड्डी के ढाँचे रह गये। घर में बेचने-बन्धक रखने को कुछ न बचा। कंदा पहाड़ों से समाप्त। शाल के पेड़ों पर किसलय खा कर कितने दिन गुजारा करें ! गूलर और आँवला उबालकर खाने से कुछ पेट को राहत मिल जाती। रमादेवी ने भारी मन सैकड़ों गाँव घूमकर देखे। सहायता कार्य हेतु हिन्द सेवक संघ की मदद ली गयी। ओड़िशा सूखा राहत कोष रमादेवी की ही अध्यक्षता

में बना। प्रसिद्ध देशभक्त पत्रकार राधानाथ रथ कोषाध्यक्ष थे। राज्य और बाहर से सहायता के लिए अपील की गयी। गो-खाद्य एवं अन्य सामग्री काफी मात्रा में पहुँची। वितरण हेतु सैकड़ों स्वयंसेवक तैयार किये। सवा सौ मध्याह्न भोजन केन्द्र खोले गये, ताकि अविलम्ब खाद्य उपलब्ध करा बड़ी संख्या में जनजीवन बचाया जा सका। चिवड़ा-चावल, दवा बाँटी गयी। उत्कल रिलीफ कमेटी अकुण्ठचित्त आगे आयी।

इसी बीच सितम्बर, १९६७ में बालेश्वर-मयूरभंज में बड़ी बाढ़ आ गयी। डूबतों को बचाया, तो बाढ़ पीड़ितों में राहत पहुँचायी। कटक-पुरी-बालेश्वर में अक्तूबर की भयंकर वात्या ने तबाही मचा दी। लाखों घर उजड़े। हजारों जानवर नष्ट हो गये, तो सैकड़ों मनुष्य कालकवलित हुए। सञ्चार-व्यवस्था ध्वंस हो गयी। उत्कल रिलीफ कमेटी को सक्रिय किया। ज्वार से कुएँ-तालब सब सड़ गये। पानी तक दुर्लभ हो गया। रमादेवी ने तत्परता से सहायता कार्य का नेतृत्व लिया। खाना पकाकर खिलाना शुरू किया। काम के जरिये खाद्य की योजना चली। रमादेवी की अपील पर जयप्रकाश जी की बिहार रिलीफ, रेडक्रास, कटक गोरक्षिणी सभा, लोक सेवक मण्डल, ओड़िशा नारी सेवा संघ, दिव्य जीवन संघ आदि से रिलीफ सहायता, स्वयंसेवक आये। कालेज-विश्वविद्यालय के छात्र भी सक्रिय हो उठे। इस प्रकार उत्कल की विपत्ति की घड़ी में ममतामयी मूर्त्ति रमादेवी बार-बार इधर से उधर होती रहीं।

जब बांग्लादेश बन गया। आजादी के बाद दूसरी बार शरणार्थी समस्या पैदा हुई। पश्चिम बंगाल में भर गये शरणार्थी। हैजे का प्रकोप हो गया। कलकत्ता के आसपास नहीं, बांग्लादेश की सीमा पर जाकर कार्य करने का निर्णय लिया। आक्सफाम और ओड़िशा रिलीफ सोसाइटी के सहयोग से वहाँ रिलीफ कार्य चला। शरणार्थियों का दुःख-लाघव करने में जुट गयी। यह कार्य और भी जटिल तथा जोखिम भरा था। महामारी के बीच सेवा, राहत, बचाव कार्य में जान का खतरा रहता है। रमादेवी ने हँसते-हँसते लम्बे अर्से तक सेवा की।

लौट कर वे सत्यभामापुर चली आयीं।

राष्ट्र पर एक और तरह का आन्तरिक संकट था। जयप्रकाश नारायण का सरकार से टकराव। सम्पूर्ण क्रान्ति का नारा देकर छात्र समाज को सड़कों पर उतारा गया। एक पूरा समाज परिवर्त्तन का रोडमैप था उनके पास ! जाति-भेद को हटा दिया गया। सरकार ने इसे देश में अशान्ति की शुरुआत माना। रमादेवी प्रत्यक्ष उनसे जुड़ी न थीं; पर देशहित तो सर्वोपरि था। इस नयी आपातस्थिति से व्यक्ति-स्वातन्त्र्य को चोट पहुँची। लगा जैसे गणतन्त्र के मूल्य खारिज हो रहे हैं। रमादेवी ने विरोध का रास्ता अपनाया। देश के नागरिक, मौलिक अधिकारों पर आये खतरे का सक्रिय होकर मुकाबला किया। विनोबा ने इन्हीं दिनों गोहत्या-बन्दी के लिए आमरण-अनशन किया था। रमादेवी तुरन्त वर्धा गयी। वहाँ विनोबा का सन्देश मिला। लौटीं, तो ओड़िशा में गोहत्या पर पाबन्दी लग गयी।

आपातकाल हटा, तब तक देह बहुत कमजोर हो चुकी थी। फिर भी मन का उत्साह कम नहीं हुआ। उन्होंने आचार्य हरिहर कैंसर मेमोरियल ट्रस्ट बनाया। इसके जरिये कैंसर रोगियों की सेवा का कार्य शुरू किया। १९८५ में देह शान्त हुई।

इस प्रकार नारी शिक्षा वर्जित और एकदम रूढ़िवादी समाज से निकलकर उत्कल में दृढ़ चेतना सम्पन्न नारी नेतृत्व लेकर समाज-सेवा का कार्य करनेवाली थीं रमादेवी। उनके दर्शन करते, तो लगता जैसे शान्ति और ममतामयी माँ की मूर्त्ति चली आ रही है। देश का काम आजादी से बढ़कर समाज में जागृति और सचेतनता का था, यह बात रमादेवी से सीखी जा सकती है।

ऐसी थी उत्कल की महान् नारी रमादेवी। □

– १७२/१९५६, जयदुर्गा लेन, झरपाड़ा, भुवनेश्वर– ७५१००६ (ओड़िशा)

मैना को आग में झोंका गया

बिठूर (कानपुर) नाना साहब पेशवा की कर्मस्थली होने के कारण क्रान्तिकारियों का केन्द्र था। १८५७ की सशस्त्र क्रान्ति में नाना साहब पेशवा का अप्रतिम योगदान था।

कानपुर में नाना साहब पेशवा के अनुपम शौर्य एवं युद्ध कौशल से अंग्रेज सरकार काँप उठी थी। जब कानपुर पर अंग्रेजों का पुनः अधिकार हो गया, तो नाना साहब गुप्त रूप से दूर पहुँचकर क्रान्ति कार्यों में रत हो गये। अंग्रेजों ने नाना साहब की किसी भी तरह गिरफ्तारी के प्रयास शुरू कर दिये। उनकी गिरफ्तारी पर एक लाख रुपये का इनाम घोषित कर दिया गया।

नाना साहब पेशवा की पुत्री मैना बिठूर के अपने महल में रहती थी। एक दिन कर्नल अउट्रम गोरों की पलटन के साथ बिठूर पहुँचा। उसने मैना के पास पहुँचकर पूछा, 'नाना साहब कहाँ है ? तुम उनकी बेटी हो, तुम्हें तो जरूर मालूम होगा।' मैना ने उत्तर दिया, 'मुझे उनके बारे में कुछ पता नहीं है। दूसरी बात यह है कि यदि पता होता, तो भी मैं उन्हें मौत के मुँह में धकेलने का पाप क्यों मोल लेती ?' अउट्रम तेरह वर्षीय बालिका की निर्भीकता देखकर जल-भुन उठा। उसने नाना साहब के महल को आग में जला डालने का आदेश दिया। वह मैना को अपने साथ कानपुर ले आया। कानपुर के किले में बन्द करके उसे यातनाएँ दी गयीं। यातनाओं के बावजूद मैना ने नाना साहब का पता बताने से इनकार कर दिया।

उसे गोरे नरपिशाचों ने जलती अग्नि में झोंक दिया। चित्तौड़ के जौहर की तरह मैना ने खुशी-खुशी प्राणोत्सर्ग कर स्वाधीनता के यज्ञ में अनोखी आहुति दे दी। □

स्वतन्त्रता की देवी : मैडम कामा

– सुश्री स्मिता झाला

मुम्बई के पारसी परिवार में सन् १८६१ ई. में जन्मी मैडम कामा बचपन से ही देशभक्त थीं। उनके पिता प्रेमजी सोराबजी पटेल ने मैडम कामा का विवाह सन् १८८५ ई. में श्री रुस्तम के.आर. कामा (प्रसिद्ध विधि सलाहकार) से कर दिया; किन्तु मैडम कामा ने घर की सुख-सुविधा को छोड़कर तथा गृहस्थी के बन्धन को तोड़कर अपना सर्वस्व जीवन राष्ट्र सेवा के लिए न्योछावर कर दिया।

मुम्बई में प्लेग जैसी महामारी फैलने पर मैडम कामा ने दीन-हीन रोगियों की सेवा की। दिन-रात सेवा कार्य करने से मैडम कामा का स्वास्थ्य भी खराब होने लगा। अतः अपने स्वास्थ्य-लाभ के लिए लन्दन गयीं। स्वस्थ होने पर मैडम कामा पुनः राष्ट्र सेवा के कार्य में संलग्न हो गयीं। मैडम कामा लन्दन में ही दादाभाई नौरोजी की सचिव रहीं। अनेक राष्ट्रवादियों से सम्पर्क हुआ। मैडम कामा ने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध सशक्त आवाज उठायी और भारतवासियों को स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए प्रोत्साहित किया। कुछ समय बाद मैडम कामा फ्रान्स आयीं। यहाँ भी अनेक क्रान्तिकारियों से सम्पर्क कर ब्रिटिश सरकार ने मैडम कामा की एक लाख से अधिक सम्पत्ति जब्त कर ली तथा उनके पत्रों पर भी रोक लगा दी।

ऐसी परिस्थिति में भी मैडम कामा निराश नहीं हुईं; बल्कि और अधिक जोश-खरोश से भारतीय क्रान्तिकारियों का सहयोग करने लगीं। लाला हरदयाल के साथ मिलकर नयी पत्रिका 'वन्देमातरम्' का शुभारम्भ किया। इस पत्रिका ने युवा भारतीय क्रान्तिकारियों को पूर्ण प्रोत्साहित किया। स्वातन्त्र्यवीर सावरकर द्वारा जेल-प्रवास के समय लिखित पुस्तक 'भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष' के प्रकाशन एवं विक्रय का सारा कार्य मैडम कामा ने ही किया।

वर्षों तक विदेश में रहकर स्वदेश 'भारत' की स्वतन्त्रता के लिए अथक प्रयास मैडम कामा ने किये। सन् १९०७ ई. में स्टुट गार्ड में अन्तरराष्ट्रीय समाजवादी कांग्रेस सम्मेलन में मैडम कामा ने भारतीय तिरंगे को स्वतन्त्रता का प्रतीक बताया तथा विश्व का ध्यान भारत में चल रहे स्वतन्त्रता प्राप्ति के आन्दोलन की ओर आकर्षित किया। मातृभूमि के प्रति अत्यधिक प्रेम के कारण मैडम कामा ने अपना अन्तिम समय मुम्बई में ही बिताया तथा १३ अगस्त, १९१६ को, हृदय के अन्तःस्थल से मातृभूमि को सादर नमन करके चिर प्रयाण कर गयीं। धन्य है ऐसी स्वतन्त्रता की देवी मैडम कामा। □

– ७६–ए, पञ्चवटी सोसाइटी, स्ट्रीट नं. ५,
कालाबाड रोड, राजकोट (गुज.)

माता समान गुरु नहीं

– डॉ. निरुपमा राय

भारतीय संस्कृति में माता का स्थान सर्वोपरि माना गया है। 'माँ' एक ऐसा भावपूर्ण शब्द है, जो श्रवण मात्र से तन-मन में ऊर्जा का सञ्चार कर देता है। नारी को मातृदेवता मानकर भारतीय संस्कृति ने इस रहस्य को प्रकट किया है कि नारी भोग्या नहीं वन्दनीया एवं पूजनीया है। श्रुति में 'मातृदेवो भव' कहकर माता की आराधना का विधान किया है। इसी भक्तिभाव और श्रद्धा का विराट् एवं व्यापक रूप है नारी समाज की आराधना। विराट् हिन्दू सनातन धर्म नारी को आद्यशक्ति जगज्जननी माँ दुर्गा की ही प्रतिमूर्त्ति मानता है। जगत् में ईश्वर की कर्तृत्व-शक्ति का ही दूसरा नाम नारी है। 'बृहद्धर्मपुराण' के पूर्वखण्ड के द्वितीय अध्याय में माता की महत्ता और मनुष्य मात्र के जीवन में उसके परम पूजनीय स्थान को दर्शाता एक अद्भुत स्तोत्र है– 'मातृ-स्तोत्र'। इस स्तोत्र में माता की महिमा का गान प्रन्द्रह श्लोकों में किया गया है। पराशर पुत्र महर्षि व्यास ने महर्षि जाबालि को इस गूढ सूत्र का ज्ञान देते हुए कहा है कि माता से बढ़कर इस त्रिभुवन में अन्य कोई पूजनीय नहीं है। स्तोत्र का प्रथम श्लोक ही माता की महिमा का गान प्रस्तुत करता है–

"पितुरप्यधिका माता गर्भधारणपोषणात्।
अतो हि त्रिषु लोकेषु नास्ति मातृसमो गुरुः।।"

अर्थात्– पुत्र के लिए माता का स्थान पिता से बढ़कर है; क्योंकि वह उसे गर्भ में धारण कर उसका पालन-पोषण करती है। अतः तीनों लोकों में माता के समान दूसरा कोई गुरु नहीं। व्यास मुनि स्पष्ट कहते हैं कि धर्मज्ञ पुत्र माता और पिता को एक साथ देखे, तो पहले माता को प्रणाम करे, उसके बाद पिता रूपी गुरु को–

"मातरं पितरं चोभौ दृष्ट्वा पुत्रस्तु धर्मवित्।
प्रणम्य मातरं पश्चात् प्रणमेत् पितरं गुरुम्।।"

माता के २१ नाम शास्त्रों में बतलाये गये हैं, जिसकी पुष्टि करता हुआ यह स्तोत्र माता, धरित्री, जननी, दयार्द्रहृदया, शिवा, देवी, त्रिभुवनश्रेष्ठा, निर्दोषा, सर्वदुःखहा परम आराधनीया, दया, शान्ति, क्षमा, धृति, स्वाहा, स्वधा, गौरी, पद्मा, विजया, जया तथा दुःखहन्त्री नाम से माता की स्तुति करता है। व्यास जी कहते हैं कि जिस प्रकार माँ भगवती के दर्शन से उत्पन्न आनन्द को वाणी द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार माता का दर्शनमात्र बालक की पीड़ा का शमन कर देता है। माता की सर्वश्रेष्ठ गुरु के रूप में प्रतिष्ठा करते हुए व्यास जी जाबालि से कहते हैं कि,

"जिस प्रकार गंगा सर्वश्रेष्ठ नदी तीर्थ है, विष्णु सर्वश्रेष्ठ प्रभु हैं, शिव सर्वपूजनीय हैं, उसी तरह माँ सर्वश्रेष्ठ गुरु है। जिस प्रकार एकादशी के समान अन्य कोई त्रिभुवनविख्यात व्रत नहीं, उपवास के समान कोई तपस्या नहीं, उसी तरह माता के समान गुरु नहीं। जिस प्रकार भार्या सर्वश्रेष्ठ मित्र, पुत्र सबसे प्रिय, बहन सर्वाधिक मान्य स्त्री और दामाद के समान कोई अन्य दान का सुयोग्य पात्र नहीं है, उसी तरह माता के समान कोई गुरु नहीं है। जिस प्रकार कन्यादान सर्वश्रेष्ठ दान है, उसी भाँति माता गुरुओं में श्रेष्ठ है।

व्यास जी तर्क प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि पुरुष पत्नी का आश्रय लेकर स्वयं ही पुत्र-रूप में जन्म लेता है। इस दृष्टि से पूर्वज पिता का भी आश्रय माता ही होती है। अतः वही सर्वश्रेष्ठ गुरु है–

"पुरुषः पुत्ररूपेण भार्यामाश्रित्य जायते।
पूर्वभावाश्रया माता तेन सैव गुरुः परः।।"

मातृ-स्तोत्र अपनी जननी के प्रति अपार श्रद्धा का बीज हृदय में बोता है। श्रद्धा का यही बीज धीरे-धीरे माता-पिता की सेवा के रूप में परिणत होता जाता है। मनुष्य माता की सेवा से वह सर्वज्ञता प्राप्त कर सकता है, जो तपस्वियों के लिए भी दुर्लभ होती है–

"लेभे सर्वज्ञतां या तु साध्यते न तपस्विभिः"

संसार में यह बात सर्वमान्य है कि जब मनुष्य किसी संकट में पड़ जाता है, तो सर्वप्रथम माता का ही स्मरण करता है– "आपदि मातैव शरणम्" श्रुति भी कहती है कि मनुष्यों को, इष्टदेव मानकर माता का आदर-वन्दन करना चाहिए। अहैतुक स्नेह करनेवाली माँ ही एक ऐसी है, जिसका प्रेम सन्तान पर जन्म से लेकर, शैशव, बाल्यावस्था, यौवन और प्रौढ़ावस्था में एक समान बना रहता है। माँ का यह नैसर्गिक प्रेम केवल मनुष्य योनि में ही सीमित नहीं है; बल्कि पशु, पक्षी, जलचर, थलचर आदि सभी योनियों में पाया जाता है।

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में सोलह स्त्रियों को 'माता' की संज्ञा दी गयी है– गर्भधारण करनेवाली, स्तनपान करानेवाली, भोजन करानेवाली, गुरुपत्नी, विमाता, इष्टदेवता की पत्नी, सौतेली बहन, सहोदरा बहन, पुत्रवधू, सास, नारी, दादी, भाई की स्त्री, मौसी, बुआ और माता की स्त्री–

"स्तनदात्री गर्भधात्री भक्ष्यदात्री गुरुप्रिया।
अभीष्टदेवपत्नी च पितुः पत्नी च कन्यका।।
सगर्भजा या भगिनी पुत्र पत्नी प्रियाप्रसूः।
मातुर्माता पितुर्माता सोदरस्य प्रिया तथा।।
मातुः पितुश्च भगिनी मातुलानी तथैव च।
जनानां देवविहिता मातरः षोडश स्मृताः।।

माता के ये सभी रूप पूजनीय हैं। वस्तुतः माता को सर्वश्रेष्ठ गुरु मानकर सच्ची भावना से उसकी सेवा करनेवाला ही 'सन्तान' कहलाने योग्य होता है। परिवार में माता का स्थान अतुलनीय है। 'माता' बनकर स्त्री परिपूर्णता के वैभव को पाती है। नारी जन्म की सफलता मातृत्व में ही तो है। एक स्त्री माँ बनकर अपने लिए जैसा आदर्श निश्चित करती है, वह अपने कर्त्तव्य और जीवन को जैसा समझती है, उसी से समग्र परिवार का भाग्य-निर्णय होता है। 'माँ' की निष्ठा उसका वात्सल्य ही वह जीवनी शक्ति है, जो सन्तान के भविष्य का निर्धारण करती है। एक 'माँ' जैसा चाहे, अपनी सन्तान को वैसा ही बना सकती है। जीजाबाई की निष्ठा का ही फल थे शिवाजी। कौसल्या जैसी माता के गर्भ से ही 'राम' जन्म ले सकते हैं। माता सुमित्रा का आदर्श ही तो लक्ष्मण के भ्रातृ-स्नेह में कूट-कूट कर भरा था। पतिपरायणा सुनयना के संस्कार ही तो पुत्री सीता में प्रस्फुटित हुए थे, जो राजवैभव त्यागकर वे वनवासी पति की अनुगामिनी बनीं, सच्ची सहधर्मिणी बनीं।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रणेता पं. मदनमोहन मालवीय जी पर मृत्यु-पर्यन्त अपनी माता कुन्दनदेवी का प्रभाव रहा। "सिर जावे, तो जाय प्रभु ! मेरो धर्म न जावे।" माता की इस अमृतोक्ति को मालवीय जी ने आजीवन शिरोधार्य किया। कलकत्ता हाईकोर्ट के न्यायाधीश एवं कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रथम वाइस चान्सलर सर गुरुदास बन्द्योपाध्याय प्रसिद्ध मातृभक्त थे। सदाचार, निष्ठा, निर्लोभता, विचारश्रेष्ठता, सत्यवादिता जैसे दिव्य गुण माँ स्वर्णमणि ने ही बालक गुरुदास के अन्तर्मन में बोये थे। माता पुतलीबाई की सत्यवादिता का स्पष्ट प्रभाव गान्धी जी के जीवन पर भी रहा। वस्तुतः संसार के प्रत्येक सफल व्यक्ति पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपनी माता का ही प्रभाव सर्वाधिक दृष्टिगोचर होता है। लटेसिया बोनापार्ट की इस उक्ति "वीरों के शब्दकोश में असम्भव जैसा कोई शब्द नहीं" ने नेपोलियन बोनापार्ट जैसे वीर को विश्वप्रसिद्ध बना डाला, तो बेञ्जामिन फ्रैंकलिन को माँ जोसिया से ही नियतश्रम, अध्यवसाय एवं ईश्वरीय प्रेम का वरदान मिला। जार्ज वाशिंगटन ने तो कई स्थानों पर उल्लेख किया है कि "मेरी विद्या, बुद्धि, धन, वैभव, पद एवं सम्मान का मूल कारण मेरी आदरणीया जननी 'मेरी' हैं।"

पौराणिक उक्ति है कि 'माँ' सम्बोधित करके मनुष्य जिससे भी बात करता है, वह सत्य और धर्म के अनुसार माता के ही तुल्य है–

**"मातरित्येव शब्देन यां च सम्भाषते नरः।
सा मातृतुल्या सत्येन धर्मसाक्षी सतामपि।।"**

'माता' इस शब्द का मूल शब्द है 'मातृ'। ऋग्वेद में मातृ शब्द नदी, अन्तरिक्ष, जल एवं पृथ्वी के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है। वैयाकरण 'मातृ' शब्द को मान्+तृच, से बनाते हैं। मान का अर्थ है आदर। अतः मातृ शब्द का अर्थ हुआ– आदरणीय। मानव युग-युगान्तर से जिसे असीम श्रद्धा भेंट कर अजस्र-स्नेह प्राप्त करता रहा है, वह केवल जन्मदात्री ही नहीं, स्वर्ग से भी ऊपर और गुरुओं से भी पूज्य है। मनु स्मृति का भी स्पष्ट कथन है (२/१४५) कि जननी का गौरव उपाध्याय से दस लाख गुना, आचार्य से लाख गुना और पिता से हजार गुना बढ़कर है।' माता को सर्वोच्च स्थान केवल मनु ने ही नहीं दिया; बल्कि प्रत्येक धर्म में माता का स्थान सर्वोपरि माना गया है। जैसे यहूदियों की यह उक्ति है कि–

"भगवान् हर जगह प्रकट नहीं हो सकते। अतः उन्होंने माताओं की सृतष्टि की।" लगभग सभी मत, पन्थ यह मानते हैं कि **"किसी भी परिस्थिति में माता को अप्रसन्न नहीं करना चाहिए।"**

माता वात्सल्य के रूप में अपनी दिव्यता प्रकट करती है और सन्तान उसके स्नेहामृतपान से धन्य-धन्य हो जाती है। शिशु की प्रथम और अन्तिम गुरु माँ ही है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक 'मैटरलिंक' की उक्ति है कि– अपने बच्चों को प्यार करते समय सभी माताएँ शक्तिसम्पन्न, सम्पत्तिशालिनी हो जाती हैं। कोई भी माता दरिद्र, कुरूप, मूर्ख और जरा-जीर्ण नहीं रहती।"

निष्कर्षतः सन्तान के लिए इस पृथ्वी पर 'माता' दूसरा भगवान् है। उसके लिए 'माँ' नीतिशास्त्र का सारा नियमोपनियम है... आधार है.... दृष्टि है... जीवन है... आनन्द है... मोक्ष है... वस्तुतः प्राणतत्त्व है। इसीलिए तो श्रुतियों का शंखनाद है–

मातृ देवो भव !

– द्वारा श्री शम्भूनाथ झा, उर्सलाइन कान्वेण्ट रोड, रंगभूमि हाता, पूर्णिया– ८५४३०१ (बिहार)

कुण्डली : जिसने दिये ३ प्रधानमन्त्री

– के. विक्रम राव (लब्धप्रतिष्ठ वरिष्ठ पत्रकार)

जब मोतीलाल नेहरू ने अपने छब्बीस-वर्षीय पुत्र जवाहरलाल नेहरू की शादी सोलह साल की कमला कौल से की थी, तब उसकी तह में एक दैवी कारण था। भाई वंशीधर नेहरू, जो ज्योतिषी थे, की राय में पुरानी दिल्ली के सीताराम बाजार में जन्मी इस कश्मीरी कन्या के वंशजों को राजयोग बदा था। (पृष्ठ ६६, नेहरू डाइनेस्टी वाणी प्रकाशन, लेखक : के.एन.राव)। कमला नेहरू की कुण्डली से उसके पति, पुत्री और नाती भारत के प्रधानमन्त्री बने। अब उसके नवासे का बेटा भी उसी कतार में नजर आता है; लेकिन नेहरू परिवार और भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन की त्रासदी रही कि उसके नियति पुरुष की इस पत्नी को उपयुक्त महत्ता नहीं मिल पायी। सौ साल पूर्व एक अगस्त १८९९ को जन्मी कमला कौल एक आध्यात्मिक हस्ती थीं, जो बस सैंतीस वसन्त ही देख पायीं।

आधे से अधिक ये वसन्त भी उसके जीवन में शिशिर ऋतु जैसे ही थे। उसका स्वास्थ्य पतझड़ जैसा था; क्योंकि टी.बी. (तपेदिक) से उसे कभी मुक्ति नहीं मिली। हालाँकि उसकी बेटी इन्दिरा ने स्वयं तपेदिक पर काबू पा लिया था। कमला कौल की कुण्डली में राजयोग वाले ग्रहों का सन्निपात देखते समय मोतीलाल नेहरू ने गौर नहीं किया था कि शुक्र लग्न और षष्ठ स्थान का स्वामी वृषभ हो तो स्वास्थ्य खराब ही होगा। अष्टम स्थान में राहु की दशा, फिर बृहस्पति छठे स्थान में रहा, तो स्वास्थ्य कभी नहीं सुधर सकता है, भले ही हकीम लुकमान और वैद्य धन्वन्तरि ही कोशिश कर डालें। कमला की अल्पायु के आसार के बावजूद उसके राजयोग वाले सितारों के प्रभाव में नेहरू परिवार ज्यादा रहा। वर्ना अपनी पत्नी स्वरूपरानी, जो ताउम्र बीमार रहीं, को देखकर मोतीलाल नेहरू शायद कमला की कुण्डली का पूरा आकलन करने के बाद उन्हें अपनी बहू बनाने में हिचकते; मगर जब स्वरूपरानी नेहरू ने दिल्ली की एक कौटुम्बिक विवाहोत्सव पर इठलाती हिरनी जैसी एक स्वस्थ कमसिन कन्या को देखा, तो उन्होंने प्रथम दृष्टि में तय कर लिया था कि इंग्लैंड में पढ़ रहे उनके बेटे के लिए यही माफिक अर्द्धांगिनी रहेगी। यह कुमारी कन्या कोई और नहीं बारह वर्षीय कमला थी। उस वक्त जवाहरलाल नेहरू बाइस वर्ष के थे।

मोतीलाल नेहरू स्वरूपरानी नेहरू कमलारानी नेहरू

कैसी विद्रूपता है कि नेहरू परिवार के सभी लोगों पर, विजयलक्ष्मी पण्डित से राजीव और संजय गान्धी तक, कई किताबें छपी हैं; लेकिन इस वंश की गौरव कमला नेहरू पर केवल एक पतली-सी पुस्तक छपी, वह भी सुनी-सुनायी बातों पर। भारत की नियति की इस नियामिका का उसके भाग्य के बूते पर फलनेवालों ने हलका, सतही उल्लेख मात्र ही किया। उपेक्षा का मञ्जर तो ऐसा रहा कि कमला के पिता का नाम ही इन आत्मजनों को याद न रहा। नेहरू वंश के इतिहास लेखक बी.आर. नन्दा के अनुसार कमला के दादा पण्डित किशनलाल अटल के पाँचवें पुत्र जवाहरमल कौल की वह प्रथम पुत्री थीं; मगर कमला के पिता का नाम अर्जुनलाल कौल लिखा कृष्णा हठी सिंह ने, जो जवाहरलाल नेहरू की सगी छोटी बहन थीं। अपने ससुर के परिवार वालों के बारे में जवाहरलाल नेहरू ने कहीं भी उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं समझी। कौल परिवार चान्दनी चौक में आटे की चक्की के मालिक थे। तब लाल किले के पास के थाने में मोतीलाल नेहरू के पिता गंगाधर नेहरू अंग्रेजी सरकार में अर्दली रह चुके थे।

कमला से जवाहरलाल का पाणिग्रहण भी दिल्ली में एक घटना बनी थी। प्रयाग से एक विशेष रेल में तीन सौ बराती १९१६ की वसन्त पञ्चमी पर दिल्ली आये। सप्ताह भर समारोह चला। उन्हीं दिनों कुछ ही दूर भारत की राजधानी के रूप में नयी दिल्ली का निर्माण कार्य चल रहा था। दूल्हेराजा जवाहरलाल का आजादी के बाद होनेवाला आवास तीनमूर्ति भवन आधा बना था। शादी के तुरन्त बाद कमला के ग्रहों ने जलवा दिखाया। तीन माह बाद पति-पत्नी श्रीनगर में थे। वहीं कारगिल के निकट जार्जी ला (दर्रे) में चलते-चलते जवाहरलाल बर्फीली चट्टान खिसकने से फिसलते हुए बह गये। शोधकर्त्ता स्टेनली वोलपोर्ट ने अपनी पुस्तक "नेहरू, ट्रीस्ट विथ डेस्टिनी" (आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी

प्रेस, १९९९), में उल्लेख किया कि नवविवाहित जवाहरलाल द्वारा यह आत्महत्या का भी प्रयास माना जाता है। कमला का भाग्य था कि पति बच गया, बर्फीले बहाव से उबर आया। पति-पत्नी के शुरुआती रिश्ते में नवविवाहितों की सहज ऊष्मा कभी नहीं रही। खुद जवाहरलाल ने कमला से शादी पर नाखुशी व्यक्त करते हुए अपने पिता को लन्दन से २२ दिसम्बर, १९११ को पत्र में लिखा था कि 'मैं उस लड़की से विवाह करना नहीं चाहूँगा, जिसे मैं जानता तक नहीं हूँ।' उन्होंने पिता से सवाल भी किया था कि 'क्या आप की राय मैं उससे शादी करूँ, जिससे मैं प्यार भी न कर पाऊँ ?' बाद में जवाहरलाल नेहरू की सगी भानजी नयनतारा सहगल ने अपनी किताब 'इन्दिरा गान्धीस इमर्जेन्स एण्ड स्टाइल' (विकास प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ २७ में) लिखा कि उनके माता-पिता की बेमेल शादी की छाया इन्दिरा गान्धी में प्रतिबिम्बित होती है। कमला कौल की चाची और मोतीलाल नेहरू द्वारा रचायी गयी जवाहरलाल-कमला विवाह एक भयावह भूल थी। दो एकदम विपरीत व्यक्तियों का बेमेल योग था। यह तथ्य पुख्ता भी हो जाता है, जब अपनी जेल डायरी में नेहरू केवल इक्का-दुक्का उल्लेख ही कमला का करते हैं। हालाँकि १९३० से १९३५ तक एक हजार दिन कारागार में बितानेवाले नेहरू ने मौसम और पक्षियों के वर्णन में कहीं अधिक लिखा। मगर अपनी आत्मकथा उन्होंने समर्पित की "कमला को, जो अब नहीं रहीं।" अगर एक स्वस्थ युवती टीबी की मरीज हो जाये, तो उसका खास कारण जीवन के हालातों से जुड़ा होता है। आनन्द भवन में ननदों के साथ शायद वह निभा न सकी। विजयलक्ष्मी पण्डित ने इस अल्पशिक्षिता वधू को गँवार करार दिया था। यों शादी के दो वर्ष पूर्व इलाहाबाद में ही कमला को लाकर काँटे छुरी से खाना और अंग्रेजी बोलना भी सिखाया गया था। ससुर की दृष्टि से इस गुड़िया जैसी सुन्दरी और महात्मा गान्धी के शब्दों में "इस भगवद्भक्त आध्यात्मिक गृहिणी" कमला नेहरू ने शीघ्र ही अपनी अस्मिता को खोज लिया। खाकी वर्दी में उसने जब कांग्रेस युवतियों का भरी दोपहर इलाहाबाद में जुलूस बनाकर निकाला, तो दर्शक दंग थे। कलकत्ता में जब कमला रामकृष्ण मिशन गयीं, तो सास स्वरूपरानी ने सुझाया कि कम से कम गले में सुनहरी माला तो डाल ले। खाली बदन खराब लगेगा। कमला का जवाब सधा था : "भारतीय गरीब हैं। मैं कैसे आभूषणों का आडम्बर करूँ ?" कमला ने घरेलू औसत नारी के अपने मूल चरित्र को कभी नजरअन्दाज नहीं किया।

दिसम्बर १९३० में जवाहरलाल नेहरू जेल में थे। उन्होंने कमला को भी जेल जाने का आदेश दिया; पर वे नहीं गयीं। ससुर मोतीलाल नेहरू मृत्यु-शय्या पर थे। उनकी शुश्रूषा करना कमला ने धर्म समझा; हालाँकि पति काफी कुपित रहे।

कमला जब महात्मा गान्धी के साथ साबरमती आश्रम में १६२१ में थीं, तो कस्तूरबा को अपना आदर्श बनाया। वैभव पूर्ण खर्चीली जीवन-पद्धति के बजाय रेल के तीसरे दर्जे में यात्रा करना, चटाई पर सोना उनकी आदत बन गयी थी। प्रार्थना-सभा में बापू को सुनना नित्यकर्म था। कस्तूरबा की भाँति कमला का प्रण था कि वह पति की परछायीं नहीं, बल्कि साथी बनेगी। अग्नि के समक्ष खायी कसम का निर्वाह पूरी तरह करेगी। एक बार अपने जन्मदिवस १४ नवम्बर को पति जेल में कैद थे, तो पत्नी ने उसे संकल्प-दिवस के रूप में मनाया था।

अपने बीस वर्ष के दाम्पत्य-जीवन में प्रथम पन्द्रह वर्ष तो कमला एकाकी रहती थीं। पति से अपने हक का प्यार नहीं मिला था। इस बात को स्वयं नेहरू ने स्वीकारा कि कमला को उन्होंने उसकी मृत्यु के बाद ही जाना। तब तक बड़ी देर हो चुकी थी। मोतीलाल नेहरू के निधन के बाद कमला और जवाहरलाल निकट आये थे। कमला ससुर की लाड़ली हमेशा रही। जवाहरलाल नेहरू ने लेखक जान गुंथर को कमला के निधन के दो वर्षों बाद १६३८ में लिखा था कि कमला ने मेरे जीवन पर प्रभाव छोड़ा है। हालाँकि वह परोक्ष रूप से ज्यादा था। यह बात सच थी। जब लखनऊ के अस्पताल में ठीक चिकित्सा न हो पायी, तो कमला नेहरू को १६२६ के मार्च में पश्चिम यूरोप ले जाया गया। नेहरू-युगल अठारह माह साथ रहा। अपनी छात्रावस्था के यूरोप और अब प्रौढ़ उम्र में इस इलाके को नेहरू ने फिर से परखा। तब एडोल्फ हिटलर सत्ता की ओर रेंगता हुआ बढ़ रहा था। मानवता को दहशत हो रही थी। रोग-शय्या से कमला ने सुझाया था कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को भी अन्तरराष्ट्रीय विषयों पर रुचि और महारत हासिल करनी चाहिए। शीघ्र ही आनन्द भवन में कांग्रेस अध्यक्ष ने पार्टी का विदेशी विषयों का प्रकोष्ठ बनाया। इसके सचिव थे बर्लिन में शिक्षित युवा डा. राममनोहर लोहिया। पति के साथ कमला सोवियत संघ गयीं। नवम्बर १६२७ में समाजवादी क्रान्ति का पहला दशक मनाया जा रहा था। उसी समय पति जवाहरलाल ने योजना आयोग, समाजवादी समाज आदि की आवश्यकता का आभास पाया। कमला ने पति के उग्रवादी दर्शन का हमेशा समर्थन किया। लाहौर अधिवेशन के पहले पिता मोतीलाल से पुत्र जवाहरलाल कांग्रेस अध्यक्ष पद पाने वाले थे। पिता भारत को ब्रिटिश साम्राज्य में ही एक औपनिवेशक राज्य रहने देना चाहते थे। पुत्र तब पूर्ण स्वराज के पक्ष में था। मतभेद तीव्र थे। नौबत यहाँ तक आयी कि पिता ने पुत्र को घर छोड़ने का आदेश दिया। कमला पति के साथ चट्टान जैसी जुड़ी रहीं। बेटा-बहू के सामने मोतीलाल झुके। कांग्रेस ने अगले वर्ष पूर्ण-स्वराज का नारा दिया। आज उसी २६ जनवरी को हम हर वर्ष गणतन्त्र दिवस के रूप में मनाते हैं। जब नेहरू परिवार २८ मार्च १६३० को आनन्द भवन का हिस्सा देश को समर्पित कर रहा था, तो कानूनी दस्तावेज के साथ कमला ने कथा-हवन भी कराया।

जवाहरलाल नेहरू इन्दिरा गान्धी राजीव गान्धी

रामकृष्ण मिशन के कलकत्ता स्थित बेलूर मठ में कमला सदैव सन्तों से सत्संग करती थीं। माँ आनन्दमयी से १६३३ में दर्शन कर वह धर्मनिष्ठ खुद तो हुईं, अपनी पुत्री इन्दिरा को भी बनाया। पिता जवाहरलाल नास्तिक थे, उन्हें यह नापसन्द लगा। दो अवसरों पर कमला ने साबित कर दिया कि उसका पति उसकी निजी चीज नहीं; वरन् राष्ट्रसेवक है। तब पति-पत्नी १६३१ कर्नाटक के दौरे पर थे। संयुक्त प्रान्त यू.पी. में ब्रिटिश राज ने कानून रचा कि जो लोग सत्याग्रह में भाग लेंगे, उनके माता-पिता को भी सजा दी जायेगी। नेहरू को बाइबिल की उक्ति स्मरण आयी कि माता-पिता की करनी का फल सन्तानों को भुगतना पड़ता है। "अंग्रेजी राज बाइबिल के नियम को उल्टा लागू कर रहा है," कहा जवाहरलाल नेहरू ने। मगर अपने गिरते स्वास्थ्य के बावजूद भी कमला ने जवाहरलाल नेहरू को लखनऊ भेजा, जहाँ वे गिरफ्तार हुए।

दूसरी घटना अप्रैल १६३६ की है। जब यूरोप में कमला अत्यधिक रुग्ण थीं। तभी जवाहरलाल कांग्रेस अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे। उन्हें कलकत्ता सम्मेलन में पद सँभालना था। कमला की जिद थी कि नेहरू भारत चले जायें। पुत्री इन्दिरा गान्धी देखभाल कर लेंगी; पर नेहरू को सप्ताह भर ही ठहरना पड़ा; क्योंकि २८ फरवरी १६३६ को कमला का निधन हो गया। पति ने दाह-कर्म किया। कमला ने कभी अपने मित्र रहे सैयद महमूद को लिखा था कि उनकी बीमारी से अब मृत्यु ही छुटकारा दिला सकती है। मगर मौत आने से शर्माती है। वह आयी और सैंतीस-वर्षीया कमला को लेती गयी। इसका एहसास कमला को एक वर्ष पूर्व हो गया था जब एक बार वह पति से गले लगकर रोयी थीं मानो अन्तिम बार हो। अपनी मौत से कमला नेहरू उस प्रत्येक पति को अहसास करा गयीं कि पत्नी को साथी मानिये, छाया नहीं। बिछड़ने के पहले उसकी महत्ता जानिये। जवाहरलाल नेहरू की भाँति नहीं कि जब तक पत्नी को जाना, तब तक बड़ी देर हो चुकी थी। □

– ७, गुलिस्ताँ कालोनी, बन्दरियाबाग, लखनऊ– २२६००१ (उ.प्र.)
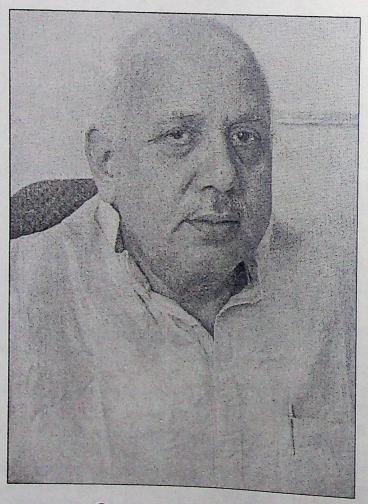
महीयसी महादेवी आक्रोश की अग्निरेखा

– शिव ओम अम्बर

महादेवी के व्यक्तित्व के साथ आजीवन 'नीर भरी बदली' वाला बिम्ब मुख्यतः संयुक्त रहा। कभी उन्हें छायावाद की दीपशिखा कहकर भी पुकारा गया, तो कभी आधुनिक मीरा की संज्ञा भी दी गयी। फिर भी वह वेदना के वटवृक्ष की अमृता शाखा और करुणा की सदानीरा की अन्तर्धारा के रूप में ही साहित्य-जगत् में अर्चित और चर्चित रहीं। उनके गद्य ने अवश्य उनकी वैचारिक प्रखरता का साक्षात्कार कराया और स्त्री-विमर्श का तारस्वरी उद्घोष करनेवाले इस दौर में भी हम स्त्री-चिन्तन के स्वस्तिकर आयामों को उनके विमर्शपूर्ण आलेखों में पा सकते हैं; किन्तु काव्य-जगत् में वह 'रश्मि' 'नीरजा' 'सान्ध्य गीत' और 'दीपशिखा' की ऐकान्तिक कवयित्री के रूप में ही प्रसिद्ध रहीं। छायावादी कवि-चतुष्टय में उनके अवदान को रेखांकित करते हुए कभी लेखक ने लिखा था कि छायावाद के चार मणि-स्तम्भों में यदि प्रसाद के पास दर्शन की हिमानी ऊँचाइयाँ हैं, निराला के पास दुर्दान्त पौरुष के पाञ्चजन्य का प्रचण्ड घोष है, पन्त के पास प्रकृति की सुकुमार चेतना की लावण्यमयी अभिव्यक्ति है, तो महादेवी के पास है यज्ञकुण्ड में स्वयं को होम करती हुई धूप जैसी देह और आलोक-रश्मियों की ऋचाएँ लिखती हुई दीपशिखा जैसी अस्मिता–

पंथ में मृदु स्वेद कण चुन, छाँह में भर प्राण उन्मन
तम-जलधि में नेह का मोती रखूँगी सीप-सी मैं धूप-सा तन
दीप-सी मैं।

किन्तु उनकी कविता का अन्तस्तत्त्व उनकी मृत्यु के बाद सामने आया।

११ सितम्बर, १९८७ को महादेवी के महाप्रयाण के उपरान्त जब उनके आत्मीय जनों ने उनके कागज-पत्रों को व्यवस्थित किया, तब 'अग्निरेखा' प्रकट हुई। यह एक ऐसी काव्यकृति की पाण्डुलिपि थी, जिसके लिए रचनाओं का सञ्चयन उन्होंने स्वयं किया था और जिसका नाम भी उन्होंने ही निर्धारित कर रखा था। साहित्य सहकार न्यास प्रयाग के माध्यम से जब १९९० में यह कृति राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली से प्रकाशित हुई, इसके प्रकाशकीय वक्तव्य ने सबका ध्यान आकृष्ट किया–

"अग्निरेखा महादेवी की अन्तिम काव्यकृति है और उनकी अनुपस्थिति में पहली। इसलिए इसका प्रकाशन जहाँ हमारे हृदय को गौरव और हर्षानुभूति से भर रहा है, वहीं उनके न होने की टीस को भी गहरा रहा है। ... इसके प्रकाशन के सन्दर्भ में यह तथ्य रोमाञ्चित करता है कि इसका नाम उन्हीं का रखा हुआ है और पाण्डुलिपि पर भी एक हद तक वे स्वयं कार्य कर गयी हैं। फिर भी ऐसी अनेक रचनाएँ थीं, जो बाद में मिलीं और पाण्डुलिपि में शामिल की गयीं और कुछ ऐसी थीं, जिनके एकाधिक प्रारूप उपलब्ध थे।... महादेवी जी की इन कविताओं का सम्यक् मूल्यांकन तो सहृदय और विद्वत् समाज स्वयं करेगा; लेकिन उनके सर्वमान्य और स्थापित काव्य-स्वर से इनका स्वर निश्चय ही भिन्न है– किञ्चित् परुष और आग्नेय। इन्हें पढ़ते हुए लगातार उस विषम काल-प्रवाह का अनुभव होता है, जो पिछले एक-डेढ़ दशक से महादेवी जी को क्षुब्ध और अशान्त किये हुए था।"

परिक्रमा और आत्मिका नाम से महादेवी के ऐसे दो काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए हैं, जिनमें स्वयं कवयित्री ने अपने समग्र काव्य-संसार से चयन करके रचनाओं को सुधी भावकों के समक्ष प्रस्तुत किया है; किन्तु 'अग्निरेखा' सबसे निराली है। इसकी कविताओं में कवयित्री की युगानुकूल परिवर्त्तित दृष्टि ही नहीं, स्वप्नभंग से निर्मित यथार्थपरक अभिव्यक्ति की हृदयद्रावक भंगिमा और कठोर धरातल पर खड़े होकर नव गन्तव्य के सन्धान का संकल्प भी परिलक्षित होता है। अपनी काव्य-यात्रा के पहले महत्त्वपूर्ण दौर का समापन करते हुए महादेवी जी ने कहा था–

देखकर निज कल्पना साकार होते
और उसमें प्राण का संचार होते
सो गया रख तूलिका दीपक चितेरा।

इन पंक्तियों में जीवन-प्रभात की जो अनुभूति है, वही अग्निरेखा की कविताओं में ज्वाला बनकर फूट निकली है।

अकारण नहीं कि वे गा उठी हैं–

पग में सौ आवर्त बाँधकर नाच रही घर-बाहर आँधी
सब कहते हैं ये न थमेगी, गति इसकी न रहेगी बाँधी
अंगारों को गूँथ बिजलियों में पहना दूँ इसको पायल
दिशि-दिशि को अर्गला
प्रभंजन ही को रखवाला करती हूँ।
नहीं हलाहल शेष, तरल ज्वाला से अब प्याला भरती हूँ।

महादेवी की भाषा प्रारम्भ से ही एक आभिजात्य गरिमा से युक्त रही है। यों तो सम्पूर्ण छायावाद खड़ी बोली की लक्षणा शक्ति का सर्वश्रेष्ठ निदर्शन है; किन्तु छायावाद के चार प्रमुख स्तम्भों में से महादेवी की भाषा का तो और भी अधिक महत्त्व है; क्योंकि गीतात्मकता को श्वास-श्वास में उन्होंने ही जिया है। उनके व्यक्तित्व की गुरुता, उनके अन्तस् की निश्छलता, उनके चिन्तन की ज्योतिर्मयता और उनकी करुणा की आर्द्रता नित्य निरन्तर उनकी भाषा में अभिव्यक्त होती रही है। 'अग्निरेखा' में महादेवी ने जहाँ चिन्तन के स्तर पर मकर-रेखा का अतिक्रमण किया है, वहीं भाषा के स्तर पर भी एक परिवर्त्तन उपस्थित किया है। महादेवी की भाषा भीड़ में अलग पहचानी जाती है अपनी मार्दवता अपनी करुणार्द्रता के कारण; किन्तु 'अग्निरेखा' में महादेवी की भाषा में भी, भंगिमा में भी बदलाव स्पष्ट दीखता है। आजीवन कल उमड़ कर आज मिट चलनेवाली नीर भरी बदली की मनोदशा जीती महादेवी अपने इस अन्तिम संकलन के उपोद्घात में ही ज्वाला के पर्व की चर्चा करती मिलती हैं–

किरण ने तिमिर से माँगा उतरने का सहारा कब ?
अकेले दीप ने जलते समय किसको पुकारा कब ?
किसी भी अग्निपंथी को न भाता शब्द का मेला,
पर्व ज्वाला का, नहीं वरदान की वेला।

तीस गीतों के इस अप्रतिम संकलन के अन्तिम दो गीतों में एक ओर उनकी विचार-दृष्टि की कुञ्जिका प्राप्त होती है और दूसरी ओर गीत-विधा के प्रति उनकी अकुण्ठ आस्था की भावोच्छल अभिव्यक्ति मिलती है। उन्तीसवें गीत में वह देश की तरुणाई को संघर्ष-शिक्षा तथा अग्नि-दीक्षा देते हुए उसे उद्धत ज्वार की उन्मद लहरों से टकराने की प्रेरणा देती हैं। जीवन भर अश्रुओं की अर्चना करनेवाली महादेवी अपनी विदा-वेला के गीत को समर्पण का अर्घ्य नहीं, संकल्प का मन्त्र और विद्रोह का शंखनाद बना देती हैं। वह स्पष्ट रूप से उद्घोषित करती हैं कि इस विषम युग में पथिक तभी अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल होगा, जब वह फूलों की ओट और सुगन्ध के घेरों का परित्याग करके तूफानी

भारत में प्रथम महिला

१. इन्दिरा गान्धी
(प्रधानमन्त्री)

९. एम. फातिमा बीबी
(न्यायाधीश–सर्वोच्च न्यायालय)

२. प्रतिभा देवी पाटिल
(राष्ट्रपति)

१०. पद्मा बन्धोपाध्याय
(नौसेना– अधिकारी)

३. विजयलक्ष्मी पण्डित
(राजदूत, अध्यक्ष-संयुक्त राष्ट्रसंघ)

११. सुरेखा यादव
(रेल चालक)

४. सरोजिनी नायडू
(राज्यपाल)
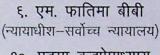
१२. राजकुमारी अमृत कौर
(कैबिनेट मन्त्री)

५. सुचेता कृपलानी
(मुख्यमन्त्री)

१३. नरगिस दत्त
(राज्यसभा पहुँचनेवाली अभिनेत्री)

६. मीरा कुमार
(लोकसभा अध्यक्ष)

१४. आरती प्रधान
(इंग्लिश चैनल तैर कर पार करनेवाली)

७. अन्ना मल्होत्रा
(आई.ए.एस. अधिकारी)

१५. दूर्बा बनर्जी
(व्यावसायिक महिला पायलट)

८. किरण बेदी
(आई.पी.एस. अधिकारी)

१६. आलू पस्तूर
(अध्यक्ष– अल्पसंख्यक आयोग)

सागर की चुनौती को स्वीकार कर निर्भयता के साथ लहरों को चीरते हुए आगे बढ़ेगा–

अब तक धरती अचल रही पैरों के नीचे
फूलों को दे और सुरभि के घेरे खींचे,
पर पहुँचेगा पथी दूसरे तट पर उस दिन
जब चरणों के नीचे सागर लहरायेगा।

वह बड़ी ही आश्वस्ति के साथ यह जीवन-मन्त्र देती हैं कि जो प्रलय को महोत्सव मानकर अग्नि के स्नान को आगे बढ़ सकेगा, वही अपने जीवन को स्वस्तिमय अमृतगीत बनाने में सफल होगा–

धूल पोंछ काँटे मत गिन, छाले मत सहला
मत ठण्डे संकल्प आँसुओं से तू नहला।
तुझसे हो यदि अग्नि-स्नात यह प्रलय महोत्सव
तभी मरण का स्वस्ति-गान जीवन गायेगा।
टकरायेगा नहीं आज उन्मद लहरों से,
कौन ज्वार फिर तुझे दिवस तक पहुँचायेगा ?

'अग्निरेखा' की संरचना और संयोजना के पीछे निश्चित रूप से आपात्‌कालीन परिवेश में महादेवी के चित्त में उभरी भाव-घटाओं की एक बड़ी भूमिका रही है। महादेवी एक सांस्कृतिक शब्द-पीठ थीं। पूरे देश में आपात्‌काल के विरुद्ध दो महिलाओं की आवाज उभरी थी– मराठी से दुर्गा भागवत और हिन्दी से महादेवी की। हिन्दी की दीपशिखा मशाल में परिवर्त्तित हो गयी थी। राजसत्ता थर्रा गयी थी।

संकलन का अन्तिम गीत महादेवी की गीति-निष्ठा का प्रभावी अभिव्यञ्जन है। जीवन की तिमिराच्छन्न राह में गीत का सम्बल हमारे लिए बहुत बड़ी आश्वस्ति है। महादेवी ने दीपक-राग बनकर चेतना की स्वर्ण-जुही को खिलाया है और तभी वह अपने समग्र जीवन पर दृष्टि डालकर अन्ततः कह पायी हैं–

राह थी अँधेरी पर गीत साथ-साथ चला।
उठकर आरोह ने बवंडर को साध लिया,
उतरे अवरोह ने तरंगों को बाँध लिया।
स्वर्ण-जुही फूल उठी
जहाँ दीप राग जला।
राह थी अँधेरी पर गीत साथ-साथ चला।

महादेवी हमारे लिए आँसू की नहीं, आग की वसीयत करके गयी हैं। ☐

– लुनहाई, फर्रुखाबाद (उ.प्र.)

महीयसी महादेवी
(जीवन-क्रमणिका)

१६०७–जन्म, फाल्गुनी पूर्णिमा के दिन फर्रुखाबाद (उ.प्र.)।

१६१२–मिशन स्कूल इन्दौर में शिक्षा–प्रारम्भ।

१६१६–विवाह। कुछ समय के लिए पढ़ाई स्थगित।

१६१६–क्रॉस्थवेट कालेज प्रयाग में पुनः शिक्षा प्रारम्भ।

१६२१–मिडिल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण।

१६२७–इण्टर की परीक्षा उत्तीर्ण।

१६२६–बी.ए. उत्तीर्ण। बी.ए. के बाद बौद्ध भिक्षुणी बनना चाहा; किन्तु बौद्ध महास्थविर के स्त्री के प्रति अवमानना के आचरण से विक्षुब्ध हो इस विचार का परित्याग।

१६३०–अस्वस्थता के कारण अध्ययन स्थगित।

१६३२–प्रयाग विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम.ए.। प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्य बनीं। 'चाँद' का निःशुल्क सम्पादन प्रारम्भ किया।

१६३३–प्रयाग में कवीन्द्र रवीन्द्र से भेंट। 'नीरजा' पर सेक्सरिया पुरस्कार।

१६४२–साहित्यकार संसद् की स्थापना।

१६४३–स्मृति की रेखाएँ पर द्विवेदी पदक मिला।

१६४४–हिन्दी साहित्य सम्मेलन का मंगलाप्रसाद पुरस्कार मिला।

१६५२–स्वतन्त्रता के पश्चात उत्तर प्रदेश की विधान परिषद् की सम्मानित सदस्या मनोनीत।

१६५६–पद्मभूषण की उपाधि से सम्मानित।

१६६६–षष्ठि प्रवेश के उपलक्ष्य में साहित्यकारों की ओर से कविवर पन्त ने संस्मरण–ग्रन्थ भेंट किया।

१६६६–विक्रम विश्वविद्यालय द्वारा डी.लिट् की उपाधि।

१६७७–कुमायूँ विश्वविद्यालय द्वारा डी.लिट् की उपाधि।

१६८१–साहित्य अकादमी की महत्तर सदस्यता (फेलोशिप)।

१६८२–उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा प्रथम भारत भारती पुरस्कार।

१६८३–यामा और दीपशिखा के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित।

१६८४–बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से डी.लिट् की उपाधि।

१६८७–११ सितम्बर को प्रयाग में अवसान।

महादेवी जी की रचनाएँ

–: गद्य कृतियाँ :–

अतीत के चलचित्र (रेखाचित्र)
श्रृंखला की कड़ियाँ
(नारी–विषयक सामाजिक निबन्ध)
स्मृति की रेखाएँ (रेखाचित्र)
पथ के साथी (संस्मरण)
क्षणदा (ललित निबन्ध)
साहित्यकार की आस्था
तथा अन्य निबन्ध
(आलोचनात्मक)
संकल्पिता (आलोचनात्मक)
मेरा परिवार
(पशु–पक्षियों के संस्मरण)
चिन्तन के क्षण।

–: काव्य कृतियाँ :–

नीहार
रश्मि
नीरजा
सान्ध्यगीत
दीपशिखा
प्रथम आयाम
सप्तपर्णा (अनूदित)
हिमालय

–: संकलन :–

यामा
(नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत का संग्रह)
सन्धिनी (कविता संग्रह)
गीत पर्व (कविता संग्रह)
परिक्रमा (कविता संग्रह)
दीपगीत (कविता संग्रह)
स्मृति चित्र (गद्य संग्रह)

–:अवसानोपरान्त प्रकाशित :–

अग्निरेखा (काव्यकृति)
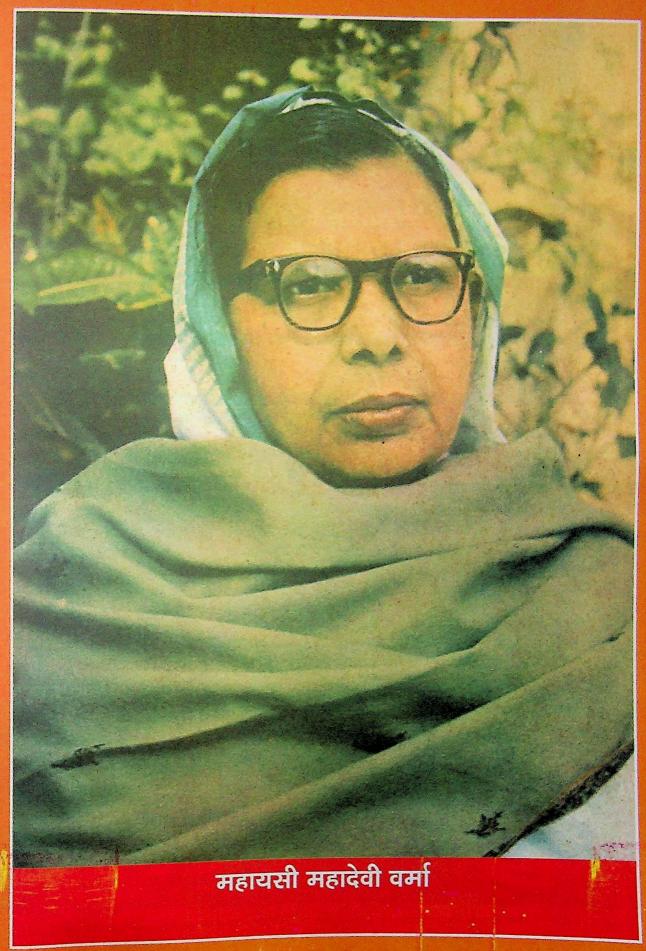
महायसी महादेवी वर्मा

भारतीय संस्कृति में मातृशक्ति का महत्त्व

– डॉ. विद्या विन्दु सिंह

भारतीय जन जीवन की मूल धुरी नारी (माता) है। यदि यह कहा जाय कि संस्कृति, परम्परा या धरोहर नारी के कारण ही पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती रही है, तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी। जब-जब समाज में जड़ता आयी है नारी शक्ति ने ही उसे जगाने के लिए, उससे जूझने के लिए अपनी सन्तति को तैयार करके, आगे बढ़ने का संकल्प दिया है। इस कार्य में लोकगीतों की विशिष्ट भूमिका सदैव से रही है। इन गीतों में उसे ऐसे संस्कार दिये गये है कि वह हर परिस्थिति से जूझने का संकल्प ले सके, शक्ति पा सके। लोकगीत संस्कृति की प्राणवान विरासत है। इन गीतों में संस्कृति के ऐसे मूल्य हैं जो मनुष्य-मनुष्य को ही नहीं, चर-अचर सृष्टि को आत्मीयता के एक सूत्र में बाँधने का संकल्प देते हैं। इनमें सहनशीलता व सेवा का संस्कार है। दूसरों का दुःख हाथ पसार कर लेने का दर्द है। अपने 'स्व' का विस्तार करते हुए सम्पूर्ण सृष्टि को एक ही सत्ता का प्रकाश देखने की दृष्टि है।

परिवार के केन्द्र में नारी है। परिवार के सारे घटक उसी के चतुर्दिक घूमते हैं, वही पोषण पाते हैं और विश्राम। वही सबको एक माला में पिरोये रखने का प्रयास करती है। यदि कहीं विखण्डन होता भी है, तो उस अविवेक को भी लोकगीतों में बराबर रेखांकित किया गया है। लोकगीतों में उसकी प्रसन्नता, उसकी पीड़ा, उसका त्याग और मर्यादा रक्षा के लिए किये गये उत्सर्ग सहज रूप में व्यक्त हुए हैं। यदि कहीं वह अपने कर्त्तव्य से च्युत हुई है या छल का सहारा लिया है, वह कटु यथार्थ भी इन गीतों के माध्यम से सामने आया है। आज जब हम अपनी संस्कृति की उस प्राणवान विरासत से धीरे-धीरे कटते जा रहे हैं। तब लोकगीतों के संस्कारों की ओर लौटना अपरिहार्य आवश्यकता बन गयी है; क्योंकि आज समाज में सामूहिकता का भाव चुकता जा रहा है। आज परिवार की कल्पना भी संयुक्त परिवार से घटते-घटते पति पत्नी और बच्चों तक ही सीमित होती जा रही है, जो अनेक प्रकार की विसंगतियों की टूटन, हताशा, बिखराव की परिस्थितियों को जन्म दे रही है। इस संक्रमण काल में लोकगीतों का संस्कार ही उस पारिवारिक आत्मीयता की ओर हमें फिर से लौटा सकता है।

लोकगीतों की रचना और भाव भूमि दोनों के केन्द्र में नारी है। इसका कारण है कि वह स्वभाव से ही भावुक, सरल और संवेदनशील है। नारी को ही मायके और ससुराल दोनों की ही परिस्थितियों में रखकर पारिवारिक सम्बन्धों की विविध भंगिमाएँ लोकगीतों में व्यक्त हुई हैं। उसकी तमाम भूमिकाएँ हैं। कभी वह पुत्री है तो कभी बहन, कहीं पत्नी है तो कहीं माँ, कहीं देवरानी-जेठानी है तो कहीं ननद या भाभी; किन्तु उसका मातृत्व उसके प्रत्येक रूप के ऊपर उभर आता है। कुछ सम्बन्ध ऐसे भी हैं, जहाँ कभी आत्मीयता न मिलने पर वह क्षुब्ध होती है, खीझती है, लड़ती है, रोती है। सम्बन्धों की यह कड़वाहट भी गीतों में सहज रूप से अभिव्यक्त हुई है; किन्तु उसमें कहीं गाँठ नहीं है। झगड़ा होता है फिर मान-मनौवल और सुलह भी हो जाती है। फिर से हास परिहास के दिन लौट आते हैं। आज जब संवादहीनता के दौर से हम गुजर रहे हैं, आत्मीय से आत्मीय स्वजन भी अपने भीतर बन्द होते जा रहे हैं तब उस मुक्त परिवेश वाले गीतों की ओर लौटना अपरिहार्य लगता है।

यह निर्विवाद है कि नारी मन की सहज अनुभूति यदि कहीं सहज और निष्कपट भाव से अभिव्यक्त हुई है, तो लोकगीतों में। इसमें उसके हृदय की एक एक परत बिछती गयी है। प्रिय के विदेश चले जाने पर उसके बिछोह के दुःख में वह यातायात के साधनों को खुलकर कोसती है फिर स्वयं को ही धैर्य बँधाती है कि इन साधनों का क्या दोष ? उन्हें तो पैसों के लिए ही विदेश जाना पड़ा।

लोकगीतों ने नारी की उस संवेदना को भी वाणी दी, जो धान की तरह एक जगह से उखाड़ कर दूसरी जगह रोप दी जाती है, फिर भी अपनी जड़ों के प्रति उसका मोह बना रहता है। प्रकृति के प्रतीक और उपमान लेकर स्त्री की स्थिति कई-कई ढ़ंग से बतायी गयी है। उसे आँगन की तुलसी भी कहा गया है और खूँटे की गाय तथा आँगन की चिड़िया भी।

लोकगीतों में एक ओर नारी की परवशता के मार्मिक चित्र हैं तो दूसरी ओर इस परवशता को तोड़कर सब कुछ कह देने का साहस है। किसी भी सत्ता को नकारने की चुनौती भी है और स्वाधीनता की आकांक्षा भी। दहेज की समस्या का समाधान भी इन गीतों में कन्या स्वयं सुझाती है। वह अपने पिता से कहती है मेरे लिए ऐसा वर ढूढ़ना जो श्रम करता हो, श्रम का महत्त्व जानता हो। बाबा ! तुम उसका आसन देखकर बैठने को बिछौना देना। पात्र देखकर पान का बीड़ा देना। अपनी सम्पत्ति देखकर दहेज देना और वर देखकर कन्यादान करना। मेरे लिए ऐसा वर ढूँढ़ना, जो श्रम का पसीना झलका कर विहँसता हो, जो पोथी विचारता हो, जो सबकी रक्षा करता हो। जहाँ पहुँचकर मैं एक सामान

न बन जाऊँ; बल्कि अपने व्यक्तित्व के साथ जिऊँ।

कन्या के जन्म पर अप्रसन्नता की बात भी है, भूसे का घर लीपकर उसमें प्रसव करने का सास द्वारा निर्देश भी है; किन्तु बहू के द्वारा विनम्रतापूर्वक प्रतिकार भी है। बालिका भ्रूण की हत्या, लोकगीतों की माँ नहीं स्वीकार करती। वह बालिका का महत्त्व समझाते हुए कहती है कि यह तो दोनों कुलों को प्रतिष्ठा देनेवाली है।

मुगलकाल में भारतीय ललनाओं को किस तरह अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए अपना प्राणोत्सर्ग करना पड़ा था, इसका सजीव उदाहरण लोकगीत प्रस्तुत करते हैं। कुसुमा और चन्द्रावली लोकगीत-गाथाएँ उस समय के जीवन्त दस्तावेज हैं। कुसुमा अपनी मान रक्षा के लिए जल समाधि ले लेती है। जब उसका भाई जाल डालता है तो उसमें नाक की नथ फँसकर आ जाती है, जो उसकी मर्यादा की प्रतीक है; पर मिर्जा के जाल डालने पर केवल घोंघे और शैवाल फँसकर आते हैं।

लोक गीतों में नारी का स्वरूप, उसकी संवेदनाएँ, उसके आदर्श, उसके सपने, उसका यथार्थ, सब कुछ अत्यन्त सहज भाव से व्यक्त हुआ है। आज संस्कृति के हासोन्मुख समय में अपनी इस वाचिक परम्परा की ओर लौटना इसलिए भी आवश्यक है कि नारी की चेतना का जागरण अपनी संस्कृति से जोड़कर ही करना शुभ होगा; क्योंकि आज नारी जागरण का जो एक विशेष प्रकार का नारा प्रचलित है, वह पश्चिम से आयातित है और उसका भारत के साथ कोई मेल नहीं खाता। कुछ पाश्चात्य संस्कृति में और मजहबी विश्वासों में नारी पाप का मूल है जबकि भारत में नारी आदि शक्ति है। नारी के इस शक्ति के रूप को भुला देने के कारण ही आज समाज विश्रृंखल हो रहा है और उसमें विकृतियाँ आयी हैं। लोकगीतों के संस्कार से मनुष्य के भीतर खोते जा रहे कोमल भाव को जगाया जा सकता है। उस कोमल भाव के जगने से ही समाज की हिंसा और क्रूरता को रोका जा सकता है। भारतीय संस्कृति में पुरुष और नारी परस्पर पूरक हैं, एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी नहीं। अर्द्धनारीश्वर की कल्पना ही इसका प्रमाण है। बराबरी की प्रतिस्पर्द्धा का भाव हमारी संस्कृति की देन नहीं है, बल्कि परस्पर सहयोग का भाव ही हमारे चिन्तन का आधार है। पौरुष और कोमलता दोनों का समन्वय ही सृष्टि को सही ढंग से सञ्चालित कर सकता है। हर व्यक्ति में पुरुष तत्त्व और स्त्री तत्त्व समान रूप से होते हैं। एक का कार्य सृष्टि या रचना और दूसरे का है सुरक्षा। इन दोनों तत्त्वों में से जिस तत्त्व की प्रधानता जिसमें हो जाती है, वही उसके स्वभाव का नियामक होता है। इसीलिए नारी में पुरुषोचित व्यवहार और पुरुष में स्त्रियोचित व्यवहार देखा जाता है। आवश्यकता दोनों में सन्तुलन की है और यह सन्तुलन देने की सामर्थ्य लोक साहित्य में है।

भारतीय कूटनीतिक कौशल को धार देनेवाली श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित

लम्बी गुलामी के बाद आजाद हुए भारत की कूटनीति की बागडोर सम्भालना आसान नहीं था; लेकिन विजयलक्ष्मी पण्डित ने न केवल इस काम को बखूबी अन्जाम दिया; बल्कि विश्व मञ्च पर भारतीय कूटनीतिक कौशल को धार भी दी।

उन दिनों देश आजाद हुआ था। हर क्षेत्र में एक नयी शुरुआत हो रही थी। बहुत कठिन दौर था वह, जब भारत की सोवियत संघ से नजदीकी बढ़ रही थी। कूटनीतिक सेवा में आने के बाद विजयलक्ष्मी पण्डित को १६४७ से १६४६ के बीच सोवियत संघ में राजदूत बनाकर भेजा गया।

भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतन्त्र है; लेकिन उसके समक्ष चुनौतियाँ भी कम नहीं हैं। आज भी और पहले भी। इन्हीं चुनौतियों के बीच भारतीय कूटनीति को अन्तरराष्ट्रीय मञ्च पर विजयलक्ष्मी पण्डित ने धार दी। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने भारतीय कूटनीति की एक स्वतन्त्र सोच विकसित की। विजयलक्ष्मी पण्डित ने आजादी के आन्दोलन में भी बढ़-चढ़कर भाग लिया था। १६२१ में उनका विवाह रणजीत सीताराम पण्डित के साथ हुआ। उनका परिवार भी स्वतन्त्रता संग्राम से जुड़ा था। इसके बाद देश आजाद हो गया। विजयलक्ष्मी पण्डित की भूमिका पहले भी देश से जुड़ी थी, आजादी के बाद भी जुड़ी रही।

विभिन्न देशों में राजदूत बनकर या अन्य कूटनीतिक पदों पर काम करते हुए विजयलक्ष्मी पण्डित ने बहुत ही कठिन दौर में भारत की अन्तरराष्ट्रीय नीति से दुनिया को परिचित कराया।

देश के पहले प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू की छोटी बहन विजयलक्ष्मी पण्डित का जन्म १८ अगस्त, १६०० को हुआ था। घर में पढ़ाई करनेवाली विजयलक्ष्मी ने देश की आजादी के बाद विभिन्न अन्तरराष्ट्रीय पदों पर अपनी सेवाएँ दीं। १६४७ से १६४६ तक सोवियत संघ में वह भारतीय राजदूत रहीं। १६४६ से १६५१ तक मैक्सिको में, १६५५ से १६६१ तक आयरलैण्ड में वह राजदूत रहीं। इसी दौर में वह ब्रिटेन में भारतीय उच्चायुक्त रहीं। १६५८ से १६६१ के बीच स्पेन में भारतीय राजदूत रहीं विजयलक्ष्मी पण्डित ने १६४६ से १६६८ के बीच संयुक्त राष्ट्र में भारतीय प्रतिनिधिमण्डल का नेतृत्व भी किया। १६५३ में विजयलक्ष्मी संयुक्त राष्ट्र महासभा की पहली महिला अध्यक्ष बनीं। भारतीय महिलाओं के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी।

भारत में १६६२ से १६६४ तक महाराष्ट्र की राज्यपाल रहीं विजयलक्ष्मी पण्डित बाद में सक्रिय राजनीति में आयीं और अपने भाई पण्डित नेहरू के लोकसभा क्षेत्र फूलपुर से चुनाव जीत कर संसद् में पहुँची। १६७६ में उन्हें संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग में भारतीय प्रतिनिधि नियुक्त किया गया। बाद में वे राजनीति और सार्वजनिक जीवन से अलग हो गयीं। कुछ ही बरस बाद १ दिसम्बर, १६६० को उन्होंने दुनिया को भी छोड़ दिया। □

ये लोकगीत सदियों से परम्परा में गंगा की भाँति प्रवाहित हैं, जिसमें निरन्तर समय के परिवर्तन के साथ आवश्यकतानुसार कुछ जुड़ता रहता है और जो अनावश्यक होता है वह छूटता जाता है; क्योंकि संस्कृति सतत प्रवाहित होती है। जो छूटता है वह भी धरोहर के रूप में सुरक्षित रहता है और जब इतिहास स्वयं को दुहराता है, तब उसकी प्रासंगिकता हो भी सकती है; किन्तु शाश्वत जीवन मूल्य परिवर्तित नहीं होते और उन्हें लोकगीतों की गंगा दूर-दूर तक पहुँचाती रहती है।

इसी प्रकार भारतीय पर्व त्योहारों विभिन्न संस्कारों और अनुष्ठानों में भी नारी की भूमिका विशेष महत्त्व रखती है।

धर्म-दर्शन भारतीय संस्कृति का प्राणतत्त्व है। धर्म जीवन जीने का ढंग है, सभ्यता, संस्कृति, आचार-विचार का संवाहक है, रीति-रिवाजों में अभिव्यक्त जीवन शैली है, जीने की प्रणाली है।

धर्म की परिभाषा चिन्तकों दार्शनिकों ने विभिन्न प्रकार से दी है। पर सभी परिभाषाएँ प्रायः धर्म के लक्षण ही बताती हैं। पुरखों ने धर्म और दर्शन से लोकानुष्ठानों को इसलिए जोड़ दिया कि धर्म व्यवहार में हो, प्रवाह में हो, वह जटिल शास्त्रीयता की गूढ़ गम्भीरता से मुक्त रहकर सामान्य जन की पहुँच में हो।

लोकानुष्ठानों में धर्म का स्वरूप मुखर हुआ है। प्रकृति से जुड़ाव, सम्पूर्ण प्रकृति का आवाहन और उसकी सहभागिता लोकानुष्ठानों का मूल स्वर है। अनुष्ठान लोकधर्म बन गये हैं और इन अनुष्ठानों ने एक सूत्र में समस्त भारतीयों को बाँधकर बिखरने से बचा रखा है।

सतही तौर पर देखें तो ये लोकानुष्ठान कर्मकाण्ड मात्र लगते हैं। पर इनके भीतर जो उत्सवधर्मिता है सुख को अहंकार बनने से रोकने का जो बन्धन है, दुख को सँभालने के लिए इनके माध्यम से व्यस्तता का जो कवच है वह अद्वितीय है।

अनुष्ठान जीवन का अंग है। इससे हम अपने अधूरेपन

को पूर्ण और सुन्दर बनाते हैं। अनुष्ठानों के गहरे अभिप्राय हैं। लोकानुष्ठान शास्त्रीय अनुष्ठानों के पूरक हैं। शास्त्रीय अनुष्ठान मन्त्रोच्चारण सहित विधिपूर्वक होते हैं। लोकानुष्ठान गीतों कहानियों के साथ समान या भिन्न अथवा आदिकालीन विधि विधानों के साथ किये जाते हैं। कभी–कभी लोकगीतों या वैदिक अनुष्ठानों के अभिप्राय ही सरल रूप में इनमें व्यक्त होते हैं। अनुष्ठान व्यक्त करते हैं कि विश्व की घटनाओं से हम कैसे जुड़ सकते हैं ? ये घटनाएँ हम पर प्रभाव डालती हैं क्योंकि ब्रह्माण्ड और पिण्ड अभिन्न हो जाते हैं। पिण्ड का यह अनुभव करना कि हम एक लघु इकाई में विराट हैं, यही धर्म है।

लोकानुष्ठान मनुष्य के लम्बे इतिहास की पूरी यात्रा को एक करके सम्पूर्ण अतीत को वर्तमान बनाकर प्रस्तुत करते हैं। अनुष्ठान अतीत नहीं हैं बल्कि अतीत के उन अंशों को व्यक्त करते हैं जो कहीं न कहीं हमारे स्पन्दन बने हैं।

अनुष्ठान के शब्दकोशी अर्थ– कार्यारम्भ, नियमपूर्वक कोई कार्य करना, शास्त्र विहित कार्य का आचरण, वाञ्छित फलाकांक्षा से देवताओं की आराधना, धार्मिक कृत्य, सत्कार, पूजा आदि।

अनुष्ठान का शाब्दिक अर्थ– अनु+स्था+लुट्+आप्ते।

अनुष्ठान का अर्थ-विस्तार व्यापक है। लोक में कर्मठ और शास्त्रों में धर्मविधि, लोकरीति, लोकाचार कहते हैं। शास्त्रों में उल्लेख है कि लोकाचार शास्त्र का विकल्प नहीं, पूरक है और शास्त्र विधि के साथ लोकाचार व शास्त्रीय मन्त्रों के साथ लोकगीत कथा कहानी चलते हैं। कुछ लोक रीतियाँ शास्त्र से अलग होते हुए भी पूरक हैं जैसे – सिल, लोढ़ा, मूसल, मथानी, आदि घरेलू उपकरणों से परिछना।

अनुष्ठानों के प्रकार–

नित्यानुष्ठान :– नित्याराधना, त्रिकाल संध्या, आराधना पूजन आदि।

नैमित्तिक फल प्राप्ति हेतु विधि–विधान सहित व्रत–पूजन। जैसे– सन्तान के लिए गंगा की मनौती, प्रदोष व्रत, फलदार वृक्षों तथा पूजनीय वृक्षों की पूजा आदि।

पितरों के लिए विभिन्न तिथियों पर मासिक तर्पण आदि कृत्य।

वार्षिक अनुष्ठान, श्राद्ध, वर्षी आदि। मृत्यु तिथि पर पितृपक्ष में तिथि खिलाना, श्राद्ध कर्म आदि। स्त्री पूर्वजों का श्राद्ध मातृनवमी को, पुरखों का पितृविसर्जन अमावास्या को करते हैं।

व्रत पर्व सम्बन्धी जैसे– करवाचौथ, सोमवती अमावास्या, वट-सावित्री, देवोत्थानी एकादशी, दीपावली, होली, कुम्भपर्व, आदि के व्रत–पूजन।

सूर्य/चन्द्र ग्रहण सम्बन्धी– इसमें स्नान–दान का विशेष महत्त्व है। कुछ विधि निषेध हैं। ग्रहण पर भोजन

माँ का एक जन्मोत्सव

जयराम वाटी में माँ सब बेटों को पहले खिलाकर फिर अन्य स्त्रियों के साथ खाने बैठती थीं, इसीलिए उनके भोजन के बाद बेटों का प्रसाद पाना कठिन बात थी। एक बार माँ की जन्मतिथि पर बेटों ने उनसे हठ किया कि माँ का भोजन पहले हो जाये, फिर वे लोग प्रसाद पायेंगे। माँ ने उस दिन आपत्ति नहीं की।

माँ ने जब श्रीठाकुर को भोग लगा दिया, उसके बाद नलिनी दीदी के कमरे में उनको एक अच्छे आसन पर बिठा दिया गया और उनके सामने भोग की समस्त वस्तुएँ उसी प्रकार सजा दी गयीं, जैसे किसी देवता को अर्पित की जाती हैं।

माँ अकेली ही भोजन करने बैठीं; किन्तु दो-तीन कौर मुख में देने के बाद ही एक शिष्य-सन्तान से, जो सब विषयों की देखभाल कर रहा था, कातर स्वर से बोलीं, "बेटों के खाने के पहले गले के नीचे भोजन नहीं उतरता।" माँ के मुख की ओर ताकने पर उनकी कातर अवस्था देख सन्तान को ऐसा लगा कि माँ के साथ अन्याय हो रहा है। माँ का खाना ही नहीं हुआ। बेटों को पहले खिलाकर फिर बेटियों के साथ स्वाभाविक रूप से खाने देना ही उचित था।

"तुम लोगों के खाने की जगह जल्दी तैयार करो" कहकर माँ उठ गयीं। खाने की सब चीजों को मात्र थोड़ा थोड़ा चखा भर। उस दिन की अनेक बातों ने चित्त को आकर्षित किया था। उस समय माँ की जन्मतिथि पर बहुत से शिष्य और साधु-भक्त जयराम वाटी में एकत्र हुए थे और बड़ी धूमधाम से उत्सव का आयोजन हुआ था। सुबह ठाकुर की पूजा के पश्चात् माँ खाट में बिछौने पर बैठ सन्तानों की पूजा ग्रहण करती रहीं।

उद्‌बोधन से कपिल महाराज नये कपड़े, फल, मिठाई आदि बहुत-सी चीजें लेकर आये थे। शरत् महाराज, योगीन-माँ, गोलाप-माँ और अन्य लोगों ने कई प्रकार की चीजें भेजी थीं। माँ नये वस्त्र पहन पश्चिम की ओर मुख करके गोद में दोनों हाथ रख पैर नीचे लटकाकर बैठीं। उनका मुखमण्डल प्रसन्न था और नेत्र करुणा से भरे थे।

एक सन्तान ने माँ के बगीचे के पीले एवं कत्थई रंग के गेंदा-फूलों की मनोहर माला तैयार की थी। कपिल महाराज ने माँ के गले में वह माला पहना दी। वह लम्बी माला शुभ्र वस्त्र और काले केशों के बीच ऊपर से नीचे तक लटकती हुई बड़ी ही शोभित हुई थी।

माँ का मुख-मण्डल आज असाधारण रूप से श्रीमण्डित लग रहा था। कमरा नैवेद्य, सुन्दर पुष्प, सुगन्धित धूप और उज्ज्वल दीपादि से सुशोभित हो देवलोक का भाव ला रहा था। पहले वरिष्ठ संन्यासीगण, बाद में ब्रह्मचारी और भक्त लोग माँ के चरणों में पुष्पाञ्जलि प्रदान कर भक्तिपूर्वक प्रणाम करने लगे। बाहर के लोगों ने भी, जो किसी कार्य से वहाँ उपस्थित थे, मुग्ध हो हाथ जोड़कर माँ के दर्शन किये और किसी-किसी ने पुष्पाञ्जलि दे चरण-स्पर्श कर प्रणाम किया। □
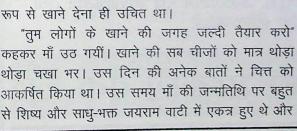
बनाना, खाना आदि वर्जित है। गर्भवती द्वारा कुछ काटना, तोड़ना निषिद्ध है। ग्रहण के दुष्प्रभाव, विकृति से बचने हेतु गर्भवती के उदर पर गोबर लगाने, खाद्य पदार्थों में तुलसीदल और बर्तनों में गोबर लगाने का विधान है।

संस्कारों के अनुष्ठान– शास्त्र विहित सोलह संस्कार हैं पर अब लोक प्रचलित संस्कार हैं–

गर्भाधान (सतैसा पूजना), जन्म (जातक) संस्कार, नामकरण, छठी, बरही, अन्नप्राशन (चटावन), मुण्डन (चूड़ाकर्म), कर्णवेध (कनछेदन), विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत (उपनयन), विवाह, द्विरागमन (गौना), मृत्यु संस्कार। इस सभी के अलग-अलग गीत हैं और सम्पन्न करने की लोकरीतियाँ हैं, जिन्हें स्त्रियों के द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है।

व्यावसायिक कार्यो से जुड़े अनुष्ठान :– फसल की पहली जोत, बीज बोने, फसल काटने जाने से पहले, समय-विचार, हल-कुदाल, हँसिया, हलवाहे को टीका, थापा लगाना, भूमि पूजन आदि।

बढ़ई, लोहार, कुम्हार द्वारा अपने औजार पूजकर कार्यारम्भ । हर कार्य को यहाँ उत्सव बना देने से कोई छोटा-बड़ा नहीं रह जाता, व्यक्ति अपने लिए ही नहीं, सबके लिए हो जाता है।

बीमारियाँ तथा संकट निवारण के अनुष्ठान :– भिन्न बीमारियों के लिए अलग-अलग विशेष पूजा, टोने-टोटके हैं। पीड़ित व्यक्ति के ऊपर से पैसा या वस्तु औछकर मन्दिर के लिए रखना या दान करना। यह 'उबारना' या 'अपवाञ्छित' है जिसका अर्थ है कि वहाँ से दोष निकालकर स्वस्थ करने की कामना।

दोष, पाप, शाप मोचन के अनुष्ठान :– इसमें विभिन्न प्रकार के व्रत-पूजन, दान, जप और प्रायश्चित्त-कृत्य होते हैं।

प्राण-प्रतिष्ठा सम्बन्धी अनुष्ठान :– प्रतिमा स्थापना पर विधि निषेधों के साथ होते हैं।

पवित्रीकरण के अनुष्ठानः–

क– शरीर सम्बन्धी :– किन्हीं परिस्थितियों में एक बार में, कुछ में बार-बार यह क्रिया की जाती है। ख– रजस्वला, प्रसूता, सूतक आदि के बाद शरीर की शुद्धता की सुनिश्चित रीतियाँ हैं। कितने स्नान किसे कराने हैं, यह भी सुनिश्चत है। ग– घर की शुद्धि के लिए धोना, पोंछना, पुताई करना, खली का पानी, गंगाजल छिड़कना। घ– बरतनों की शुद्धता, प्रसूता के बरतनों को मिट्टी, गोबर से साफ कर, तुलसीदल/गंगाजल डालकर पवित्र करना। ङ– देवस्थानों, मूर्त्तियों को पवित्र करने की विशिष्ट रीतियाँ हैं।

तीर्थयात्रा से सम्बन्धित अनुष्ठानः– यात्रा से पूर्व, यात्रा में तथा यात्रा से लौटकर किये जाते हैं जैसे– सबके यहाँ से अक्षत लेकर जाना और लौटकर भोज देना आदि। इन सभी अनुष्ठानों में, विविध अवसरों पर देवों, पितरों का आमन्त्रण, आवाहन। सबके अलग-अलग गीत हैं।

लोक-रीतियाँ वाचिक परम्परा से प्राप्त होती हैं। इनका मूल लक्ष्य मंगल भाव है जिसका संस्कार हो, जिस घर में संस्कार हो तथा पूरे कुल-परिवार सम्बन्धियों, सभी का मंगल हो, यही कामना रहती है। भोर और साँझ जगाने के गीतों में शास्त्र और लोक देवताओं, पितरों को आमन्त्रित करके मंगल हेतु प्रार्थना होती है। जिसका भाव है–

भोर हुई, पौ फूटी, आयी धर्म की बेला। वन में चिड़ियाँ बोलने लगीं, मृग चरने लगे, हलवाहे काँधे पर हल लिये चल पड़े, बहुएँ चक्की चलाने बैठ गयीं। जाकर डीह देवता को जगाओ, कलश के जल से मुख धोयें, दूध दुहना है। मचिया पर बैठकर भवानी माता दही बिलो रही हैं। बढ़े दही की दहेंड़ी, घी की गागर बढ़े। बेटियों–बहुओं के मायका ससुराल बढ़ें।

इसी प्रकार सन्ध्या जगाने का गीत है–

साँझ सँझौती तू पुतवंती.............

हे संध्या। हे सांध्य दीप। हे पुत्रवती। तुम्हारा आमन्त्रण आवाहन है। वर–कन्या चिरञ्जीवी हों।

अनुष्ठान सामग्री– प्रायः सभी अनुष्ठानों में कलश, दूब, जल, हल्दी, अक्षत, रोली, दूध, दही, घी, धूप, दीप, नैवेद्य, तिल, तेल, गुड़, नारियल, मेवे, नया वस्त्र आदि का उपयोग होता है। खेती के उपकरण जैसे– डलिया, हल का फाल, पटरा, जुआ, कुदाल, हँसिया, चाकू आदि का भी उपयोग होता है। साथ ही घरेलू उपकरण सिल, लोढ़ा, मूसल, ओखली, चकिया, मथानी, कलश आदि भी शुभ उपकरण के रूप में प्रयुक्त होते हैं।

लोक कलाओं को पूर्ण करने में प्रयुक्त द्रव्य हल्दी, जौ, चावल, तिल, आटा, ऐपन, विभिन्न रंगों की दालें तथा विभिन्न पत्तियों के रस, फलों के रंग, फूल, हरी सब्जियाँ,

गेरू (रामरज), खड़िया विविध रंग आदि।

अनुष्ठान की तैयारी :– स्थान, विशेष वस्त्र पहनना, सिर से नहाकर खुले केश छोड़ना। कुश की पवित्री पहनना, स्वच्छ आसन पर बैठना, उपवास आदि।

विविध अनुष्ठानों के अनुसार अल्पना, भित्तिचित्र बनानाः– अनुष्ठान स्थल को ऐसा तैयार करना कि वह अलग भी लगे और सम्पूर्ण सृष्टि का लघु रूप भी। सबसे सम्बद्ध लगे, संघटन भी हो। योग्य स्थान घोषित करके कब, कहाँ कैसे? कितने चौक, भित्तिचित्र, कोहबर बनेंगे, यह भी सुनिश्चित होता है।

अनुष्ठानिक क्रियाएँ या विधियाँ भी विविध हैं।

कायिक या स्थूलः– जो साकार दिखती हैं। विधि की क्रियाओं का क्रम, क्या पहनें ? कैसे बैठें ? हाथ कहाँ रखें ? कैसे चढ़ायें ? आदि भी सुनिश्चित रहता है।

वाचिकः– जो शाब्दिक आचार, लोकगीत, कथा, मन्त्र पढ़ने,कहने से पूर्ण होते हैं।

मानसिकः– जप, मनौती, विनती, ध्यान आदि मानसिक क्रियाएँ हैं।

तीनों में एक संगति होती है। स्थूल रूप में चित्रादि हैं, थाली कैसे सजायें ? कब कैसा वस्त्र विन्यास होगा सबकी सुनिश्चित रीति होती है।

अनुष्ठानों की प्रमुख विशेषताएँ एवं उद्देश्य : लोक चित्रों में समस्त सृष्टि की एकता और सम्बद्धता को बोध कराने वाले अंकन मिलते हैं। विशेषकर संस्कार सम्बन्धी अनुष्ठानों में सम्बंधों को जोड़ने का प्रयास है। विविध कर्मट विशेष सम्बन्धों द्वारा ही सम्पन्न होते हैं जैसे– बुआ द्वारा काजल लगाना, बहन द्वारा कलश गोंठना, सागर खोदना, बहनोई द्वारा 'टेकुई फेरना' आदि।

मंगल गीतों में नेग के लिए 'ठनगन' करने के और नेग में खुशी को बाँटने का भाव और अशुभ निवारण का शाश्वत भाव है। उदात्तता, कुछ काल्पनिक और कुछ वास्तविक भाव के साथ मिलती है । अपने उल्लास को, जीवन के क्षण को बड़ा करके देखने का भाव जैसे-- गीतों में सोने की थाली, फूलों की सेज का वर्णन। बबूल के नीचे मण्डप छाने के उल्लेख में कण्टकमय जीवन के यथार्थ का संकेत है। राम, कृष्ण, शिव लोकजीवन में वर के प्रतीक हैं। गीतों में राम के विवाह मे ही कष्ट का पूर्वाभास है यथा "पियरी धूमिल नहीं होगी, तभी इन्हें वन जाना पड़ेगा।" "जो जैसा करेगा वैसा भरेगा" का मुख्य भाव। कर्मफल, फलभोग की तैयारी। सामान्य जीवन की प्रतिष्ठा। राजा से रंक तक एक भाव। सबकी विवाह की पियरी एक सी। रत्न स्वर्ण की अँगूठी नहीं, बल्कि कुश की पवित्री, लड़की का पाटा और पत्तल का आसन सभी के लिए आवश्यक है। सभी के अनुष्ठान एक से हैं।

रिश्तों की व्यापकता विशिष्ट पहचान। परिवार, सम्बंधियों में अलग-अलग कार्य विभाजन है, जिसके बिना अनुष्ठान नहीं हो सकते। आशीर्वाद और मंगल का मूल भाव है।

अजीजन का बलिदान

कानपुर की वीरांगना, नर्तकी अजीजन ने १८५७ की क्रान्ति के दौरान राष्ट्रभक्ति का जो अनूठा परिचय दिया, वह स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है।

अजीजन ने हैवलाक व नाना साहब पेशवा की सेना के बीच हुए युद्ध में तलवार हाथ में लेकर गोरी सेना के विरुद्ध निरन्तर संघर्ष किया था। जब आगे चलकर कानपुर पर अंग्रेजों का पुनः अधिकार हो गया, तो अन्य भारतीय सैनिकों के साथ अजीजन को भी बन्दी बना लिया गया। हैवलाक ने अजीजन से कहा, 'क्षमा माँगने पर प्राणदान दिया जा सकता है– अन्यथा फाँसी पर चढ़ाया जायेगा।'

नर्तकी अजीजन ने निर्भीकतापूर्वक कहा, 'मैं राजगढ़ के जागीरदार की पुत्री अंगुला थी। अंग्रेजों ने मेरे पिता की जागीर पर कब्जा करने के बाद मेरा अपहरण कर मुझे कोठे पर पहुँचाकर नर्तकी बनने को बाध्य किया। अब मैंने ऐसे कुकर्मी गोरों के विरुद्ध युद्ध में भाग लेकर विदेशियों से प्रतिशोध ले लिया है।

एक गोरे की बन्दूक से निकली गोली ने अजीजन का शरीर शान्त कर दिया। वह हुतात्मा हो गयी। □

अनुष्ठानों से जुड़ी लोक कथाओं में पौरुषवान, साहसी को दैवी सहायता, नेकी की राह और जीवन के प्रति असीम आस्था तथा बदी के प्रति आक्रोश, घृणा, अवहेलना के भाव हैं।

लोकाचारों का निर्वाह स्त्रियाँ करती हैं। इसमें पुरुषों या पण्डितों का हस्तक्षेप नहीं, पण्डित कहते भी हैं लोकाचार स्त्रियाँ करायें।

अनुष्ठानों की कुछ रीतियाँ शास्त्र और लोक में समान है। मंगलघट, दीपक, आरती, चौक, आम्रपल्लव, सूप, अग्नि, चन्द्रमा, ध्रुवतारा जल की साक्षी आदि। ऋतु मंगल से जुड़े अनुष्ठानों में लोक, शास्त्र दोनों का योगदान है। पूरे भारत में व्रत–पूजन की रीतियों में विविधता में भी एकरूपता है।

नारी ही अनुष्ठानों की प्राण है, प्रयोक्ता और संवाहक है। नारी ने अनुष्ठानों के माध्यम से भारतीय संस्कृति की परम्परा को किसी न किसी रूप में बचाये रखा है।

कुछ अनुष्ठान केवल स्त्रियों द्वारा सम्पन्न होते हैं। इनके लिये शास्त्रीय मन्त्र, लोकाचार के वाचिक विधा के गीत, मन्त्र, उक्तियाँ हैं। मातृदेवी के अनुष्ठानों में कुमारी, सुहागिन पूजा के माध्यम से स्त्री का महत्त्व द्योतित है। नेपाल में सजीव कुमारी पूजा प्रतिदिन होती है।

हिन्दू धर्म में नारी का अनुष्ठानों में महत्त्व कुछ विशिष्ट कारणों से है। कुछ अनुष्ठान पत्नी के साथ किये जाते हैं। पाणिनि के अनुसार यज्ञ में पति के साथ पत्नी के संयुक्त हुए बिना यज्ञ सम्पन्न नहीं होता, इसलिए सीता के स्थान पर उनकी प्रतिकृति श्रीराम ने रखी।

विधुर व्यक्ति के द्वारा मंगल अनुष्ठानों का निषेध है क्योंकि पत्नी के साथ गाँठ बाँधकर किया गया अनुष्ठान पूर्ण और शुभ मानते हैं।

अनुष्ठान सम्पादन हेतु नारी के कई रूप हैं:-

कुमारी :- नवरात्र भर कन्याओं को भोजन कराकर उन्हें फल, द्रव्य या उपहार देते हैं।

संस्कारों पर पहले पाँच या सात कुमारियों का टीका कर, तब तेल, सिन्दूर बँटता है। मण्डप में पाँच कुमारियों के साथ कन्या को पहले खिलाकर कुँआरी पत्तल कर्मट होता है। कुँआरी के रूप में यह अन्तिम भोजन है। संक्रान्ति पर तथा नया अन्न ग्रहण करने से पहले पाँच कन्याओं को सत्तू, शरबत, नया अन्न खिला-पिलाकर तब खाते हैं। वर-कन्या को पाँच कुमारियाँ हल्दी, दूब से चूमकर आशीर्वाद देती हैं। गीत का भाव है:-

साठी के चावल, लहलही हरी दूब लेकर अमुक कन्या वर या कन्या को चूमती हुई हृदय से आशीष दे रही है:- दूल्हा-दुलहिन चिरञ्जीवी हों।

कुछ ऐसे व्रत हैं जिन्हें कन्याएँ ही करती हैं। जैसे सांझी, पिड़िया आदि।

सुहागिन:- सभी शुभ संस्कारों या व्रत अनुष्ठानों में सात या पाँच सुहागिन चाहिए। वे वर कन्या का टीका, आरती करती हैं, शुभ डलिया उठाती हैं। गौरी पूजन के समय देवता का भात बनता है, वे चावल कूटती हैं, फटकती हैं, धोइयाँ(उड़द) धोती हैं। उस समय का गीत है- "राजा दशरथ ने खेत जोतकर उड़द बोया, रानी कौसल्या ने उड़द दला और धोइया धोया" प्रश्नोत्तरी शैली में इसी तरह सभी सुहागिनों के दम्पति का नाम लिया जाता है।

कुछ व्रत, पूजन अनुष्ठान सात सुहागिनों को खिलाकर ही पूरे होते हैं जैसे- संकटा देवी की पूजा, औसान माई की "दुरदुरिया" आदि। इसमें सात ढेरियाँ, मिठाई, पकवान या गुड़, चबैना की बनती है। सातों सुहागिनों को महावर लगाकर फल, मिठाई देकर कथा होती है। सौभाग्य के व्रत पर्व केवल सुहागिनें ही करती हैं जैसे- करवा चौथ आदि। मंगल संस्कारों पर जो सुहागिन सारे कर्मट करती है, उसे देवतही कहा जाता है।

पुत्रवती:- हलषष्ठी, संकट, चौथ, जिउतिया(जीवित पुत्रिका) व्रत, सन्तान की कुशल दीर्घायु के लिए केवल पुत्रवती स्त्रियाँ ही करती हैं।

विधवा:- कुछ पूजा, अनुष्ठान केवल विधवा ही सम्पन्न करती हैं। जैसे- बंगाल में शालिग्राम की पूजा, स्पर्श 'सधवा' नहीं करती है। शुभ संस्कारों के अनुष्ठानों में विधवा की भागीदारी वर्जित है। अपवाद भी हैं।

समय के प्रवाह में या परिस्थितिवश इस परम्परा में परिवर्तन होते गये हैं और कहीं-कहीं रूढ़ियों के रूप में आलोचना का विषय भी बन गये हैं। आज आवश्यकता है कि उनके मंगल भाव, मानवीय आचार-विचार और आस्था की अभिव्यक्ति को फिर पहचाना जाय और मूल भाव व्याख्यायित किया जाये।

ये लोकानुष्ठान सांस्कृतिक साधना के पुष्प हैं, जो लोकजीवन में बिखरे पड़े हैं। इन्हें चुनकर, इनसे एकात्म होकर, इनकी माला गूँथने से ही राष्ट्र एक बना रहेगा। इस एकात्म संस्कृति से जुड़कर ही राष्ट्र की और व्यक्ति की अस्मिता बची रहेगी। संस्कृति का प्राणतत्त्व पाना है तो इन अनुष्ठानों को धर्म दर्शन की सहज दृष्टि से देखने जाँचने, परखने और अपनाने की आवश्यकता है।

और यह सहज दृष्टि समाज को देने का धैर्य और गुण नारी में है। वह अपनी ममता और स्नेह से इस दृष्टि का संस्कार घुट्टी के साथ अपनी सन्तानों को देती आयी है।

आज लगता है कि वह भारतीय जीवन मूल्यों का संस्कार देनेवाली घुट्टी चुक गयी है या यह देने का चाव ही चुक गया है। आज यह भी सोचने की जरूरत है कि वर्तमान पीढ़ी की बुजुर्ग नारियाँ स्वयं को क्यों हताश अनुभव कर रही हैं कि उनके दिये हुए संस्कार व्यर्थ सिद्ध हो रहे हैं। उनकी सन्तानें इन संस्कारों को पिछड़ेपन का नमूना समझकर अपने बच्चों को उससे वञ्चित कर रही हैं। ऐसी दशा में उनके जागरूक होने और उनके द्वारा अपनी लोक संस्कृति के महत्त्व को समझने स्वीकारने की जरूरत है। □

– *"श्रीवत्स", ४५ गोखले विहार मार्ग, लखनऊ–२२६००१*

झारखण्ड सरकार

हमारा संकल्प
हर घर तक पहुंचे
विकास की रोशनी

श्री अर्जुन मुण्डा
मुख्यमंत्री, झारखण्ड

हमारी सरकार संवेदनशील और पारदर्शी प्रशासन के लिये प्रतिबद्ध है।

हमारा संकल्प

- स्वच्छ, प्रभावी व गतिशील प्रशासन
- भ्रष्टाचार के विरुद्ध अभियान
- ई-गवर्नेन्स के माध्यम से प्रशासनिक कार्यों में पूरी पारदर्शिता
- राज्य सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि कर मानव विकास सूचकांक (एच0 ओ0 आई0) को उच्च स्तर पर लाना
- बेरोजगारों को नये रोजगार के अवसर – सरकारी व गैर-सरकारी क्षेत्रों में
- दक्ष मानव क्षमता के सृजन हेतु नये मेडिकल कॉलेज, इंजिनियरिंग कॉलेज, पॉलीटेकनिक व आई टी आई संस्थानों, पारामेडिकल संस्थानों व अन्य शिक्षण सस्थानों की स्थापना पर जोर
- पिछले 10 वर्षों में निर्धारित की गई प्राथमिकताओं की समीक्षा
- सत्ता का विकेन्द्रीकरण कर आम जनता की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिये दिसम्बर, 2010 तक पंचायत चुनाव पूर्ण करना
- सुखाड़ से राहत – वर्तमान में लाभान्वित परिवारों के अतिरिक्त 11,44,860 बीपीएल परिवारों को एक रुपया प्रति किलो0 की दर से खाद्यान्न तत्काल उपलब्ध कराना
- स्वर्णरेखा परियोजना सहित अन्य सभी सिंचाई परियोजनाओं को समयबद्ध कार्यक्रम में पूर्ण करना
- आधारभूत संरचना का द्रुत विकास
  - सभी को पेयजल
  - सबको शिक्षा व बेहतर स्वास्थ्य
  - सबको बिजली
  - सबके लिये गुणवत्ता से बनी सड़कें
- खाद्य सुरक्षा – प्रत्येक स्थिति में कोई व्यक्ति भूखा न रहे
- राज्य के प्राकृतिक संसाधनों का राज्य की जनता के लिये समुचित विकास व उपयोग – समेकित वन व जल प्रबंधन की अवधारणा

पी० आर० - 37393B (IPRD) 10-11

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, झारखण्ड द्वारा जनहित में प्रसारित

सम्पर्क :
झारखण्ड अंतरिक्ष उपयोग केन्द्र, अभियंत्रण छात्रावास I, धुर्वा, रांची (झारखण्ड)
दूरभाष : 0651–2401719, फैक्स – 2401720, ईमेल : jsacranchi@yahoo.co.in
वेबसाईट : http://210.212.20.94/jsac

एक सती ऐसी भी

– देवतास्वरूप भाई परमानन्द

(२३ दिसम्बर, १९१२ को राजधानी दिल्ली के चाँदनी चौक में वायसराय लार्ड हार्डिंग की शोभायात्रा पर क्रान्तिकारियों ने बम फेंककर पूरे ब्रिटिश साम्राज्य को दहला दिया था। इस आरोप में चार युवा क्रान्तिकारियों भाई बालमुकुन्द, अवधबिहारी, बसन्त कुमार विश्वास तथा मास्टर अमीरचन्द को ८ मई, १९१५ को दिल्ली में फाँसी पर लटका दिया गया। इनमें भाई बालमुकुन्द, क्रान्तिकारी भाई परमानन्द जी के चचेरे भाई थे। भाई परमानन्द जी ने 'कालेपानी की कहानी आपबीती' ग्रन्थ में भाई बालमुकुन्द की पत्नी रामरखी के आत्मोत्सर्ग का रोमाञ्चकारी वर्णन किया है, जिसे यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।– सम्पादक)

हार्डिंग पर बम फेंकने के आरोप में मास्टर अमीरचन्द, अवधबिहारी, भाई बालमुकुन्द और बसन्त कुमार को फाँसी की सजा तथा बलराज और हनुमन्त सहाय को सात-सात वर्ष के कारावास की सजा दी गयी। भाई बालमुकुन्द सहर्ष उस स्थान पर फाँसी पर चढ़ गये, जहाँ उनके पूर्वज भाई मतिदास को औरंगजेब की आज्ञा से आरे से चीर डाला गया था। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रामरखी अत्यन्त सुन्दर थीं। एक वर्ष पूर्व ही उनका विवाह हुआ था। भाई बालमुकुन्द के पकड़े जाने पर उसने फिर चारपाई पर पाँव नहीं रखा और अपने प्राणपति के फाँसी पाते ही स्वयं भी अपने प्राण त्याग दिये। 'आर्य गजट' पत्रिका ने इस घटना का बड़ी मार्मिकता से वर्णन किया है, जिसे हम यहाँ उसी रूप में दे रहे हैं–

भाई बालमुकुन्द

दर्दनाक सच्ची कहानी

'फूल खिला था। बुलबुल उसकी खूबसूरत मुलायम पंखुड़ियों को छू-छूकर गाती थी। गुलचीं आया। बुलबुल डर के मारे उड़ी और फूल के इर्द-गिर्द चक्कर लगाने लगी। गुलचीं ने निहायत बेरहमी से फूल तोड़ लिया। उसकी पंखुड़ियों को भी अलहदा-अलहदा करके टोकरे में डाल दिया। बुलबुल चीखी-चिल्लाई; लेकिन बेकार। आखिर बुलबुल बेहोश होकर गिर पड़ी और फूल के पास ही तड़प-तड़पकर मर गयी।'

x x x

गरमियों के दिन थे। वह जेल में थे, मैं घर में थी। छह महीने से मैं किसी घड़ी के इन्तजार में थी। लोग कहते थे– तू बावली न बन, वे छूट जायेंगे और आ जायेंगे। मैं कहती थी– वह दिन कब आयेगा, वह सूरज कब नमूदार होगा, वह रात कब खत्म होगी और वह शुभ घड़ी किस वक्त आयेगी।

मैंने दिल्ली काहे को कभी देखी थी; लेकिन वह दिल्ली में ही रखे गये थे। वहीं मुकदमा चल रहा था। मैं वहाँ पहुँची। देखा– जेल की कोठरियाँ बड़ी भयानक हैं और उन तंग कोठरियों के अन्दर सावन-भादों की गरमियों में उनको दिन–रात वहीं रहना पड़ता है। मैंने पूछा 'क्या चारपाई मिलती है ?' कहने लगे, 'क्या भोली बनी है, यहाँ चारपाई का क्या काम !'

'तो फिर काहे पर सोते हो ?'

'एक कम्बल जमीन पर बिछाकर सोता रहता हूँ।'

मैं अपने घर वापस आयी। रात को लोग खुली छतों पर चारपाइयाँ बिछाकर सोये। मैं सबसे निचली कोठरी में घुस गयी। एक ऊनी कम्बल जमीन पर बिछाया और उस पर लेट गयी। मच्छर भिनभिनाने लगे। कान के इर्द-गिर्द चक्कर लगाते थे। ऐसा मालूम होता था कि 'सर्मन' दे रहे हैं और कह रहे हैं कि नादान ! क्या ऐसी कोठरियों में गरमी के दिनों में कम्बल के ऊपर नींद आया करती है ?

मैं उठ बैठी। झरोखे में से चन्द्रमा की किरणें आ रही थीं। मैंने झुककर उसे देखा और पूछा– क्यों चमकनेवाले ! क्या तू उनके कमरे में भी चमकता है ? क्या तू देखता है कि वह भी रातें इसी तरह जागते और करवटें बदलते काट देते हैं ? चन्द्रमा की ओर बार-बार देखने पर भी मुझे कोई उत्तर नहीं मिला। मैं फिर लेट गयी। मच्छरों ने मेरा शरीर काट-काटकर फोड़ा बना दिया। अगली रात को भी मेरा बिस्तर इस कोठरी के अन्दर था। तीसरी रात मच्छर मुझ अबला पर– मुझे असहाय और दीन पाकर आक्रमण कर चुके थे कि अचानक मेरी सहेली आ गयी। कहने लगी, 'क्या मरने पर कमर बाँध ली है ?' मैंने पूछा, 'क्या, जो इस तरह सोते हैं वे...!' सहेली बोली, 'हाँ-हाँ, मर जाते हैं।' मेरी आँखें नम हो गयीं। आँसू टपक पड़े। सहेली हैरान रह गयी और अपने आपको कोसने लगी। मैंने कहा, 'किसी का कोई दोष नहीं। मेरे भाग्य फूट चुके हैं। वे जेल
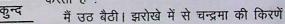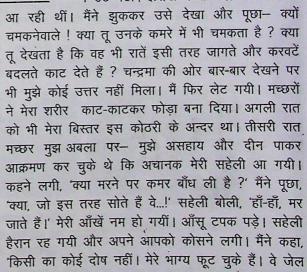
श्री अर्जुन मुण्डा
मुख्यमंत्री, झारखण्ड

झारखण्ड राज्य में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन 2005 से प्रारंभ हुआ है। विगत 6 वर्ष में स्वास्थ्य के क्षेत्र में काफी प्रगति हुई है। सरकार के द्वारा अंतिम गाँव के अंतिम व्यक्ति तक स्वास्थ्य सुविधाओं को पहुँचाने का लक्ष्य रखा है। राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन अन्तर्गत मुख्यमंत्री जननी शिशु स्वास्थ्य अभियान, सहिया कार्यक्रम, ग्राम स्वास्थ्य एवं पोषण दिवस, मोबाईल मेडिकल युनिट इत्यादि महत्त्वकांक्षी योजनाएं चला रही है।

मुख्यमंत्री जननी शिशु स्वास्थ्य अभियान :
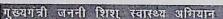
मुख्यमंत्री जननी शिशु स्वास्थ्य अभियान का उद्देश्य गर्भवती महिलाओं को संस्थागत प्रसव हेतु प्रेरित कर मातृ एवं शिशु मृत्यु–दर में कमी लाना है।

मुख्यमंत्री जननी शिशु स्वास्थ्य अभियान, भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन अन्तर्गत चलाई गई एक योजना है। इसमें सभी वर्ग के गर्भवती महिलाओं को संस्थागत प्रसव हेतु कुछ वित्तीय सहायता उपलब्ध करायी जाती है, जो इस प्रकार है :

ग्रामीण क्षेत्र में :

1. गर्भवती महिला को 1400 रू0 प्रदान किया जाता है।
2. सहिया (आशा) को गर्भवती महिला के प्रसव समय सहयोग हेतु 150 रू0, प्रसव पश्चात् नियमित देखभाल एवं B.C.G टीकाकरण करवा लेने पर 200 रू0 तथा वाहन से संस्था तक ले जाने हेतु 250 रू0 (कुल 600रू0) प्रदान किया जाता है।

शहरी क्षेत्र :

1. गर्भवती महिला को 1000 रू0 प्रदान किया जाता है।
2. सहिया (आशा) को गर्भवती महिला के प्रसव समय सहयोग हेतु 200 रू0 प्रोत्साहन राशि दी जाती है।

सहिया कार्यक्रम :

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन में समुदाय को स्वास्थ्य सेवाओं से जोड़ने वाली समुदाय की प्रतिनिधि आशा– सहिया है। झारखण्ड के संदर्भ में सहिया का अर्थ साथी है ।

वर्तमान में राज्य में 40964 सहिया है, जो समुदाय को स्वास्थ्य सेवाओं के संबंध में नियमित जानकारी पहुँचा रही है और परिवारों को स्वास्थ्य परामर्श देकर संस्थागत प्रसव हेतु प्रेरित करती है।

दुर्गम एवं दूरगामी क्षेत्रों के लिए सुविधा – मोबाईल मेडिकल युनिट

झारखण्ड स्वास्थ्य विभाग द्वारा राज्य भर में मोबाईल मेडिकल युनिट कार्यक्रम चलाया जा रहा है और राज्य के दूरगम क्षेत्रों में सफलतापूर्वक स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध करा रही है । जिसका मुख्य उद्देश्य आम जनमानस को स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध कराना है एवं बचाव और ईलाज कर IMR,MMR दर को कम करना और राष्ट्रीय ग्रामीण मिशन के उद्देश्यों को पूरा करना । इस मोबाईल हेल्थ युनिट में निम्न सेवाएँ प्रदान ECG, Ultra Sound, Pathological Test, X Ray के माध्यम से एवं दवा का वितरण किया जा रहा है। इसके अलावा राज्य भर में 66 मोबाईल मेडिकल युनिट 20 एन0जी0ओ0 के द्वारा चलाया जा रहा है। अप्रैल 09 से जुलाई10 तक – 17,31,299 लोगों की जाँच की गई है।

टीकाकरण

राज्य भर में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन द्वारा टीकाकरण का कार्यक्रम चलाया जा रहा है। जिससे लोगों को पोलियो मुक्त बनाया जाए। इस क्रम में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन ने काफी सफलता प्राप्त किया है।

परिवार नियोजन
छोटा परिवार समग्र विकास

झारखण्ड राज्य भर में परिवार नियोजन का कार्य राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन द्वारा सफलतापूर्वक किया जा रहा है। इसी को आगे बढ़ाते हुए 11 जुलाई से 17 जुलाई 2010 तक परिवार स्वास्थ्य मेला सप्ताह मनाया गया, जिसमें "छोटा परिवार समग्र विकास" के नारे को सफल बनाते हुए पूरे झारखण्ड में परिवार नियोजन सप्ताह को सफल बनाया गया।

झारखण्ड ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन, समिति
स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग
झारखण्ड, राँची

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, झारखण्ड द्वारा जनहित में प्रसारित

पी० आर० - 37393C (IPRD) 10-11

में जिस तरह सोते हैं, क्या मैं उसी तरह न सोऊँ ?'

x x x

अब फिर मुझे उन्हें देखने की अनुमति मिली। फिर दिल्ली पहुँची। इस बार हाल पूछा, तो कहने लगे, 'हम एक ही समय खाना खाते हैं।' मैंने पूछा, 'रोटी कैसी होती है ?' उन्होंने रोटी का एक टुकड़ा मुझे दे दिया। वह मैं ले आयी। देखा, उसमें चने भी हैं, गेहूँ भी हैं और भी कुछ पड़ा हुआ है। मैंने भी घर पहुँचकर उसी तरह का अनाज बनाया, पीसा, रोटी पकाई और एक समय खाकर दूसरे पहर पानी पर गुजारा किया। इसी तरह कई महीने बीत गये। मुकदमा लगातार चलता रहा और आखिर एक दिन जब मैं अपनी कोठरी में बैठी उनका चिन्तन कर रही थी, तो बाहर से रोने की आवाज आयी। मेरा कलेजा जोर-जोर से धड़कने लगा। मेरे माथे पर पसीना आ गया। दिल को थामे हुए मैं बाहर आयी। बाहर आकर देखा, वे उनका नाम ले-लेकर बातें कर रहे थे, 'फाँसी का हुक्म, फाँसी का हुक्म हो गया।'

x x x

उनको आखिरी बार देखने मैं फिर दिल्ली पहुँची। उसी जेल में, जहाँ जवानों की जवानियाँ खत्म कर दी जाती हैं, जहाँ नरम और नाजुक पंखुड़ियों को मसल दिया जाता है। मैं भी वहाँ पहुँची। दर्शन किये। दिल कहता था, कुछ बात कर लें, होंठ कहते थे कि हमारे अन्दर हरकत करने की ताकत नहीं है। तभी उनके होंठ हिले और आवाज आयी, 'प्राण प्यारी! संसार अमर है। जो आया है, उसे जाना है। कोई किसी का साथी नहीं। अपने आपको सौभाग्यवती समझो कि मैं देशहित के लिए अपनी आहुति देता हूँ।' मेरे कानों ने इस आवाज को सुना और आँखों ने छम-छम आँसू बरसाने शुरू कर दिये। बार-बार आँसुओं को रोकती थी कि जी भरकर देख तो लूँ; लेकिन वे रुकते ही न थे। अगले रोज हवन-सामग्री इकट्ठी की गयी। लोग कहने लगे कि आज उनका अन्त्येष्टि-संस्कार होगा। मैंने सोचा, यह अच्छा मौका मिलेगा। मैं अब उनसे मिलाप करूँगी; लेकिन थोड़ी ही देर के बाद सब वापस आ गये और कहने लगे कि लाश नहीं मिली।

x x x

फिर क्या हुआ, मैं आगे बयान नहीं कर सकती। आज पन्द्रह दिन से मैं व्रत में हूँ और अब वह घड़ी करीब आ रही है, जब मेरा मनोरथ पूरा हो जायेगा।

इतना कहकर देवी चुप हो गयीं। यह दर्द भरी दास्तान सुनकर मेरे रोंगटे खड़े हो गये। आँखों से आँसू बहने लगे। दिल में दर्द होने लगा। देवी ने फिर अनाज का एक दाना तक नहीं खाया और पानी का एक घूँट तक नहीं पीया। अठारह दिन इस तरह गुजार दिये। एक ही जगह पर बैठकर उसका ध्यान लगाये हुए, जिस पर उसका ध्यान टिकता था, देवी ने तपस्या की। और आखिर एक दिन जब

महारानी जयराज कुँवरि

— संजय मिश्र

बादशाह बाबर ने मूसा आशिकान व फजल अब्बास कलन्दर को खुश करने के लिए सेनापति मीर बाकी ताशकन्दी को जन्मभूमि राम मन्दिर गिराने का फरमान जारी किया। श्रीराम जन्मभूमि के मन्दिर को भूमिसात् कर देने के आदेश की खबर चतुर्दिक् दावाग्नि की भाँति फैल गयी। भीटी के राजा महताब सिंह के नेतृत्व में रामभक्त एकत्र हो गये। उस समय अयोध्या भारत का सबसे बड़ा नगर था (अबुल फजल)। रामकोट में उस समय २० बड़े फाटक थे। १७ दिन घनघोर युद्ध हुआ। (२३ मार्च, १९२८ कनिंघम, लखनऊ गजेटियर', भाग ३६, पृष्ठ ३) एक लाख ७४ हजार हिन्दुओं ने बलिदान दिया। गतभाग्य राम जन्मभूमि मन्दिर न बचा। मन्दिर के पुजारी श्यामनन्द मूर्त्ति लेकर अदृश्य हो गये। ३ जून, १५२८ को हंसबर के कुल पुरोहित पं. देवीदीन पाण्डे ने शबेरात के दिन, जब मुसलमान आमोद-प्रमोद में मग्न थे, ७० हजार युवकों के साथ शाही सेना पर आक्रमण किया। ६ जून, १५२८ को २ बजे तक शाही सेना की हिम्मत पस्त हो गयी। ७०० सैनिकों को अकेले पं. देवीदीन पाण्डे ने मारा ('तुजुके बाबरी' पृष्ठ ५४६)। मीर बाकी घायल हो गया। तब पं. देवीदीन को तोप से उड़ाया गया। अपने कुल पुरोहित के बलिदान को सुनकर हंसवर के महाराज व्याकुल हो गये और अपनी पत्नी महारानी जय कुँवरि से बोले, "अब तो इन आततायियों के अत्याचार सहे नहीं जा रहे हैं।" रानी ने उत्साह बढ़ाया और २५ हजार की सेना ले हंसवर नरेश रणविजय सिंह युद्ध में टूट पड़े। मीर बाकी अभी सँभल भी न पाया था कि इस अप्रत्याशित आक्रमण ने शाही सेना को भागने को मजबूर किया और रामजन्मभूमि मुक्त हो गयी। एक पखवाड़े बाद शाही सेना की नयी कुमुक आ गयी। ८–९ दिन के संघर्ष में महाराज रणविजय सिंह बलिदान हो गये।

महाराजा रणविजय सिंह के बलिदान का समाचार सुन महारानी जयकुँवरि ने सती होने का निश्चय किया। तभी उनके गुरु स्वामी महेश्वरानन्द ने उन्हें समझाया और महाराज के अधूरे पड़े कर्म को पूर्ण करने का संकल्प दिलाया। 'दरबार अकबरी' (पृष्ठ ३०१) लिखता है सुल्ताने हिन्द बादशाह हुमायूँ के वक्त संन्यासी स्वामी महेश्वरानन्द और रानी जयकुमारी दोनों अयोध्या के आसपास के हिन्दुओं को इकट्ठा करके लगातार हमले करते रहे।

चैत्र नवमी के दिन महारानी जयकुँवरि और स्वामी महेश्वरानन्द ने २५ हजार रामभक्तों के साथ एक बड़ा आक्रमण किया। मुगलों की सेना भाग खड़ी हुई। (रानी द्वारा जन्मभूमि पर कब्जा कर लेने की बात का उल्लेख किया गया है दरबार अकबरी में) युद्ध घोर से घोर हो रहा था। रानी रणचण्डी बन घात पर घात कर रही थी। अचानक एक मुगल सैनिक ने स्वामी महेश्वरानन्द पर आघात किया। रानी शत्रुओं को काटती स्वामी जी के पास पहुँची; परन्तु देर हो चुकी थी। राम का भक्त राम में विलीन हो चुका था। रानी के शरीर पर सैकड़ों घाव हो चुके थे। रानी मूर्च्छित होकर घोड़े से गिरी। एक संन्यासी ने शीघ्रता के साथ युद्धभूमि से उन्हें हटाया। रानी की तन्द्रा टूटी, उन्हें लगा, उनके पति महाराज रणविजय सिंह व उनके कुल पुरोहित उन्हें पुकार रहे हैं। रानी ने आँखें खोलीं। सामने एक तेजस्वी संन्यासी उन्हें सान्त्वना दे रहा है, "माँ ! आप का कार्य पूरा हो गया। आपने जो प्रकाश दिखाया, उससे आपका कुल, आपका देश धन्य हो गया।"

संन्यासी के अमृत-स्वर कानों में पड़ते ही रानी के नेत्रों में चमक आ गयी। आपने मुझे माँ कहा है, आप कौन हैं वत्स !

"मैं भगवान् राम का क्षुद्र सेवक गुरु नरहरिदास का शिष्य तुलसी।"

मैं कृतकृत्य हुई, अन्तिम क्षण में भगवान् ने आप जैसे सन्त के दर्शन कराये। रानी ने श्रद्धा से नेत्रों को झुकाया, एक प्रकाश निकला अनन्त में विलीन होने के लिए।

जनश्रुति है, महात्मा तुलसीदास ने उसी स्थान पर अपनी कुटी बनायी।

□

आसमान बिलकुल साफ था, सूरज चमक रहा था, लोग अपने काम में लगे थे, तब देवी अपनी जगह से उठीं। खुद ही साफ-सुथरा पानी लायीं, स्नान किया और शुद्ध वस्त्र पहनकर फिर पहली जगह पर लेट गयीं और कहने लगीं, 'प्रिय, बहुत दिन तक परीक्षा ले चुके। आज तो दामन न छोड़ूँगी। अब जुदा न हो सकूँगी।' ऐसा कहा और प्राण खींचकर छोड़ दिये। लोग कहने लगे, 'भाई बालमुकुन्द की धर्मपत्नी सती हो गयी।'

मैंने कहा, गुल पर बुलबुल निसार हो गयी। यह बनावट नहीं, असलियत है। कहानी नहीं, हकीकत है।

□

— प्रस्तुति : शिवकुमार गोयल

वीरांगना मूला गाभरू

– डॉ. देवेनचन्द्र दास 'सुदामा'

असमिया समाज का प्रधान अंग आहोम लोगों ने बर्मा याने म्याँमार से आकर असम में आहोम राज की स्थापना की थी। उन्होंने उदारता के साथ असमिया भाषा और हिन्दू-धर्म स्वीकार कर हिन्दू-धर्म और संस्कृति के विकास में अभूतपूर्व योगदान दिया था। असम में सन् १२२८ से १८२६ ई. तक उन्होंने राज्य किया था।

दिल्ली और गौड़ (बंगाल) के मुसलमान बादशाह और नवाबों ने १८ बार कामरूप याने असम पर आक्रमण किया था; परन्तु उन्हें हर बार बुरी तरह पराजित हो अपना-सा मुँह लेकर वापस जाना पड़ा था। सन् १४६७ में आहोम वंश में चहुंगमुंग स्वर्गदेव (राजा) हुए थे। उनके राज्यकाल में गौड़ के नवाब के सेनापति तुर्वक ने असम पर आक्रमण किया था। राजकुमार सुक्लेन को सेनापति बनाकर मुसलमानों के विरुद्ध युद्ध करने के लिए फौज भेजी गयी; परन्तु राजकुमार को बुरी तरह घायल होकर वापस लौटना पड़ा। उसके बाद राजा ने फ्राचेंगमुङ बरगोहाँई को सेनापति नियुक्त कर युद्ध में भेजा।

आहोम परम्परा के अनुसार युद्ध में जाते समय 'कवच' कपड़ा पहनकर जाना नियम था। विश्वास किया जाता था कि कवच कपड़ा शरीर में रहने पर युद्ध में मृत्यु नहीं होती है। एक ही रात में रुई से सूत कातकर कपड़ा बुनकर तैयार कर लेना चाहिए। इस प्रकार से प्रस्तुत कपड़े को कवच कपड़ा कहा जाता था। बाद में कपड़ा मन्त्रपूत कर धारण कर लेना नियम था। फ्राचेंगमुङ बरगोहाँई की पत्नी मूला गाभरु उस समय मासिक-धर्म से थी, जिसके कारण 'कवच कपड़ा' बुन नहीं सकती थी। पति से दो दिन प्रतीक्षा करने की विनती की; परन्तु दो दिन प्रतीक्षा करना सम्भव नहीं हुआ। मुसलमानों के साथ घमासान युद्ध हुआ, जिसमें आहोमों के प्रधान सेनापति फ्राचेंगमूङ बरगोहाँइ वीरगति को प्राप्त हुए। मूला गाभरु ने सोचा कि कवच कपड़ा न दे पाने के कारण पति की मृत्यु हुई। उसने पतिहन्ता से प्रतिशोध लेने का निश्चय किया और एक ही दिन में एक नारीवाहिनी संगठित कर ली। राजा ने कनचेंग बरपात्र गोहाँई को सेनापति नियुक्त कर विशाल वाहिनी युद्ध के लिए भेज दी। मूला गाभरु की अगुवाई में नारीवाहिनी मुसलमानों पर तेजी से टूट पड़ी। यह देखकर आहोम सेनाओं में अभूतपूर्व जोश आ गया। असीम साहसिकता के साथ मूला गाभरू ने युद्ध किया; परन्तु अन्ततः वे वीरगति को प्राप्त हुईं। उधर आहोम सेनाओं के प्रबल उत्साह और शक्ति के सामने मुसलमानों को पीठ दिखाकर भागना पड़ा। मुस्लिम सेनापति तुर्वक मारा गया। आहोमों की विजय हुई।

□

– *'ब्रह्मसत्र', तेतेलिया, गुवाहाटी– ७८१०३३ (असम)*

गुणवत्ता को ध्यान में रखते हुए योजनाओं के त्वरित निष्पादन के लिए भी कुछ ठोस उपाय किये गये हैं.

- गुणवत्ता पूर्ण पथों के निर्माण के लिए त्रि–स्तरीय गुणवत्ता नियंत्रण प्रणाली लागू है।
- त्रुटिपूर्ण निर्माण के जवाबदेह ठेकेदार एवं पदाधिकारी पर कार्रवाई की जा रही है।
- योजनाओं की प्रगति की जिला से लेकर मुख्यालय स्तर तक लगातार समीक्षा का प्रावधान है।
- कार्य लेकर लटकाने पर दोषी संवेदकों के विरुद्ध भी कार्रवाई की व्यवस्था है।
- निविदा निस्तार में पारदर्शिता एवं तेजी लाने के लिए इस वर्ष से e-procurement शत–प्रतिशत लागू कर दिया गया है।
- कार्य प्रबंधन (Contract management) एवं अन्य प्रासंगिक विषयों पर अभियंताओं को प्रशिक्षण दिया जा रहा है।
- ठेकेदारों को उनके द्वारा किये गए कार्य के लिए अविलंब भुगतान इलेक्ट्रॉनिक ट्रांसफर के माध्यम से सुनिश्चित किया गया है।

श्री अर्जुन मुण्डा
मुख्यमंत्री, झारखण्ड

साहेबगंज
बरहेट
दुमका
जामताड़ा
गोविन्दपुर
JHARKHAND

लगभग 1064 करोड़ रु0 के एशियन डेवलेपमेंट बैंक की सहायता से निर्माण होने वाले गोबिन्दपुर – साहेबगंज पथ संथालपरगना के विकास में एक नया अध्याय जोड़ने जा रहा है।

राज्य की खुशहाली और बहुआयामी विकास की ओर बढ़ते कदम

झारखंड सरकार

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, झारखंड द्वारा जनहित में प्रसारित

पी० आर० - 37393F (PRD) 10-11

नारी तुम केवल श्रद्धा हो...

– इन्दु गुप्ता

भारतीय सभ्यता, संस्कृति और परम्परा प्राचीन होने के साथ-साथ अत्यन्त समृद्ध भी है। प्राचीनकाल में सृष्टि के आधारभूत सर्जक तत्त्वों पृथ्वी (ठोस, धारिणी एवं दात्री), जल (आप), वायु, अग्नि यानी तेज तथा आकाश को स्त्री पुरुष दोनों के द्वारा ही समान रूप से पूजा जाता था ताकि ये प्रसन्नचित्त रहकर मानवजाति के मंगल एवं कल्याण की कामना करते हुए सदा अपने शान्त स्वरूप में स्थित रहें। प्राचीनकाल में पुरुष के साथ नारियों को भी विद्या एवं ज्ञानार्जन के साथ-साथ पूजा-अर्चना तपस्या-आराधना का समान अधिकार था तथा बालकों के साथ बालिकाओं का भी उपनयन-संस्कार किया जाता था। वैदिक काल में भी पुरुष नारी दोनों को ही विद्यार्जन, यज्ञ कर्मकाण्ड तथा वेद-पठन का समानाधिकार प्राप्त था। प्राचीनकाल में सावित्री, शैव्या, सुलभा, देवयानी, अपाला, मैत्रेयी, लोपामुद्रा, विदुला, शतरूपा, वृन्दा, भद्रा, उशिता, गार्गी, रोहिणी, शावती, गौतमी, द्रौपदी, मदालसा, अनसूया, कुन्ती, दमयन्ती, तारा तथा वैदेही जैसी वेद-ज्ञाता एवं विदुषियों ने नारी जाति के सम्मान एवं गौरव को बढ़ाया। विद्योत्तमा सरीखी वेद-विद्या में अति पारंगत अपने शास्त्रार्थ के बल पर बड़े-बड़े प्रकाण्ड पण्डितों को हराकर उनकी ईर्ष्या का भाजन बननेवाली सन्नारी के नाम से भी इतिहास अनभिज्ञ नहीं। कालान्तर में शनैः-शनैः पुरुष द्वारा अपने अहं के पोषण हेतु नारियों की विद्वत्ता को नकारते हुए तथा उन्हें तुच्छ सिद्ध करने की मंशा से उन्हें समानाधिकार से वञ्चित कर दिया गया। वर्त्तमान में नारी उत्थान व प्रगति के दावे करनेवाले युग की भी घोर विडम्बना रही है कि महादेवी वर्मा जैसी प्रख्यात साहित्यकार एवं विदुषी को इलाहाबाद जैसी नगरी में कोई वेद पढ़ाने को तैयार नहीं हुआ था; क्योंकि महादेवी एक स्त्री थीं और हमारे कर्मकाण्डी वेदपाठियों तथा महापण्डितों के मतानुसार स्त्रियाँ वेद-पठन की अधिकारी नहीं थीं।

२२ अगस्त, १९४६ को महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय की अध्यक्षता में गठित एक समिति द्वारा शास्त्रों के गम्भीर विश्लेषण तथा पुरातन पारम्परिक ग्रन्थों के गहन अध्ययन से अपकर्षित निष्कर्षों के आधार पर नारियों को भी पुरुषों के समान वेद-पठन एवं अध्ययन का अधिकार दे दिया गया था।

वर्त्तमान में पौरोहित्य के क्षेत्र में भी महिलाओं का प्रवेश, सहभागिता निश्चित ही पुरुष सत्तात्मक समाज की बेड़ियाँ तोड़कर स्वयं को साबित करने की दिशा में एक सर्वविदित एवं श्लाघनीय तथ्य है, जो भारतीय परम्परा, संस्कृति एवं इतिहास में नारियों की अहम् भूमिका हेतु मील का पत्थर सिद्ध हुआ है। दक्षिण भारत के कुछएक प्रान्तों जैसे कर्नाटक, तमिलनाडु, महाराष्ट्र इत्यादि में यह गौरवमयी परम्परा सुपुष्ट हो रही है। महाराष्ट्र में भी महिला पण्डितों द्वारा कर्मकाण्ड एवं अनुष्ठानादि सम्पन्न करवाने के कार्य को अत्यन्त सामान्य एवं सम्मानजनक रूप से देखा जाता है तथा इसी प्रकार दक्षिण-भारत में भी महिला पौरोहित्य तथा पण्डितों की समता एवं समानताभरी प्रथा अस्तित्व में है।

महाराष्ट्र की सांस्कृतिक राजधानी (संस्कारधानी) पुणे की धार्मिक, आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में कार्यरत समर्पित स्वनामधन्य संस्था 'शंकर सेवा समिति' की अति प्रगतिशील विचारधारा, वैज्ञानिक दृष्टिकोण की स्वामिनी तथा लैंगिक समानता की कट्टर समर्थक अध्यक्षा 'मामी थट्टे' के आह्वान पर १९७५ में नारी अस्मिता जागरण हेतु दो बिन्दुओं पर क्रान्तिकारी परिवर्त्तन लाये गये हैं–

प्रथम : प्राचीन वैदिक वैभव एवं संस्कृति की पुनःप्रतिष्ठा स्वरूप महिलाओं को पौरोहित्य तथा कर्मकाण्ड सम्पन्न करवाने की पात्रता दिलवाना।

द्वितीय : वेद-विद्या, ज्ञानार्जन की आकांक्षा रखनेवाली बालिकाओं के उपनयन अधिकार को सुनिश्चित करना।

इस सत्प्रयास की दिशा में अग्रसर होने के लिए 'मामी थट्टे' ने सर्वप्रथम डेढ़ सौ महिलाओं को पौरोहित्य के लिए प्रशिक्षित करने की व्यवस्था की। लगातार चार माह के लिखित एवं मौखिक प्रशिक्षण में मात्र बारह महिलाओं ने सफलता अर्जित की। प्रथम चरण में प्रशिक्षित श्रीमती शुभदा जोग तथा पुष्पलता धर्माधिकारी उन वरिष्ठ पण्डितों में से हैं, जो अब तक स्वयं साढ़े पाँच हजार से अधिक महिला पण्डितों को प्रशिक्षित कर चुकी हैं।

दूसरे पग स्वरूप श्रीमती शुभदा जोग ने नौ कन्याओं को जनेऊ संस्कार के लिए चुनकर उनका व्रतबन्ध यानी यज्ञोपवीत संस्कार का अनुष्ठान करवाया।

इस दौरान महिलाओं को परम्परावादी, पुरुषोचित संकीर्ण मानसिकता के पक्षधर पूर्वग्रही पुरुष समाज एवं पण्डितों के कड़े विरोध का सामना भी करना पड़ा। पुणे के ओंकारेश्वर मन्दिर में 'महारुद्र जप' करते समय महिला पण्डितों को पुरुष पण्डितों द्वारा रोकने का प्रयास भी किया गया। अन्ततः पुलिस के हस्तक्षेपोपरान्त ही प्रकरण शान्त हो सका। अब

गावँ को शहर से
पिछड़े क्षेत्रों को विकास से
उपेक्षितों को खुशहाली से
जोड़ती सड़क

समाहित विकास के डगर पर
कुछ बोलते आकड़ें

प्रधानमंत्री ग्राम सड़कों योजना के तहत नई सड़कों के निर्माण से ग्रामीण जीवन-व्यवस्था एवं व्यापार में काफी सुधार हुआ है। शिक्षा, स्वास्थ्य एवं व्यापार केंद्रों तक जनता का पहुँच आसान हुआ है। साथ ही लोगों की आकांक्षाएँ भी बढ़ी है।

- झारखण्ड में 1000 से अधिक आबादी के 2637, 500 से अधिक आबादी के 4327 एवं 250 से अधिक आबादी के 3425 लक्ष्य बसावट चिहित कर इन्हें जोड़ने के लिए सड़कों का कोर नेटवर्क तैयार किया गया है।
- इस आकलन के अनुसार लगभग 17352 कि0मी0 पथों के निर्माण की आवश्यकता है।
- पूर्व से बने हुए 9561 कि0मी0 पथों के सुदृढ़ीकरण (अपग्रेडेशन) का भी लक्ष्य है।
- इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु केन्द्र सरकार से कुल 11442 कि0मी0 लंबाई के 2585 पथों के निर्माण की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है।
- माह जुलाई तक कुल 1449.53 करोड़ रुपए व्यय कर 5288 कि0मी0 लंबाई में पथों का निर्माण पूर्ण कर 2271 बसावटों को जोड़ा जा चुका है।
- इसी अवधि में 2026 बसावटों को राज्य योजनाओं के अंतर्गत जोड़ा गया है।
- अब तक प्रधानमंत्री ग्रामीण सड़क योजना के अन्तर्गत 800 गांवों से सड़क संपर्क जुड़ा और 2010-11 में 1350 गांवों को 3800 कि0मी0 पथ निर्माण के माध्यम से जोड़ा जायेगा।

तो शनैः-शनैः अनुकूलता की बयार बहने लगी और उसके बाद तो १६८३ में स्विटजरलैण्ड स्थित ओंकारेश्वरनाथ आश्रम में महिला पुरोहितों को विशेष आमन्त्रण पर बुलाया गया। तत्पश्चात् तो अन्य देशों में भी आमन्त्रण पर उनके जाने का पथ प्रशस्त हो गया।

वर्त्तमान में ये विदुषी महिलाएँ गृह-प्रवेश, विवाह, सगाई, व्रत-पर्व, यज्ञ अनुष्ठान अत्यन्त कुशलता से सम्पन्न करवा रही हैं और इन्हें अत्यन्त सम्मान की दृष्टि से देखा-जाना जाता है तथा पुरुष समाज में भी उन्हें लेकर कोई पूर्वग्रह अथवा दुराग्रह दिखायी नहीं देता।

अतीत के बर्मा तथा वर्त्तमान के म्यॉंमार में एक पुरातनपन्थी परम्परावादी आर्यसमाजी परिवार में जन्मी स्नेहलता शर्मा भी इसी प्रकार की सन्नारी हैं, जो १६५३ भारत में आ गयीं। उनके दादा पुरोहिताई करते थे तथा माता-पिता परिवारजन नियमित रूप से यज्ञ, पाठ इत्यादि करते थे। परिवार में मिले विशुद्ध सात्विक, आध्यात्मिक धार्मिक वातावरण व संस्कारों के कारण तथा अध्यात्म में विशेष रुचि के कारण उन्हें वैदिक रीति-रिवाज, यज्ञ विधि-विधान बालपन से ही कण्ठस्थ थे। मेरठ में अर्थशास्त्र में परास्नातक डिग्री प्राप्त कर उन्होंने वहीं स्थानीय आर.जी. कालेज में अध्यापन कार्य शुरू कर दिया तथा १६६१ में विवाहोपरान्त वे अपने वकील पति के साथ बंगलूर आ गयीं। वहाँ एक पारिवारिक मित्र वरिष्ठ आर्य समाजी के.एल. पोद्दार के सान्निध्य में आयीं। उन्होंने स्नेहलता की वैदिक रीति-रिवाजों कर्मकाण्ड तथा दर्शन में अभिरुचि को पहचानकर उन्हें भारतीय परम्पराओं वैदिक मन्त्रों शब्दों में निहित गूढ़ अर्थों तथा वैज्ञानिक तथ्यों को समझाया, तो स्नेहलता ने वैदिक विषयक मन्त्रों को समग्रता, गम्भीरता से पुनः गहन अध्ययन किया।

१६६० में उनके किसी रिश्तेदार की शादी के अवसर पर जब पण्डित ऐन मौके पर विवाह-स्थल से नदारद हो गया, तो अचानक उस विषम स्थिति से उबरने के लिए स्नेहलता के परिजनों ने उन पर विवाह-संस्कार सम्पन्न करवाने के लिए दबाव बनाया, तो वे उस अप्रत्याशित स्थिति में विस्मित हो भौचक रह गयीं कि उनके परिजन उनकी विद्वत्ता पर इतना भरोसा कर रहे हैं, वह भी इस पुरुष सत्तात्मक समाज में; परन्तु सबने कहा कि वे घर में इतनी बार पूजा-पाठ करवा चुकी हैं तथा उन्हें सभी विधि-विधान, मन्त्र, रीति-रिवाज भली भाँति मालूम हैं, तो स्नेहलता ने उत्साहित होकर अपने अर्जित एवं अभ्यासगत ज्ञान के बूते पर विवाह-- संस्कार सम्पन्न करवाया। आज बंगलूर में ही नहीं; बल्कि देश-विदेश के प्रतिष्ठित औद्योगिक घरानों में भी उन्हें कर्मकाण्ड सम्पन्न करवाने के लिए बुलाया जाता है। भारतीय संस्कृति की प्रतीक भव्य सिल्क साड़ी में लिपटी प्रभावशाली व्यक्तित्व की स्वामिनी सुविज्ञ,

झारखण्ड सरकार

श्री अर्जुन मुण्डा
मुख्यमंत्री, झारखण्ड

निरन्तर प्रगति के पथ पर - उद्योग विभाग

- **निर्यातोन्मुखी इकाई** - झारखण्ड राज्य में 21 लघु/मध्यम/वृहत इकाइयाँ हैं जो अपने उत्पादित सामग्रियों का निर्यात करती हैं।
- **भूमि की उपलब्धता** - झारखण्ड राज्य में कार्यरत चार औद्योगिक क्षेत्र विकास प्राधिकार यथा रियाडा, राँची/बियाडा, बोकारो/आयडा, आदित्यपुर, जमशेदपुर एवं एसपीयाडा, दुमका में नये औद्योगिक इकाइयों की स्थापना हेतु 636.14 एकड़ भूमि उपलब्ध है।
- **ग्रोथ सेंटर** - बरही, हजारीबाग में निर्यात को प्रोत्साहित करने एवं समग्र औद्योगिक विकास के लिए भारत सरकार के सहयोग से ग्रोथ सेंटर की स्थापना की जा रही है।
- नामकुम, राँची में Soft Ware Technology Park की स्थापना की गयी है। वर्तमान में 50 कि0मी0 के दायरे में connectivity की सुविधा उपलब्ध है।
- **फूड पार्क** - खाद्य प्रसंस्करण उद्योग को बढ़ावा देने के उद्देश्य से गेतलसूद, राँची में फूड पार्क की स्थापना की दिशा में कार्य चल रहा है।
- **नॉलेज पार्क** - खूंटी में 700.00 एकड़ में नॉलेज पार्क की स्थापना हेतु एक महात्वाकांक्षी योजना का कार्य प्रगति पर है। प्रस्तावित नॉलेज सिटी में विश्व स्तरीय शिक्षण संस्थान यथा-मेडिकल, इंजिनियरिंग, प्रबंधन, आई0टी0 इत्यादि की स्थापना की जानी है। देश के इच्छुक उद्यमी उक्त प्रस्तावित नॉलेज सिटी में शिक्षण संस्थान की स्थापना कर सकते हैं। इन्हें राज्य सरकार हर तरह की बुनियादी सुविधाएँ उपलब्ध करायेगी।
- **सिटी सेंटर** - उद्यमियों को वाणिज्यिक एवं आवासीय सुविधा उपलब्ध कराने के उद्देश्य से आदित्यपुर औद्योगिक क्षेत्र विकास प्राधिकार, जमशेदपुर में सिटी सेंटर की स्थापना का कार्य प्रगति पर है।
- **आदित्यपुर टॉल ब्रिज** - आदित्यपुर औद्योगिक क्षेत्र विकास प्राधिकार, जमशेदपुर में उद्यमियों को आधारभूत सुविधाएं उपलब्ध कराने हेतु खरकई नदी पर टॉल ब्रिज का निर्माण कार्य प्रगति पर है।

देश एवं देश के बाहर के उद्योगपति झारखण्ड राज्य में पूंजीनिवेश एवं उद्योगों की स्थापना हेतु निम्नांकित कार्यालयों से सम्पर्क कर सकते हैं। राज्य सरकार इन्हें हर प्रकार की बुनियादी सहायता उपलब्ध करायेगी।

(i) सचिव उद्योग, उद्योग विभाग, तृतीय तल्ल नेपाल हाउस, डोरण्डा, राँची दूरभाष – 0651 2490746 फैक्स – 0651 2491587

(ii) निदेशक उद्योग, उद्योग निदेशालय, तृतीय तल्ल नेपाल हाउस, डोरण्डा, राँची। दूरभाष– 0651 2491844 फैक्स – 0651 2491884

(iii) प्रबंध निदेशक, राँची औद्योगिक क्षेत्र विकास प्राधिकार, रियाडा भवन, मेन रोड, राँची। दूरभाष – 0651 2330817 फैक्स – 0651 2330407

(iv) प्रबंध निदेशक, आदित्यपुर औद्योगिक क्षेत्र विकास प्राधिकार, विकास भवन, आदित्यपुर, जमशेदपुर। दूरभाष – 0657 2371691 फैक्स – 0657 2371693

(v) प्रबंध निदेशक, बोकारो औद्योगिक क्षेत्र विकास प्राधिकार, विकास भवन, बालीडीह, बोकारो। दूरभाष – 0654 2232800 फैक्स – 0654 2253255

(vi) प्रबंध निदेशक, संथाल परगना औद्योगिक क्षेत्र विकास प्राधिकार, दुमका। दूरभाष – 06434 222502 फैक्स – 06434 222287

उद्योग विभाग, झारखण्ड सरकार
नेपाल हाउस, राँची

फोन : 0651 - 2491844, 2490746, फैक्स : 0651 - 2491884

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, झारखण्ड द्वारा जनहित में प्रसारित

पी० आर० - 37393E (IPRD) 10-11

प्रबुद्ध स्नेहलता जी ग्यारह सौ से अधिक विवाह, नामकरण, मुण्डन, यज्ञ, शान्ति-पाठ सहित लगभग ३२ अन्तिम संस्कार भी करवा चुकी हैं। हिन्दी, अंग्रेजी, तमिल, संस्कृत भाषा में पारंगत ये कर्नाटक, गोआ, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, बिहार और पंजाब के अतिरिक्त विदेश में अमेरिका, यूरोप, कनाडा आदि में भी विवाह करवा चुकी हैं। प्रारम्भ में वे सिर्फ संस्कृत में ही मन्त्रोच्चार करती थीं, फिर उनका अंग्रेजी में अनुवाद करके सुनाती थीं। बाद में उन्होंने दक्षिण-भारतीय भाषाओं तथा अंग्रेजी में भी मन्त्रोच्चार करना शुरू कर दिया। वे शॉर्ट कट में विश्वास न करते हुए पूर्ण विधि-विधान के साथ इस धार्मिक आध्यात्मिक निःस्वार्थ निःशुल्क सेवा-अनुष्ठान को पूर्ण सद्भावना से सम्पन्न करती हैं।

१९६७ में उन्होंने अपनी एक विधवा सखी की पुत्री का विवाह संस्कार सम्पन्न करवाया, जिसमें कन्या अपनी विधवा माँ द्वारा अपना कन्यादान करवाने की इच्छुक थी; परन्तु पुरातनपन्थी पुरुष पण्डितों ने विधवा माँ द्वारा कन्यादान करने की बात पर विवाह रस्में करवाने से इनकार कर दिया, तो ऐसे में स्नेहलता जी ने तर्क दिया कि विधवा हो जाने पर क्या माँ का दर्जा खत्म हो जाता है, माँ से बढ़कर कन्यादान करने का अधिकारी और कौन हो सकता है कहकर उन्होंने विवाह सम्पन्न करवाकर एक क्रान्तिकारी युग-परम्परा का शिलान्यास किया। उनके स्वयं विधवा हो जाने पर भी लोगों ने कहा कि विधवा होने के कारण उन्हें विवाह-कार्य सम्पन्न करवाने का अधिकार नहीं, तो दिल्ली की सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने उन्हें बताया कि विधवा होने से ऐसी कोई रोक या प्रतिबन्ध नहीं है, अतः वे निरन्तर गली-सड़ी त्याज्य परम्पराओं का त्याग कर निःस्वार्थ तथा पूर्ण सात्विक भाव से निज देश तथा विदेश में बसे भारतीयों के बीच अपनी संस्कृति की जड़ें मजबूत कर रही हैं। ◻

— ३४८/१४, फरीदाबाद– १२१००२ (हरियाणा)

वीरांगना प्रभावती

धनुर्धारिणी स्त्री, गुप्तकाल (श्री जिनेश्वरदास संग्रहालय)

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने नागवंश की राजकुमारी कुबेरनाता से विवाह किया, जिससे प्रभावती गुप्त का जन्म हुआ। प्रभावती अतीव सुन्दरी होने के साथ-साथ अत्यन्त विदुषी थी। उसका विवाह वाकाटक नरेश रुद्रसेन (द्वितीय) से हुआ था। वाकाटक वंश की उत्पत्ति इतिहासकार चिरगाँव (जनपद झाँसी) से ६ मील पूर्व बांगंट (वाकाट) से मानते हैं; परन्तु इनका राज्य नागपुर के आसपास फैला था। रामटेक के चरणपाद प्रभावती के आराध्य थे। प्रभावती का काफी समय इसी रामटेक मन्दिर में व्यतीत होता था। रुद्रसेन की मृत्यु तरुणाई में ही हो गयी। प्रभावती ने राज्य-भार सँभाला। उनके राज्य प्रशासन की प्रशंसा इतिहासकार करते हैं। बड़े पुत्र दिवाकर सेन ने शासन की बागडोर सँभाली ही थी कि काल के कराल गाल में वह समा गया। इस दुःखद समय में पति और पुत्र को खोने पर छोटे पुत्र प्रवरसेन (द्वितीय) को गद्दी पर बैठाकर जनता को धैर्य दिया। पिता चन्द्रगुप्त ने पुत्री के सहायतार्थ प्रवरसेन को एक श्रेष्ठ राजा बनाने हेतु संस्कार-युक्त शिक्षा की व्यवस्था की। इसी प्रवरसेन लिखित 'सेतुबन्ध' प्राकृत ग्रन्थ प्रसिद्ध हुआ। माँ के रूप में प्रभावती ने दुःखों के पहाड़ों के मध्य एक विद्वान्, दानी एवं वीर शासक का सृजन किया। संस्कृत रचना की वैदर्भी-शैली वाकाटक राजसभा में प्रचलित होने के कारण ही अपना एक अलग अस्तित्व रखती है। अजन्ता की कुछ भव्य गुफाएँ और उनके सुन्दर भित्ति-चित्र वाकाटक राजाओं के समय में बने। प्रभावती के केवल १३ वर्ष उसके शासन के ही प्रमाण नहीं हैं; वरन् उसका व्यक्तित्व का प्रभाव उसके पूरे वंश में दृष्टिगोचर होता है। अजन्ता के भित्ति-चित्र उसके कला-रूप को सञ्चित करते हैं।

— संजय मिश्र

सूचना

क्या आपका ग्राहक शुल्क समाप्त हो रहा है ? यथाशीघ्र शुल्क भेजकर सहयोग करें। पत्र–व्यवहार के समय ग्राहक संख्या का उल्लेख अवश्य करें।

राष्ट्रधर्म-सदस्यता शुल्क

● वार्षिक	–	रु. १६०/=
● द्विवार्षिक	–	रु. ३००/=
● त्रैवार्षिक	–	रु. ४५०/=
● पञ्चवर्षीय	–	रु. ७००/=
● दसवर्षीय	–	रु. १३००/=
● बीस वर्षीय	–	रु. २०००/=
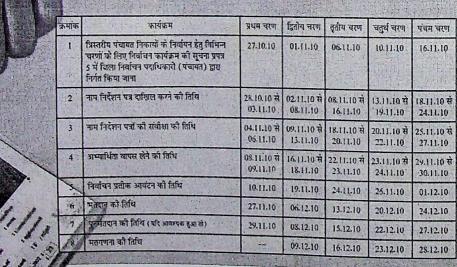
स्वर्णिम गुजरात

50 वर्षों की
गूंजती सफलता का महोत्सव

चलो ! हम सब इस महोत्सव का हिस्सा बनें...

जय जय गर्वी गुजरात - जय जय स्वर्णिम गुजरात

श्री नरेन्द्र मोदी
मुख्य मंत्रीश्री, गुजरात राज्य

प्रमुख उपलब्धियाँ

कुशल वित्तीय नियोजन

- राज्य गठन के समय २.६ प्रतिशत विकास दर बढ़कर ६.५ प्रतिशत, जो राष्ट्रीय विकास दर ८.६ से अधिक है।
- देश के २८ प्रदेशों में विकास दर में तीसरा स्थान प्राप्त करने में सफलता।
- राष्ट्रीय आय जो राज्य गठन के समय १५००० रुपये वार्षिक प्रति व्यक्ति थी, अब बढ़कर ४२००० रुपये।
- वर्ष २०१०–११ के लिए ६८०० करोड़ रुपये की वार्षिक योजना मंजूर, जो गत वर्ष से १२२५ करोड़ रुपये अधिक।
- प्रदेश के कुशल वित्तीय प्रबन्धन के लिए १३वें वित्त आयोग से १००० करोड़ रुपये की प्रोत्साहन राशि।

दुनिया के सबसे बड़े आयोजन का सफल संचालन

- हरिद्वार में इस सदी के सबसे बड़े आयोजन कुम्भ मेला का सफल संचालन।
- कुम्भ मेले में १०० से अधिक देशों के लगभग ८ करोड़ लोगों ने किया स्नान।
- २५० वर्ष बाद सभी अखाड़ों की शाही स्नान में भागीदारी।
- ७५ प्रतिशत स्थाई निर्माण कार्य।

स्पर्श गंगा अभियान : प्रदूषण मुक्त गंगा का संकल्प

- पतित पावनी गंगा की निर्मलता एवं अविरलता को बनाये रखने के लिए स्पर्श गंगा अभियान शुरू।
- फिल्म व कला जगत में विख्यात एवं राष्ट्रीय उपाध्यक्ष भाजपा हेमा मालिनी बनी ब्राण्ड एम्बेसडर।
- अभियान की सफलता के लिए एन.एस.एस., एन.सी.सी., युवक मंगल दल, महिला मंगल सहित विभिन्न स्वयंसेवी संस्थाओं का सहयोग।

अटल आदर्श ग्राम योजना : गाँवों की बदलेगी तस्वीर

- गाँवों के सुनियोजित विकास के लिए अटल आदर्श ग्राम योजना शुरू।
- प्रथम चरण में ६७० न्याय पंचायत मुख्यालयों का विकास केन्द्र के रूप में चयन।
- ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक सामाजिक एवं अवस्थापना सुविधाओं का विकास कर इन गाँवों को आदर्श गाँव बनाया जायेगा।

ऊर्जा : हर घर होगा रोशन

- राज्य में चिन्हित २५,००० मेगावाट जल–विद्युत क्षमता के सापेक्ष अब तक ३१४६ मेगावाट विद्युत उत्पादन क्षमता सृजित।
- १०,००० से अधिक जनसंख्या वाले ३१ नगरों में विद्युत वितरण सम्बन्धी सुधार कार्य प्रस्तावित।

संस्कृत : द्वितीय राजभाषा

- संस्कृत को द्वितीय राजभाषा का दर्जा देने वाला उत्तराखण्ड देश का पहला राज्य।
- संस्कृत शिक्षकों को भी राजकीय शिक्षकों के समान सुविधाएं।

आयुर्वेद : पुराना गौरव लौटाने का संकल्प

- आयुर्वेदिक विश्वविद्यालय स्थापित करने का निर्णय।
- राज्य में आयुष ग्रामों की स्थापना का निर्णय।

१०८ आपातकालीन सेवा : राज्य के लिए संजीवनी

- पं. दीनदयाल उपाध्याय देवभूमि १०८ आपातकालीन सेवा बनी जीवनदायिनी।
- एक लाख २५ हजार माँ और बच्चों को प्रसव के दौरान सहायता। चलती एम्बुलेंस में १५२५ बच्चों का जन्म बना एक नया कीर्तिमान।
- १०८ सेवाओं को राज्य महिला आयोग से जोड़ा गया। इससे महिला उत्पीड़न रोकने में मदद।

पर्यटन : रोजगार के बढ़ेंगे नये अवसर

- राज्य सरकार के प्रयासों से १२० करोड़ रुपये के छह नये पर्यटन सर्किटों को केन्द्र से मंजूरी।
- निर्मल गंगोत्री परियोजना के लिए ५० करोड़ रुपये स्वीकृत।

आशीर्वाद योजना : युवाओं के लिए नयी शुरूआत

- राज्य सरकार के प्रयासों से उत्तराखण्ड में स्थापित बड़े औद्योगिक समूह युवकों को प्रशिक्षण देकर नौकरी भी दे रहे हैं।
- उत्तराखण्ड के सुदूरवर्ती क्षेत्रों से चयनित गरीब प्रतिभाशाली १००० छात्रों को विश्वस्तरीय चार वर्षीय मैन्यूफैक्चरिंग इंजीनियरिंग का प्रशिक्षण अशोक लीलैण्ड के प्लांट में दिया जा रहा है।

औद्योगिक विकास : अर्थव्यवस्था का मजबूत आधार

- मार्च २००७ से अब तक २३७ उद्योगों द्वारा नये उद्योग स्थापित करने की सहमति। इससे ४४३१ करोड़ रुपये का पूँजी निवेश।
- २३१८ औद्योगिक इकाइयों की स्थापना के विभिन्न चरणों में लगभग १३७६५ करोड़ रुपये का पूँजी निवेश और लगभग ०२ लाख लोगों के रोजगार की संभावना।
- विशेष पर्वतीय एकीकृत औद्योगिक प्रोत्साहन नीति के अन्तर्गत १६,००० करोड़ रुपये का पूँजी निवेश तथा २२,००० करोड़ रुपये का निवेश प्रस्तावित।

चिकित्सा सुविधाएँ : जनजन की पहुँच तक

- चिकित्सा सुविधा से असेवित चिन्हित ग्रामों में एक सुदूरवर्ती स्वास्थ्य सहायक की तैनाती का निर्णय।
- पौड़ी, पिथौरागढ़, टिहरी, अल्मोड़ा, देहरादून में महिलाओं के लिए बी.एस–सी. नर्सिंग ट्रेनिंग स्कूल की स्थापना का निर्णय।

मेडिकल कालेजों की स्थापना [illegible] के लिए वरदान

- वीर चन्द्र सिंह गढ़वाली राजकीय मेडिकल कालेज श्रीनगर (गढ़वाल) में विश्व में सबसे कम (मात्र १५ हजार रुपये वार्षिक) [illegible] में एम.बी.बी.एस. डिग्री।
- उत्तराखण्ड फारेस्ट [illegible] ट्रस्ट, मेडिकल कालेज हल्द्वानी का राजकीयकरण।
- अल्मोड़ा, रुद्रपुर और देहरादून में भी नये मेडिकल कालेजों की स्थापना की जा रही है।

महिला सशक्तीकरण [illegible]

- बजट में महिलाओं के [illegible] के लिए विशेष व्यवस्था। साथ ही पंचायतों में ५० प्रतिशत आरक्षण।
- बीपीएल परिवारों की कन्याओं के लिए नन्दा देवी कन्या योजना शुरू, जिसमें ५००० रुपये की धनराशि एफ.डी. [illegible] की व्यवस्था।
- गौरा देवी कन्या धन योजना शुरू, जिसमें बीपीएल परिवारों की इण्टरमीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण करने वाली छात्राओं को २५ हजार रुपये [illegible] राष्ट्रीय बचत पत्र [illegible] की व्यवस्था।
- ७९२९ नये आंगनबाड़ी केन्द्र तथा २४४४ मिनी आंगनबाड़ी केन्द्रों की स्थापना से लगभग १० हजार महिलाओं के लिए रोजगार।
- अति दुर्गम क्षेत्र की गरीब महिलाओं को निःशुल्क गैस कनेक्शन देने की योजना।
- योजना के अन्तर्गत प्रथम चरण में ०४ जनपदों के ०५ सीमान्त विकासखण्ड के लिए ०८ करोड़ रुपये की धनराशि स्वीकृत।
- प्रत्येक विकास खण्ड में चारा बैंक स्थापित करने के लिए ६.२१ करोड़ रुपये की धनराशि स्वीकृत।

शिक्षा : ज्ञान भूमि की ओर [illegible]

- देश में प्रथम राज्य जहाँ आई.आई.टी., आई.आई.एम., एम्स, एन.आई.टी., आयुर्वेद विश्वविद्यालय, पेट्रोलियम विश्वविद्यालय तथा संस्कृत विश्वविद्यालय जैसे अन्तरराष्ट्रीय संस्थानों की स्थापना।
- उत्कृष्ट कार्य करने वाले शिक्षकों को प्रोत्साहित करने के लिए शैलेश मटियानी राज्य शैक्षिक पुरस्कार योजना शुरू।
- रुद्रप्रयाग, चमोली, उत्तरकाशी, बागेश्वर एवं ऊधमसिंह नगर जनपदों में श्यामा प्रसाद मुखर्जी अभिनव विद्यालय स्थापित करने की स्वीकृति।
- कूड़ा बटोरने वाले बच्चों की प्रारम्भिक शिक्षा के लिए पहल योजना शुरू। योजना देहरादून, हरिद्वार, नैनीताल तथा ऊधमसिंह नगर में संचालित।
- समाज के वंचित वर्ग के बालक/बालिकाओं की उत्कृष्ट शिक्षा हेतु देवभूमि मुस्कान व सपनों की उड़ान योजना शुरू।

समाज के सभी वर्गों का [illegible]

- सभी पात्र लोगों को वृद्धावस्था, विधवा तथा विकलांग पेंशन देने का निर्णय।
- एक ही परिवार में पति–पत्नी को भी पेंशन योजनाओं का लाभ।

अनुपम पहल : विकास के लिए अभिनव प्रयास

- समाज के अन्तिम व्यक्ति तक जनकल्याणकारी योजनाओं का अधिक से अधिक लाभ पहुँचाने के लिए राज्य सरकार ने 'अनुपम पहल' के रूप में विकास से जुड़ी १४ बुनियादी योजनाएँ शुरू की हैं।
- इन योजनाओं का मुख्य उद्देश्य प्रदेश के सुदूर क्षेत्रों में स्वास्थ्य, रोजगार, सड़क व्यवस्था, वन क्षेत्र में वृद्धि, उद्यान तथा जड़ी–बूटी विकास, चारा विकास बैंक, खाद्य आदि क्षेत्रों में विशेष रूप से कार्य करना है।
- जड़ी–बूटी विकास योजना में प्रत्येक विकासखण्ड में संकुल आधार पर जड़ी–बूटी कृषिकरण, जड़ी–बूटी नर्सरी विकास, आवाजाही वाले स्थानों पर निजी क्षेत्र की सहभागिता से हर्बल गार्डन की स्थापना की जायेगी।

उत्तराखण्ड शासन

विकास की अनुपम पहल

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक'
माननीय मुख्यमन्त्री, उत्तराखण्ड

प्रिय भाइयो एवं बहिनों,

देवभूमि उत्तराखण्ड महान सनातन संस्कृति की जनक रही है, इस देवभूमि ने देश एवं दुनिया को वेद, पुराण, उपनिषद्, आध्यात्मिक ज्ञान तथा आयुर्विज्ञान सहित भारत को विश्वगुरु का गौरव दिलाया है।

मैं इस प्रदेश के समग्र विकास हेतु आप सभी लोगों द्वारा दिए जा रहे अमूल्य सहयोग के लिए आभार व्यक्त करता हूँ। साथ ही इस सदी के पहले महाकुम्भ में देश तथा पूरी दुनियाँ से आये करोड़ों श्रद्धालुओं का इस महाकुम्भ के सफल आयोजन पर हृदय की गहराइयों से आभार प्रकट करता हूँ।

मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि उत्तराखण्ड को आदर्श राज्य बनाने में आपका सहयोग प्राप्त होगा।

आइये धरती का स्वर्ग, देवभूमि उत्तराखण्ड की प्रगति के लिए हम सब मिलकर कदम बढ़ायें.....

(रमेश पोखरियाल 'निशंक')

स्वत्वाधिकारी राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड, लखनऊ के लिए मुद्रक, प्रकाशक सत्येन्द्र पाल बेदी द्वारा नूतन ऑफसेट मुद्रण केन्द्र, राजेन्द्र नगर, लखनऊ से मुद्रित व संस्कृति भवन राजेन्द्र नगर, लखनऊ से प्रकाशित – सम्पादक : आनन्द मिश्र 'अभय'